ग्राहक वर्गने निवेदन

पहेला खंडनो छेल्लो अंक बहार पड्यां पछी आजे लगभग दोढ वर्ष करतांए वधारे समय पछी आ अंक ग्राहकोना हाथमां मुकतां अमारे ग्राहक वर्गने शुं निवेदन करवुं ते कांई सूझतुं नथी. आ अंक छपाववानी शरुआत संवत् १९७८ ना आखा त्रीजना दिवसे थई हती पण तेनी समाप्ति सं० १९७९ ना जेठमां थाय छे. आटला बधा विलंबनां कारणो आपी देवाथी पण अमने के ग्राहकवर्गने सन्तोष थाय तेम लागतुं नथी तेथी अने ए संबन्धमां 'मौनं सर्वार्थसाधकं' नी नीतिने अनुसरी भूतकालने भूली जवानी भलामण करिए छीए; अने भविष्य माटे आशा आपीए छीए के, हवे पछी जेम बनशे तेम वेळासर ज ग्राहकोना हाथमां अंक पहुंची जाय तेवी दरेक कोशीश करवामां आवशे.

—मुनि जिनविजय.

जैन साहित्य संशोधकना द्वितीय खण्डमां

केवा केवा विषयो आवशे ते जाणवुं होय

तो आ नीचेनी नोंध ध्यानपूर्वक वांचो

बीजा खण्डमां, जैन धर्मना प्राचीन गौरव उपर अपूर्व प्रकाश पाडनारा अनेक प्राचीन शिलालेखो अने ताम्रपत्रो प्रकट थशे.

बीजा खण्डमां, जैन संघना संरक्षक जुदा जुदा गच्छोनी पट्टावलियो प्रसिद्ध थशे.

बीजा खण्डमां, जैन साहित्यना आभूषणभूत ग्रन्थोना परिचयो अने तेनी प्रशस्तिओ प्रसिद्ध थशे.

बीजा खण्डमां, जैन अने बौद्ध साहित्यनी तुलना करनारा प्रौढ अने गंभीर लेखो आवशे.

बीजा खण्डमां, भगवान् महावीर देवना निर्वाण समय संबंधी जुदा जुदा विद्वानोए लखेला लेखोनां भाषान्तरो तथा स्वतंत्र लेख आवशे.

बीजा खण्डमां, प्रो० वेबरनां लखेलां जैन आगमोनी विस्तृत समालोचना आपवामां आवशे.

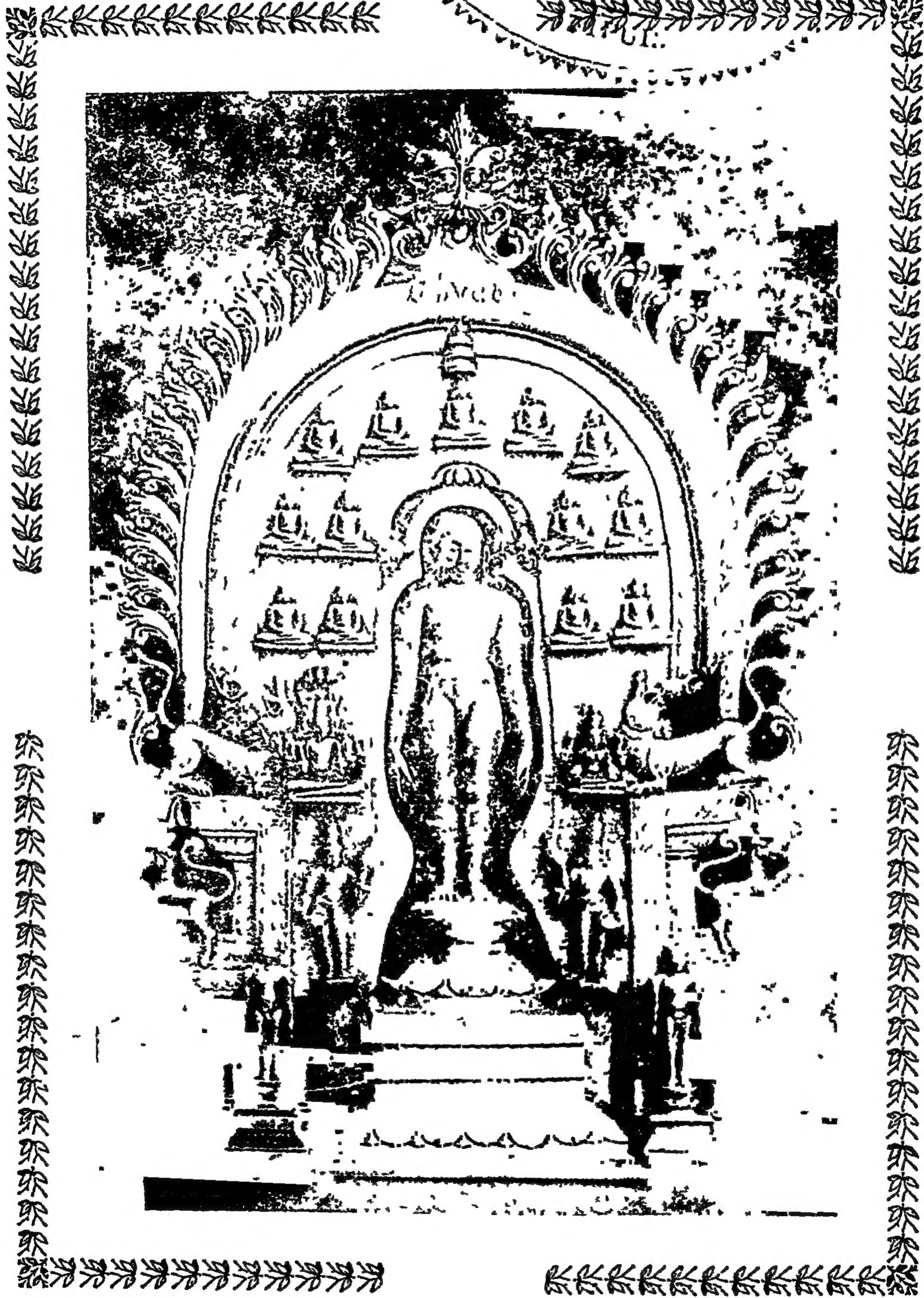
बीजा खण्डमां, जैन साहित्यमां उल्लिखित प्राचीन स्थळोनां वर्णनो आवशे.

बीजा खण्डमां, बौद्ध साहित्यमां जैनधर्मविषये शा शा विचारो लखाएला छे तेना विचित्र अने अज्ञातपूर्व उल्लेखो आवशे.

बीजा खण्डमां, जैन संघमां आजपर्यंत थई गएला प्रसिद्ध पुरुषोना परिचयो आपवामां आवशे.

आ सिवाय बीजा पण अनेक नाना मोटा अपूर्व अपूर्व लेखो प्रकट करवामां आवशे अने साथे तेवां ज सुन्दर, मनहर, दर्शनीय अने संग्रहणीय अनेक चित्रो पण यथायोग्य आपवामां आवशे.

वळी, आ खण्डमां केटलाक ऐतिहासिक-प्राचीन प्रबन्धो, अने पट्टावलिओ पण मूळ रूपे आपवामां आववानार छे. उदाहरण तरीके मेरुतुंगाचार्य विरचित विचारश्रेणि; उपकेशगच्छ, तपागच्छ, खरतरगच्छ, बृहत्पोशालिक गच्छ आदिनी पट्टावली; जुना रासा; चैत्य परिपाटि; तीर्थ यात्रा, अने विज्ञप्ति इत्यादि. इत्यादि.



येनूर (दक्षिण कर्णाटक) स्थान स्थित मनुष्याकार दिगम्बर जैन प्रतिमा

॥ ॐ अर्हम् ॥

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

जैन साहित्य संशोधक

'पुरिसा! सच्चमेव समभिजाणाहि । सच्चस्साणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ ।'

' जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ । '

' दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं एत्थ परिकहिज्जइ ।'

—निर्ग्रन्थप्रवचन—आचारांगसूत्र ।

खंड २] हिंदी लेख विभाग. [अंक १

योगदर्शन

(लेखकः—पं. सुखलालजी न्यायाचार्य)

प्रत्येक मनुष्य व्यक्ति अपरिमित शक्तियोंके तेजका पुञ्ज है, जैसा कि सूर्य । अत एव राष्ट्र तो मानों अनेक सूर्योंका मण्डल है । फिर भी जब कोई व्यक्ति या राष्ट्र असफलता या नैराश्यके भँवरमें पडता है तब यह प्रश्न होना सहज है कि इसका कारण क्या है ? । बहुत विचार कर देखनेसे मालूम पडता है कि असफलता व नैराश्यका कारण योगका (स्थिरताका) अभाव है, क्यों कि योग न होनेसे बुद्धि संदेहशील बनी रहती है, और इससे प्रयत्नकी गति अनिश्चित हो जानेके कारण शक्तियां इधर उधर टकरा कर आदमीको बरबाद कर देती हैं । इस कारण सब शक्तियोंको एक केन्द्रगामी बनाने तथा साध्यतक पहुंचानेके लिये अनिवार्यरूपसे सभीको योगकी जरूरत है । यही कारण है कि प्रस्तुत व्याख्यानमालामें योगका विषय रक्खा गया है ।

* गूजरात पुरातत्त्व मंदिरकी ओरसे होनेवाली आर्यविद्याव्याख्यानमालामें यह व्याख्यान पढा गया था ।

इस विषयकी शास्त्रीय मीमांसा करनेका उद्देश यह है कि हमें अपने पूर्वजोंकी तथा अपनी सभ्यताकी प्रकृति ठीक मालूम हो, और तद्द्वारा आर्यसंस्कृतिके एक अंशका थोडा, पर निश्चित रहस्य विदित हो।

योगदर्शन यह सामासिक शब्द है। इसमें योग और दर्शन ये दो शब्द मौलिक हैं।

योग शद्बका अर्थ—योग शब्द युज् धातु और घञ् प्रत्ययसे सिद्ध हुवा है। युज् धातु दो हैं। एकका अर्थ है जोडना[1] और दूसरेका अर्थ है समाधि[2]—मनःस्थिरता। सामान्य रीतिसे योगका अर्थ संबन्ध करना तथा मानासिक स्थिरता करना इतना ही है, परंतु प्रसंग व प्रकरणके अनुसार उसके अनेक अर्थ हो जानेसे वह बहुरूपी बन जाता है। इसी बहुरूपिताके कारण लोकमान्यको अपने गीतारहस्यमें गीताका तात्पर्य दिखानेके लिये योगशब्दार्थनिर्णयकी विस्तृत भूमिका रचनी पडी है[3]। परंतु योगदर्शनमें योग शब्दका अर्थ क्या है यह बतलानेके लिये उतनी गहराईमें उतरनेकी कोई आवश्यकता नहीं हैं; क्यों कि योगदर्शनविषयक सभी ग्रन्थोंमें जहां कहीं योग शब्द आया है वहां उसका एक ही अर्थ है, और उस अर्थका स्पष्टीकरण उस उस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने स्वयं ही कर दिया है। भगवान् पतंजलिने अपने योगसूत्रमें[4] चित्तवृत्ति निरोधको ही योग कहा है, और उस ग्रन्थमें सर्वत्र योग शब्दका वही एक मात्र अर्थ विवक्षित है। श्रीमान् हरिभद्र सूरिने अपने योग विषयक सभी ग्रन्थोंमें[5] मोक्ष प्राप्त कराने वाले धर्मव्यापारको ही योग कहा है; और उनके उक्त सभी ग्रन्थोंमें योग शब्दका वही एक मात्र अर्थ विवक्षित है। चित्तवृत्ति-निरोध और मोक्षप्रापक धर्मव्यापार इन दो वाक्योंके अर्थमें स्थूल दृष्टिसे देखने पर बडी भिन्नता मालूम होती हैं, पर सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर उनके अर्थकी अभिन्नता स्पष्ट मालूम हो जाती है। क्यों कि 'चित्तवृत्तिनिरोध' इस शब्दसे वही क्रिया या व्यापार विवक्षित है जो मोक्षके लिये अनुकूल हो और जिससे चित्तकी संसाराभिमुख वृत्तियां रुक जाती हों। 'मोक्षप्रापक धर्मव्यापार' इस शब्दसे भी वही क्रिया विवक्षित है। अत एव प्रस्तुत विषयमें योग शब्दका अर्थ स्वाभाविक समस्त आत्मशक्तियोंका पूर्ण विकास करानेवाली क्रिया अर्थात् आत्मोन्मुख चेष्टा इतना ही समजना चाहिये[6]। योगविषयक वैदिक, जैन और बौद्ध ग्रन्थोंमें योग, ध्यान, समाधि ये शब्द बहुधा समानार्थक देखे जाते हैं।

द र्श न श ब्द का अ र्थ—नेत्रजन्यज्ञान,[7] निर्विकल्प (निराकार) बोध,[8] श्रद्धा,[9] मत[10] आदि अनेक अर्थ दर्शन शब्दके देखे जाते हैं। पर प्रस्तुत विषयमें दर्शन शब्दका अर्थ मत यही एक विवक्षित है।

योगके आविष्कारका श्रेय—जितने देश और जितनी जातियोंके आध्यात्मिक महान् पुरुषोंकी जीवनकथा तथा उनका साहित्य उपलब्ध है उसको देखनेवाला कोई भी यह नहीं कह सकता है कि आध्यात्मिक विकास अमुक देश और अमुक जातिकी ही बपौती है, क्यों कि सभी देश और सभी जातियोंमें न्यूनाधिक रूपसे आध्यात्मिक विकासवाले महात्माओंके पाये जानेके प्रमाण मिलते हैं[11]। योगका संबन्ध आध्यात्मिक विकाससे है। अत एव यह स्पष्ट है कि

१ युजृंपी योगे,—७ गण हेमचंद्र धातुपाठ. २ युजिंच् समाधौ,—४ गण हेमचंद्र धातुपाठ.

३ देखो पृष्ठ ५५ से ६०। ४ पा. १ सू. २—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। ५ योगबिन्दु श्लोक ३१—
अध्यात्मं भावनाऽऽध्यानं समता वृत्तिसंक्षयः। मोक्षेण योजनाद्योग एष श्रेष्ठो यथोत्तरम् ॥ योगविंशिका गाथा ॥१॥

६ लोर्ड एवेबरीने जो क्षिक्षाकी पूर्ण व्याख्या की है वह इसी प्रकारकी है:— "Education is the harmonious developement of all our faculties." ७ दृशृं प्रेक्षणे—१ गण हेमचन्द्र धातुपाठ. ८ तत्त्वार्थ अध्याय १ सूत्र १ श्लोक वार्तिक. ९ तत्त्वार्थ अध्याय १ सूत्र २. १० षड्दर्शन समुच्चय—श्लोक २—"दर्शनानि षडेवात्र" इत्यादि. ११ उदाहरणार्थ जरथोस्त, इसु, महम्मद आदि.

योगका अस्तित्व सभी और सभी जातियोंमें रहा है। तथापि कोई भी विचारशील मनुष्य इस बातका इनकार नहीं कर सकता है कि योगके आविष्कारका या योगको पराकाष्ठा तक पहुंचानेका श्रेय भारतवर्ष और आर्यजातिको ही है। इसके सबूतमें मुख्यतया तीन बातें पेश की जा सकती हैं। १ योगी, ज्ञानी, तपस्वी आदि आध्यात्मिक महापुरुषोंकी बहुलता; २ साहित्यके आदर्शकी एकरूपता; और ३ लोकरुचि।

१. योगी, ज्ञानी, तपस्वी आदि आध्यात्मिक महापुरुषोंकी संख्या भारतवर्षमें पहिलेसे आज तक इतनी बडी रही है कि उसके सामने अन्य सब देश और जातियोंके आध्यात्मिक व्यक्तियोंकी कुल संख्या इतनी अल्प जान पडती है जितनी कि गंगाके सामने एक छोटीसी नदी।

२. साहित्यके आदर्शकी एकरूपता—तत्त्वज्ञान, आचार, इतिहास, काव्य, नाटक आदि साहित्यका कोई भी भाग लीजिये उसका अन्तिम आदर्श बहुधा मोक्ष ही होगा। प्राकृतिक दृश्य और कर्मकाण्डके वर्णनने वेदका बहुत बडा भाग रोका है सही, पर इसमें संदेह नहीं कि वह वर्णन वेदका शरीर मात्र है; उसकी आत्मा कुछ और ही है—और वह है परमात्मचिंतन या आध्यात्मिक भावोंका आविष्करण। उपनिषदोंका प्रासाद तो ब्रह्मचिन्तनकी बुनियाद पर ही खडा है। प्रमाणविषयक, प्रमेयविषयक कोई भी तत्त्वज्ञान संबन्धी सूत्रग्रन्थ हो; उसमें भी तत्त्वज्ञानके साध्यरूपसे मोक्षका ही वर्णन मिलेगा[1]। आचारविषयक सूत्र स्मृति आदि सभी ग्रन्थोंमें आचारपालनका मुख्य उद्देश मोक्ष ही माना गया[2] है। रामायण, महाभारत आदिके मुख्य पात्रोंकी महिमा सिर्फ इस लिये नहीं कि वे एक बडे राज्यके स्वामी थे, पर वह इस लिये है कि अंतमें वे संन्यास या तपस्याके द्वारा मोक्षके अनुष्ठानमें ही लग जाते हैं। रामचन्द्रजी प्रथम ही अवस्थामें वशिष्ठसे योग और मोक्षकी शिक्षा पा लेते[3] हैं। युधिष्ठिर भी युद्ध रस लेकर बाण शय्यापर सोये हुए भीष्मपितामहसे शान्तिका ही पाठ पढते[4] हैं। गीता तो रणांगणमें भी मोक्षके एकतम साधन योगका ही उपदेश देती है। कालिदास जैसे शृंगारप्रिय कहलानेवाले कवि भी अपने मुख्य पात्रोंकी महत्ता मोक्षकी और झुकनेमें ही देखते हैं[5]। जैन आगम और बौद्ध पिटक तो निवृत्तिप्रधान होनेसे मुख्यतया मोक्षके सिवाय अन्य विषयोंका वर्णन करनेमें बहुत ही संकुचाते हैं। शब्दशास्त्रमें

—1 वैशेषिकदर्शन, अ० १ सू० ४ धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां 'साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्। —न्यायदर्शन अ० १ सू० १ प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥ सांख्यदर्शन, अ. १ अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥— वेदान्तदर्शन अ०४, पा० ४, सू० २२ अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॥ — जैनदर्शन तत्त्वार्थ अ० १ सू० १ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ 2 याज्ञवल्क्यस्मृति अ. ३ यतिधर्मनिरूपणम्; मनुस्मृति अ. १२ श्लोक ८३. 3 देखो योगवासिष्ठ. 4 देखो महाभारत—शान्तिपर्व. 5 कुमारसंभव—सर्ग ३ तथा ५ तपस्या वर्णनम्. शाकुन्तल नाटक अंक ४ कण्वोक्ति.

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी, दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं, शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानाम् यौवने विषयैषिणाम्। वार्द्धके मुनिवृत्तीनाम् योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥८॥ सर्ग १

अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे, नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम्।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये, गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥ ७० ॥ रघुवंश ३.

भी शब्दशुद्धिको तत्त्वज्ञानका द्वार मान कर उसका अन्तिम ध्येय परम श्रेय ही माना है । विशेष क्या ? कामशास्त्र तकका भी आखिरी उद्देश मोक्ष है । इस प्रकार भारतवर्षीय साहित्यका कोई भी स्रोत देखिये उसकी गति समुद्र जैसे अपरिमेय एक चतुर्थ पुरुषार्थकी ओर ही होगी ।

३ लोकरुचि—आध्यात्मिक विषयकी चर्चावाला और खासकर योगविषयक कोई भी ग्रन्थ किसीने भी लिखा कि लोगोंने उसे अपनाया । कंगाल और दीन हीन अवस्थामें भी भारतवर्षीय लोगोंकी उक्त अभिरुचि यह सूचित करती है कि योगका सम्बन्ध उनके देश व उनकी जातिमें पहलेसे ही चला आता है। इसी कारणसे भारतवर्षकी सभ्यता अरण्यमें उत्पन्न हुई कही जाती है 1। इस पैत्रिक स्वभावके कारण जब कभी भारतीय लोग तीर्थयात्रा या सफरके लिये पहाडों, जंगलों और अन्य तीर्थस्थानोंमें जाते हैं तब वे डेरा तंबू डालनेसे पहले ही योगियोंको, उनके मठोंको और उनके चिन्ह तकको भी ढूंढा करते हैं । योगकी श्रद्धाका उद्रेक यहां तक देखा जाता है कि किसी नंगे बावेको गांजेकी चिलम फूंकते या जटा बढाते देखा कि उसके मुंहके धुंएमें या उसकी जटा व भस्मलेपमें योगका गन्ध आने लगता है । भारतवर्षके पहाड, जंगल और तीर्थस्थान भी बिलकुल योगिशून्य मिलना दुःसंभव है । ऐसी स्थिति अन्य देश और अन्य जातिमें दुर्लभ है । इससे यह अनुमान करना सहज है कि योगको आविष्कृत करनेका तथा पराकाष्ठा तक पहुंचानेका श्रेय बहुधा भारतवर्षको और आर्यजातिको ही है । इस बातकी पुष्टि मेक्षमूलर जैसे विदेशीय और भिन्न संस्कारी विद्वान्के कथनसे भी अच्छी तरह होती है ।2

आर्यसंस्कृतिकी जड और आर्यजातिका लक्षण—ऊपरके कथनसे आर्यसंस्कृतिका मूल आधार क्या है, यह स्पष्ट मालूम हो जाता है । शाश्वत जीवनकी उपादेयता ही आर्यसंस्कृतिकी भित्ति है । इसी पर आर्यसंस्कृतिके चित्रोंका चित्रण किया गया है । वर्णविभाग जैसा सामाजिक संगठन और आश्रमव्यवस्था जैसा वैयक्तिक जीवनविभाग उस चित्रणका अनुपम उदाहरण है । विद्या, रक्षण, विनिमय और सेवा ये चार जो वर्णविभागके उद्देश्य हैं, उनके प्रवाह गार्हस्थ्य जीवनरूप मैदानमें अलग अलग बह कर भी वानप्रस्थके मुहानेमें मिलकर अंतमें संन्यासाश्रमके अपरिमेय समुद्रमें एकरूप हो जाते हैं । सारांश यह है कि सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी संस्कृतियोंका निर्माण, स्थूलजीवनकी परिणामविरसता और आध्यात्मिक-जीवनकी परिणामसुन्दरता ऊपर ही किया गया है । अत एव जो विदेशीय विद्वान् आर्यजातिका लक्षण स्थूलशरीर, उसके डीलडोल, व्यापार–व्यवसाय, भाषा, आदिमें देखते हैं वे एकदेशीय मात्र हैं । खेतीबारी, जहाजखेना, पशुओंको चराना आदि जो जो अर्थ आर्यशब्दसे निकाले गये हैं वे आर्यजातिके असाधारण लक्षण नहीं हैं । आर्यजातिका असाधारण लक्षण तो परलोकमात्रकी कल्पना भी नहीं है, क्यों कि उसकी दृष्टिमें वह लोक भी त्याज्य है । उसका सच्चा और अन्तरंग लक्षण स्थूल जगत्के उसपार वर्तमान परमात्मतत्त्वकी एकाग्रबुद्धिसे उपासना करना यही है । इस सर्वव्यापक उद्देश्यके कारण आर्यजाति अपनेको अन्य सब जातियोंसे श्रेष्ठ समझती आई है ।

---

१ द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
व्याकरणात्पदसिद्धिः पदसिद्धेरर्थनिर्णयो भवति । अर्थात्तत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात्परं श्रेयः ॥
श्रीहैमशब्दानुशासनम् अ. १ पा. १ सू. २ लघुन्यास.

२ " स्थाविरे धर्मं मोक्षं च " कामसूत्र अ. २ पृ. ११ Bombay Edition.

1 देखो कविवर टागोर कृत " साधना " पृष्ठ ४.
" Thus in India it was in the forests that our civilization had its birth......etc "

2 This concentrtion of thought (एकाग्रता) or one-pointedness as the Hindus called it, ls something to us almost unknown.
इत्यादि देखो. पृ. २३–वोल्युम १–सेक्रेड बुक्स ओफ धि ईस्ट, मेक्षमूलर–प्रस्तावना.

ज्ञान और योगका संबन्ध तथा योगका दरजा—व्यवहार हो या परमार्थ, किसी भी विषयका ज्ञान तभी परिपक्व समझा जा सकता है जब कि ज्ञानानुसार आचरण किया जाय। असलमें यह आचरण ही योग है। अत एव ज्ञान योगका कारण है। परन्तु योगके पूर्ववर्ति जो ज्ञान होता है वह अस्पष्ट होता है1। और योगके बाद होनेवाला अनुभवात्मक ज्ञान स्पष्ट तथा परिपक्व होता है। इसीसे यह समझ लेना चाहिये कि स्पष्ट तथा परिपक्व ज्ञानकी एक मात्र कुंजी योग ही है। आधिभौतिक या आध्यात्मिक कोई भी योग हो, पर वह जिस देश या जिस जातिमें जितने प्रमाणमें पुष्ट पाया जाता है उस देश या उस जातिका विकास उतना ही अधिक प्रमाणमें होता है। सच्चा ज्ञानी वही है जो योगी है2। जिसमें योग या एकाग्रता नहीं होती वह योगवाशिष्ठकी परिभाषामें ज्ञानबन्धु है3। योगके सिवाय किसी भी मनुष्यकी उत्क्रान्ति हो ही नहीं सकती, क्यों कि मानसिक चंचलताके कारण उसकी सब शक्तियां एक ओर न बह कर भिन्न भिन्न विषयोंमें टकराती हैं, और क्षीण हो कर यों ही नष्ट हो जाती हैं। इसलिये क्या किसान, क्या कारीगर, क्या लेखक, क्या शोधक, क्या त्यागी सभीको अपनी नाना शक्तियोंको केन्द्रस्थ करनेके लिये योग ही परम साधन है।

व्यावहारिक और पारमार्थिक योग—योगका कलेवर एकाग्रता है, उसकी आत्मा अहंत्व ममत्वका त्याग है। जिसमें सिर्फ एकाग्रताका ही संबन्ध हो वह व्यावहारिक योग, और जिसमें एकाग्रताके साथ साथ अहंत्व ममत्वके त्यागका भी संबन्ध हो वह पारमार्थिक योग है। यदि योगका उक्त आत्मा किसी भी प्रवृत्तिमें—चाहे वह दुनियाकी दृष्टिमें बाह्य ही क्यों न समझी जाती हो—वर्तमान हो तो पारमार्थिक योग ही समझना चाहिये। इसके विपरीत स्थूलदृष्टिवाले जिस प्रवृत्तिको आध्यात्मिक समझते हों, उसमें भी यदि योगका उक्त आत्मा न हो तो उसे व्यवहारिक योग ही कहना चाहिये। यही बात गीताके साम्यगर्भित कर्मयोगमें कही गई है4।

योगकी दो धारायें—व्यवहारमें किसी भी वस्तुको परिपूर्ण स्वरूपमें तैयार करनेके लिये पहले दो बातोंकी आवश्यकता होती है। जिनमें एक ज्ञान और दूसरी क्रिया है। चितेरेको चित्र तैयार करनेसे पहले उसके स्वरूपका, उसके साधनोंका और साधनोंके उपयोगका ज्ञान होता है, और फिर वह ज्ञान के अनुसार क्रिया भी करता है। तभी वह चित्र तैयार कर पाता है। वैसे ही आध्यात्मिक क्षेत्रमें भी मोक्षके जिज्ञासुके लिये बन्धमोक्ष, आत्मा और बन्धमोक्षके कारणोंका, तथा उनके परिहार, उपादानका ज्ञान होना जरूरी है। एवं ज्ञानानुसार प्रवृत्ति भी आवश्यक है। इसी से संक्षेपमें यह कहा गया है कि "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः"। योग क्रियामार्गका नाम है। इस मार्गमें प्रवृत्त होनेसे पहले अधिकारी, आत्मा आदि आध्यात्मिक विषयोंका आरंभिक ज्ञान शास्त्रसे, सत्संगसे, या स्वयं प्रतिभा द्वारा कर लेता है। यह तत्त्वविषयक प्राथमिक ज्ञान प्रवर्तक ज्ञान कहलाता है। प्रवर्तक ज्ञान प्राथमिक दशाका ज्ञान होनेसे सबको एकाकार और एकसा नहीं हो सकता। इसीसे योगमार्गमें तथा उसके परिणामस्वरूप मोक्षस्वरूपमें तात्त्विक भिन्नता न होने पर भी योगमा-

---

1 इसी अभिप्रायसे गीता योगिको ज्ञानिसे अधिक कहती है। गीता अ. ६ श्लोक ४६—
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन!॥

2 गीता अ. ५ श्लोक ५—
यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते। एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

3 योगवाशिष्ठ निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध, सर्ग २१—
व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत्। यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानबन्धुः स उच्यते॥
आत्मज्ञानमनासाद्य ज्ञानान्तरलवेन ये। सन्तुष्टाः कष्टं चेष्टंते ते स्मृता ज्ञानबन्धवः॥ इत्यादि।

4 अ. २ श्लोक ४—
योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय!। सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

हैं, जिनमें योगशास्त्रकी तरह सांगोपांग योगप्रक्रियाका वर्णन है8। अथवा यह कहना चाहिये कि ऋग्वेदमें जो परमात्मचिन्तन अंकुरायमाण था वही उपनिषदोंमें पल्लवित-पुष्पित हो कर नाना शाखा-प्रशाखाओंके साथ फल अवस्थाको प्राप्त हुवा। इससे उपनिषदकालमें योगमार्गका पुष्टरूपमें पाया जाना स्वाभाविक ही है।

उपनिषदोंमें जगत, जीव और परमात्मसम्बन्धी जो तात्त्विक विचार है, उसको भिन्न भिन्न ऋषियोंने अपनी दृष्टिसे सूत्रोंमें ग्रथित किया, और इस तरह उस विचारको दर्शनका रूप मिला। सभी दर्शनकारोंका आखिरी उद्देश मोक्ष* ही रहा है, इससे उन्होंने अपनी अपनी दृष्टिसे तत्त्वविचार करनेके बाद भी संसारसे छुट कर मोक्ष पानेके साधनोंका निर्देश किया है। तत्त्वविचारणामें मतभेद हो सकता है, पर आचरण यानी चारित्र एक ऐसी वस्तु है जिसमें सभी विचारशील एकमत हो जाते हैं। विना चारित्रका तत्त्वज्ञान कोरी बातें हैं। चारित्र यह योगका किंवा योगांगोंका संक्षिप्त नाम है। अत एव सभी दर्शनकारोंने अपने अपने सूत्रग्रंथोंमें साधन रूपसे योगकी उपयोगिता अवश्य बतलाई है। यहां तक कि—न्यायदर्शन, जिसमें प्रमाण पद्धतिका ही विचार मुख्य है, उसमें भी महर्षि गौतमने योगको स्थान दिया है1। महर्षि कणादने तो अपने वैशेषिक दर्शनमें यम, नियम, शौच आदि योगांगोंका भी महत्त्व गाया हैं2। सांख्यसूत्रमें योगप्रक्रियाके वर्णनवाले कई सूत्र हैं3। ब्रह्मसूत्रमें महर्षि बादरायणने तो तीसरे अध्यायका नाम ही साधन अध्याय रक्खा है, और उसमें आसन ध्यान आदि योगांगोंका वर्णन किया है4। योगदर्शन तो मुख्यतया योगविचारका ही ग्रन्थ ठहरा, अत एव उसमें सांगोपांग योगप्रक्रियाकी मीमांसाका पाया जाना सहज ही है। योगके स्वरूपके सम्बन्धमें मतभेद न होनेके कारण और उसके प्रतिपादनका उत्तरदायित्व खासकर योगदर्शनके उपर होनेके कारण अन्य दर्शनकारोंने अपने अपने सूत्र ग्रन्थोंमें थोडासा योगविचार करके विशेष जानकारीके लिये जिज्ञासुओंको योगदर्शन देखनेकी सूचना दे दी है5। पूर्वमीमांसामें महर्षि जैमिनिने योगका निर्देश तक नहीं किया है सो ठीक ही है, क्यों कि उसमें सकाम कर्मकाण्ड अर्थात् धूम—मार्गकी ही मीमांसा है। कर्मकाण्डकी पहुंच

---

8 ब्रह्मविद्योपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, चूलिकोपनिषद्, नादबिन्दु, ब्रह्मबिन्दु, अमृतबिन्दु, ध्यानबिन्दु, तेजोबिन्दु, योगशिखा, योगतत्त्व, हंस इत्यादि। देखो ड्युसेनकृत—Philosphy of the Upanishads

*—प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः। गौ० सू० १, १, १॥—धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्॥ वै० सू० १, १, ४॥—अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः। सां० द० १, १॥—पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति। यो० सू० ४, ३३॥—अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्। ब्र. सू. ४, ४, २२।—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। तत्त्वार्थ सू० १—१ जैन० द०।—बौद्ध दर्शनका तीसरा निरोध नामक आर्यसत्य ही मोक्ष है।

1 समाधिविशेषाभ्यासात् ४—२—३८। अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः ४—२—४२। तदर्थं यमनियमाभ्यासात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः ४—२—४६॥

2 अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्रस्थयज्ञदानप्रोक्षणदिङ्नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय। ६—२—२। अयतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न विद्यते, नियमाभावाद्, विद्यते वाऽर्थान्तरत्वाद् यमस्य। ६—२—८।

3 रागोपहतिर्ध्यानम् ३—३०। वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ३—३१। धारणासनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः ३—३२। निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् ३—३३। स्थिरसुखमासनम् ३—३४।

4 आसीनः संभवात् ४—१—७। ध्यानाच्च ४—१—८। अचलत्वं चापेक्ष्य ४—१—९। स्मरन्ति च ४—१—१०। यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् ४—१—११।

5 योगशास्त्राच्चाध्यात्मविधिः प्रतिपत्तव्यः। न्यायदर्शन ४—२—४६ भाष्य।

वर्गतक ही है, मोक्ष उसका साध्य नहीं। और योगका उपयोग तो मोक्षके लिये ही होता है।

जो योग उपनिषदोंमें सूचित और सूत्रोंमें सूत्रित है, उसीकी महिमा गीतामें अनेक रूपसे गाई गई है। उसमें योगकी तान कभी कर्मके साथ, कभी भक्तिके साथ और कभी ज्ञानके साथ सुनाई देती है1। उसके छठे और तेरहवें अध्यायमें तो योगके मौलिक सब सिद्धान्त और योगकी सारी प्रक्रिया आ जाती है2। कृष्णके द्वारा अर्जुनको गीताके रूपमें योगशिक्षा दिला कर ही महाभारत सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसके अथक स्वरको देखते हुए कहना पडता है कि ऐसा होना संभव भी न था। अत एव शान्तिपर्व और अनुशासनपर्वमें योगविषयक अनेक सर्ग वर्तमान हैं, जिनमें योगकी अथेति प्रक्रियाका वर्णन पुनरुक्तिकी परवा न करके किया गया है3। उसमें बाण-शय्यापर लेटे हुए भीष्मसे बार बार पूछनेमें न तो युधिष्ठिरको ही कंटाला आता है, और न उस सुपात्र धार्मिक राजाको शिक्षा देनेमें भीष्मको ही थकावट मालूम होती है।

योगवाशिष्ठका विस्तृत महल तो योगकी ही भूमिकापर खडा किया गया है। उसके छह4 प्रकरण मानों उसके सुदीर्घ कमरे हैं, जिनमें योगसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी विषय रोचकतापूर्वक वर्णन किये गये हैं। योगकी जों जो बातें योगदर्शनमें संक्षेपमें कही गई हैं, उन्हींका विविधरूपमें विस्तार करके ग्रन्थकारने योगवाशिष्ठका कलेवर बहुत बढा दिया है, जिससे यही कहना पडता है कि योगवाशिष्ठ योगका ग्रन्थराज है।

पुराणमें सिर्फ पुराणशिरोमणि भागवतको ही देखिये, उसमें योगका सुमधुर पद्योंमे पूरा वर्णन है5।

योगविषयक विविध साहित्यसे लोगोंकी रुचि इतनी परिमार्जित हो गई थी कि तान्त्रिक संप्रदायवालोंने भी तन्त्रग्रन्थोंमें योगको जगह दी, यहां तक कि योग तन्त्रका एक खासा अंग बन गया। अनेक तान्त्रिक ग्रन्थोंमें योगकी चर्चा है, पर उन सबमें महानिर्वाणतन्त्र, षट्चक्रनिरूपण आदि मुख्य हैं6।

---

1 गीताके अठारह अध्यायोंमें पहले छह अध्याय कर्मयोग प्रधान, बीचके छह अध्याय भक्तियोग प्रधान और अंतिम छह अध्याय ज्ञानयोग प्रधान हैं।

2 योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः। एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥ १०॥
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः। नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥ ११॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः। उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये॥ १२॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ १३॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः। मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥१४॥ अ० ६

3 शान्तिपर्व १९३, २१७, २४६, २५४, इत्यादि। अनुशासनपर्व ३६, २४६ इत्यादि।

4 वैराग्य, मुमुक्षुव्यवहार, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण। 5 स्कन्ध ३ अध्याय २८; स्कन्ध ११–अ० १५, १९, २० आदि। 6 देखो महानिर्वाणतन्त्र ३ अध्याय। देखो षट्चक्रनिरूपण—

ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः। शिवात्मनोरभेदेन प्रतिपत्तिं परे विदुः॥ पृष्ठ ८२
Tantrik Texts में छपा हुआ।

समत्वभावनां नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः। समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम्॥ पृ० ९१ ,,
यदत्र नात्र निर्भासः स्तिमितोदधिवत् स्मृतम्। स्वरूपशून्यं यद् ध्यानं तत्समाधिर्विधीयते॥ पृ० ९० ,,
त्रिकोणं तस्यान्तः स्फुरति च सततं विद्युदाकाररूपं।
तदन्तः शून्यं तत् सकलसुरगणैः सेवितं चातिगुप्तम्॥ पृ. ६० ,,
"आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः। पृ० ६१ ,,
ध्यै चिन्तायाम् स्मृतो धातुश्चिन्ता तत्त्वेन निश्चला। एतद् ध्यानमिह प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं द्विधा।
सगुणं वर्णभेदेन निर्गुणं केवलं तथा॥ पृ० १३४ ,,

जब नदीमें बाढ आती है तब वह चारों ओरसे बहने लगती है। योगका यही हाल हुवा, और वह आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि बाह्य अंगोंमें प्रवाहित होने लगा। बाह्य अंगोंका भेद प्रभेद पूर्वक इतना अधिक वर्णन किया गया और उसपर इतना अधिक जोर दिया गया कि जिससे यह योगकी एक शाखा ही अलग बन गई, जो हठयोगके नामसे प्रसिद्ध है।

हठयोगके अनेक ग्रंथोंमें हठयोगप्रदीपिका, शिवसंहिता, घेरंडसंहिता, गोरक्षपद्धति, गोरक्षशतक आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें आसन, बन्ध, मुद्रा, षट्कर्म, कुंभक, रेचक, पूरक आदि बाह्य योगांगोंका पेट भर भरके वर्णन किया है; और घेरण्डने तो चौरासी आसनको चौरासी लाख तक पहुंचा दिया है।

उक्त हठयोगप्रधान ग्रन्थोंमें हठयोगप्रदीपिका ही मुख्य है, क्यों कि उसीका विषय अन्य ग्रन्थोंमें विस्तार रूपसे वर्णन किया गया है। योगविषयक साहित्यके जिज्ञासुओंको योगतारावली, बिन्दुयोग, योगबीज और योगकल्पद्रुमका नाम भी भूलना न चाहिये। विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीमें मैथिल पण्डित भवदेवद्वारा रचित योगनिबन्ध नामक हस्तलिखित ग्रन्थ भी देखनेमें आया है, जिसमें विष्णुपुराण आदि अनेक ग्रन्थोंके हवाले देकर योगसम्बन्धी प्रत्येक विषय पर विस्तृत चर्चा की गई है।

संस्कृत भाषामें योगका वर्णन होनेसे सर्व साधारणकी जिज्ञासाको शान्त न देखकर लोकभाषाके योगियोंने भी अपनी जबानमें योगका आलाप करना शुरु कर दिया।

महाराष्ट्रीय भाषामें गीताकी ज्ञानदेवकृत ज्ञानेश्वरी टीका प्रसिद्ध है, जिसके छट्ठे अध्यायका भाग बडा ही हृदयहारी है। निःसन्देह ज्ञानेश्वरी द्वारा ज्ञानदेवने अपने अनुभव और वाणीको अवन्ध्य कर दिया है। सुहंगेबा अंबिये रचित नाथसम्प्रदायानुसारी सिद्धान्तसंहिता भी योगके जिज्ञासुओंके लिये देखनेकी वस्तु है।

कबीरका बीजक ग्रन्थ योगसम्बन्धी भाषासाहित्यका एक सुन्दर मणका है।

अन्य योगी सन्तोंने भी भाषामें अपने अपने योगानुभवकी प्रसादी लोगोंको चखाई है, जिससे जनताका बहुत बडा भाग योगके नाम मात्रसे मुग्ध बन जाता है।

अत एव हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि प्रसिद्ध प्रत्येक प्रान्तीय भाषामें पातञ्जल योगशास्त्रका अनुवाद तथा विवेचन आदि अनेक छोटे बडे ग्रन्थ बन गये हैं। अंग्रेजी आदि विदेशीय भाषामें भी योगशास्त्रका अनुवाद आदि बहुत कुछ बन गया है[1], जिसमें वूडका भाष्यटीका सहित मूल पातञ्जल योगशास्त्रका अनुवाद विशेष उल्लेख योग्य है।

जैन सम्प्रदाय निवृत्ति-प्रधान है। उसके प्रवर्तक भगवान् महावीरने बारह सालसे अधिक समय तक मौन धारण करके सिर्फ आत्मचिन्तनद्वारा योगाभ्यासमें ही मुख्यतया जीवन विताया। उनके हजारों शिष्य[2] तो ऐसे थे जिन्होंने घरबार छोड कर योगाभ्यासद्वारा साधुजीवन विताना ही पसंद किया था।

जैन सम्प्रदायके मौलिक ग्रन्थ आगम कहलाते हैं। उनमें साधुचर्याका जो वर्णन है, उसको देखनेसे यह स्पष्ट जान पडता है कि पांच यम; तप, स्वाध्याय आदि नियम; इन्द्रिय-जय-रूप प्रत्याहार इत्यादि जो योगके खास अङ्ग हैं, उन्हींको साधुजीवनका एक मात्र प्राण माना[3] है।

---

1 प्रो० राजेन्द्रलाल मित्र, स्वामी विवेकानंद, श्रीयुत रामप्रसाद आदि कृत।

2 " चउद्दसहिं समणसाहस्सीहिं छत्तीसाहिं अजिआसाहस्सीहिं " उववाइसूत्र।

3 देखो आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, मूलाचार, आदि।

जैनशास्त्रमें योगपर यहां तक भार दिया गया है कि पहले तो वह मुमुक्षुओंको आत्मचिंतनके सिवाय दूसरे कार्योंमें प्रवृत्ति करनेकी संमति ही नहीं देता; और अनिवार्य रूपसे प्रवृत्ति करनी आवश्यक हो तो वह निवृत्तिमय प्रवृत्ति करनेको कहता है। इसी निवृत्तिमय प्रवृत्तिका नाम उसमें अष्टप्रवचनमाता[1] है। साधुजीवनकी दैनिक और रात्रिक चर्यामें तीसरे प्रहरके सिवाय अन्य तीनों प्रहरोंमें मुख्यतया स्वाध्याय और ध्यान करनेको ही कहा गया है[2]।

यह बात भूलनी न चाहिये कि जैन आगमोंमें योग अर्थमें प्रधानतया ध्यानशब्द प्रयुक्त है। ध्यानके लक्षण, भेद प्रभेद, आलम्बन आदिका विस्तृत वर्णन अनेक जैन आगमोंमें है[3]। आगमके बाद निर्युक्तिका नंबर है[4]। उसमें भी आगमगत ध्यानका ही स्पष्टीकरण है। वाचक उमास्वाति कृत तत्त्वार्थसूत्रमें[5] भी ध्यानका वर्णन है, पर उसमें आगम और निर्युक्तिकी अपेक्षा कोई अधिक बात नहीं है। जिनभद्रगणी क्षमाश्रमणका ध्यानशतक[6] आगमादि उक्त ग्रन्थोंमें वर्णित ध्यानका स्पष्टीकरण मात्र है। यहां तकके योगविषयक जैन विचारोंमें आगमोक्त वर्णनकी शैली ही प्रधान रही है। पर इस शैलीको श्रीमान् हरिभद्रसूरिने एकदम बदलकर तत्कालिन परिस्थिति व लोकरुचीके अनुसार नवीन परिभाषा दे कर और वर्णनशैली अपूर्वसी बनाकर जैन योग-साहित्यमें नया युग उपस्थित किया। इसके सबूतमें उनके बनाये हुए योगबिन्दु, योगदृष्टीसमुच्चय, योगविंशिका, योगशतक[7], षोडशक ये ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थोंमें उन्होंने सिर्फ जैन-मार्गानुसार योगका वर्णन करके ही संतोष नहीं माना है, किन्तु पातंजल योगसूत्रमें वर्णित योगप्रक्रिया और उसकी खास परिभाषाओंके साथ जैन संकेतोंका मिलान भी किया है[8]। योगदृष्टिसमुच्चयमें योगकी आठ दृष्टियोंका[9] जो वर्णन है, वह सारे योगसाहित्यमें एक नवीन दिशा है।

श्रीमान् हरिभद्रसूरिके योगविषयक ग्रन्थ उनकी योगाभिरुचि और योगविषयक व्यापक बुद्धिके खासे नमुने हैं।

इसके बाद श्रीमान् हेमचन्द्रसूरिकृत योगशास्त्रका नंबर आता है। उसमें पातञ्जल-योगशास्त्र-निर्दिष्ट आठ योगांगोंके क्रमसे साधु और गृहस्थ जीवनकी आचार-प्रक्रियाका जैन शैलीके अनुसार वर्णन है, जिसमें आसन तथा

---

1 देखो उत्तराध्ययन अ० २४।

2 दिवसस्स चउरो भाए, कुज्जा भिक्खु विअक्खणो। तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसु वि ॥ ११॥
पढमं पोरिसि सज्झायं, बिइअं झाणं झिआयइ। तइआए गोअरकालं, पुणो चउत्थिए सज्झायं ॥ १२॥
रत्तिं पि चउरो भाए, भिक्खु कुज्जा विअक्खणो। तओ उत्तरगुणे कुज्जा, राईभागेसु चउसु वि ॥ १७॥

पढमं पोरिसि सज्झायं, बिइअं झाणं झिआयइ।
तइआए निद्दमोक्खं तु, चउत्थिए भुज्जो वि सज्झायं ॥ १८ ॥—उत्तराध्ययन अ० २६।

3 देखो स्थानाङ्ग अ० ४ उद्देश १। समवायाङ्ग स० ४। भगवती शतक २५-उद्देश ७। उत्तराध्ययन अ० ३०, गा० ३५। 4 देखो आवश्यकनिर्युक्ति कायोत्सर्ग अध्ययन गा. १४६२-१४८६।

5 देखो अ० ९ सू० २७ से आगे। 6 देखो हारिभद्रीय आवश्यक वृत्ति प्रतिक्रमणाध्ययन पृ० ५८१

7 यह ग्रन्थ जैन ग्रन्थावलिमें उल्लिखित है, पृ० ११३।

8 समाधिरेष एवान्यैः संप्रज्ञातोऽभिधीयते। सम्यक्प्रकर्षरूपेण वृत्त्यर्थज्ञानतस्तथा ॥ ४१८ ॥
असंप्रज्ञात एषोऽपि समाधिर्गीयते परैः। निरुद्धाशेषवृत्त्यादितत्स्वरूपानुवेधतः ॥ ४२० ॥ इत्यादि, योगबिन्दु।

9 मित्रा तारा बला दिप्रा स्थिरा कान्ता प्रभा परा। नामानि योगदृष्टीनां लक्षणं च निबोधत ॥ १३ ॥
इन आठ दृष्टियोंका स्वरूप, दृष्टान्त आदि विषय, योगजिज्ञासुओंके लिये देखने योग्य हैं। इसी विषयपर यशोविजयजीने २१, २२, २३, २४ ये चार द्वात्रिंशिकायें लिखी हैं। साथ ही उन्होंने संस्कृत न जाननेवालोंके हितार्थ आठ दृष्टियोंकी सज्झाय भी गुजराती भाषामें बनाई है।

प्राणायामसे संबन्ध रखनेवाली अनेक बातोंका विस्तृत स्वरूप है; जिसको देखनेसे यह जान पडता है कि तत्कालीन लोगोंमें हठयोग-प्रक्रियाका कितना अधिक प्रचार था। हेमचन्द्राचार्यने अपने योगशास्त्रमें हरिभद्रसूरिके योगविषयक ग्रन्थोंकी नवीन परिभाषा और रोचक शैलीका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है, पर शुभचन्द्रचार्यके ज्ञानार्णवगत पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, और रूपातीत ध्यानका विस्तृत व स्पष्ट वर्णन किया है1। अन्तमें उन्होंने स्वानुभवसे विक्षिप्त, यातायात, श्लिष्ट और सुलीन ऐसे मनके चार भेदोंका वर्णन करके नवीनता लानेका भी खास कौशल दिखाया है2। निस्सन्देह उनका योगशास्त्र जैन तत्त्वज्ञान और जैन आचारका एक पाठ्य ग्रन्थ है।

इसके बाद उपाध्याय-श्रीयशोविजयकृत योगग्रन्थोंपर नजर ठहरती है। उपाध्यायजीका शास्त्रज्ञान, तर्ककौशल और योगानुभव बहुत गम्भीर था। इससे उन्होंने अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद तथा सटीक बत्तीस बत्तीसीयाँ योग संबन्धी विषयोंपर लिखी हैं, जिनमें जैन मन्तव्योंकी सूक्ष्म और रोचक मीमांसा करनेके उपरांत अन्य दर्शन और जैनदर्शनका मिलान भी किया है3। इसके सिवा उन्होंने हरिभद्रसूरिकृत योगविंशिका तथा षोडशकपर टीका लिख कर प्राचीन गूढ तत्त्वोंका स्पष्ट उद्घाटन भी किया है। इतना ही करके वे सन्तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने महर्षि पतञ्जलिकृत योगसूत्रोंके उपर एक छोटीसी वृत्ति भी लिखी है। यह वृत्ति जैन प्रक्रियाके अनुसार लिखी हुई है, इसलिये उसमें यथासंभव योगदर्शनकी भित्ति-स्वरूप सांख्य-प्रक्रियाका जैन-प्रक्रियाके साथ मिलान भी किया है, और अनेक स्थलोंमें उसका सयुक्तिक प्रतिवाद भी किया है। उपाध्यायजीने अपनी विवेचनामें जो मध्यस्थता, गुणग्राहकता, सूक्ष्म समन्वयशक्ति और स्पष्टभाषिता दिखाई है4 ऐसी दूसरे आचार्योंमें बहुत कम नजर आती है5।

एक योगसार नामक ग्रन्थ भी श्वेताम्बर साहित्यमें है। कर्ताका उल्लेख उसमें नहीं है, पर उसके दृष्टान्त आदि वर्णनसे जान पडता है कि हेमचन्द्राचार्यके योगशास्त्रके आधारपर किसी श्वेताम्बर आचार्यके द्वारा वह रचा गया है। दिगम्बर साहित्यमें ज्ञानार्णव तो प्रसिद्ध ही है, पर ध्यानसार और योगप्रदीप ये दो हस्तालिखित ग्रन्थ भी हमारे देखनेमें आये हैं, जो पद्यबन्ध और प्रमाणमें छोटे हैं। इसके सिवाय श्वेताम्बर दिगम्बर संप्रदायके योगविषयक ग्रन्थोंका कुछ विशेष परिचय जैन ग्रन्थावलि पृ० १०६ से भी मिल सकता है। बस यहां तकहीमें जैन योगसाहित्य समाप्त हो जाता है।

बौद्ध सम्प्रदाय भी जैन सम्प्रदायकी तरह निवृत्तिप्रधान है। भगवान् गौतम बुद्धने बुद्धत्व प्राप्त होनेसे पहले छह वर्षतक मुख्यतया ध्यानद्वारा योगाभ्यास ही किया। उनके हजारों शिष्य भी उसी मार्ग पर चले। मौलिक बौद्धग्रन्थोंमें जैन आगमोंके समान योग अर्थमें बहुधा ध्यान शब्द ही मिलता है, और उनमें ध्यानके

---

1 देखो प्रकाश ७–१० तक। 2 १२ वाँ प्रकाश श्लोक २–३–४। 3 अध्यात्मसारके योगाधिकार और ध्यानाधिकारमें प्रधानतया भगवद्गीता तथा पातञ्जलसूत्रका उपयोग करके अनेक जैनप्रक्रियाप्रसिद्ध ध्यान-विषयोंका उक्त दोनों ग्रन्थोंके साथ समन्वय किया है, जो बहुत ध्यानपूर्वक देखने योग्य है। अध्यात्मोपनिषद्के शास्त्र, ज्ञान, क्रिया और साम्य इन चारों योगोंमें प्रधानतया योगवाशिष्ठ तथा तैत्तिरीय उपनिषदके वाक्योंका अवतरण दे कर तात्त्विक ऐक्य बतलाया है। योगावतार बत्तीसीमें खास कर पातञ्जल योगके पदार्थोंका जैन प्रक्रियाके अनुसार स्पष्टीकरण किया है।

4 इसके लिये उनका ज्ञानसार ग्रन्थ जो उन्होंने अंतिम जीवनमें लिखा मालुम होता है वह ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। शास्त्रवार्तासमुच्चयकी उनकी टीका (पृ० १०) भी देखनी आवश्यक है।

5 इसके लिए उनके शास्त्रवार्तासमुच्चयादि ग्रन्थ ध्यानपूर्वक देखने चाहिए, और खास कर उनकी पातञ्जल सूत्रवृत्ति मननपूर्वक देखनेसे हमारा कथन अक्षरशः विश्वसनीय मालूम पडेगा।

चार भेद नजर आते हैं। उक्त चार भेदके नाम तथा भाव प्रायः वही हैं, जो जैनदर्शन तथा योगदर्शनकी प्रक्रियामें हैं[1]। बौद्ध सम्प्रदायमें समाधि राज नामक ग्रन्थ भी है। वैदिक, जैन और बौद्ध संप्रदायके योगविषयक साहित्यका हमने बहुत संक्षपमें अत्यावश्यक परिचय कराया है, पर इसके विशेष परिचयके लिये—कॅटूलोगस् कॅटूलॉगॉरम्[2], वो० १ पृ० ४७७ से ४८१ पर जो योगविषयक ग्रन्थोंकी नामावलि है वह देखने योग्य है।

यहां एक बात खास ध्यान देनेके योग्य है, वह यह कि यद्यपि वैदिक साहित्यमें अनेक जगह हठयोगकी प्रथाको अग्राह्य कहा है[3], तथापि उसमें हठयोगकी प्रधानतावाले अनेक ग्रन्थोंका और मार्गोंका निर्माण हुआ है। इसके विपरीत जैन और बौद्ध साहित्यमें हठयोगने स्थान नहीं पाया है, इतना ही नहीं, बल्कि उसमें हठयोगका स्पष्ट निषेध भी किया है[4]।

---

1. सो खो अहं ब्राह्मण विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमज्झानं उपसंपज्ज विहासिं; वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं संपसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियज्झानं उपसंपज्ज विहासिं; पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहासिं; सतो च संपजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेसिं, यं तं अरिया आचिक्खन्ति—उपेक्खको सतिमा सुखविहारीऽति ततियज्झानं उपसंपज्ज विहासिं; सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बऽव सोमनस्स दोमनस्सानं अत्थंगमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासति पारिसुद्धिं चतुत्थज्झानं उपसंपज्ज मज्झिमनिकाये भयभेरवसुत्तं विहासिं।

इन्हीं चार ध्यानोंका वर्णन दीघनिकाय सामञ्ञफलसुत्तमें है। देखो प्रो. सि. वि. राजवाडे कृत मराठी अनुवाद पृ. ७२।

यही विचार प्रो. धर्मानंद कौशाम्बी लिखित बुद्धलीलासारसंग्रहमें है। देखो पृ १२८।

जैनसूत्रमें शुक्लध्यानके भेदोंका विचार है, उसमें उक्त सवितर्क आदि चार ध्यान जैसा ही वर्णन है। देखो तत्त्वार्थ अ० ९ सू० ४१—४४।

योगशास्त्रमें संप्रज्ञात समाधि तथा समापत्तिओंका वर्णन है। उसमें भी उक्त सवितर्क निर्वितर्क आदि ध्यान जैसा ही विचार है। पा. सू. पा. १—१७, ४२, ४३, ४४।

2 थिआडोर आउफ्रेटकृत, लिप्झिगमें प्रकाशित १८९१ की आवृत्ति।

3 उदाहरणार्थः—

सतीषु युक्तिष्वेतासु हठान्नियमयन्ति ये। चेतस्ते दीपमुत्सृज्य विनिघ्नन्ति तमोऽञ्जनैः॥ ३७॥
विमूढाः कर्तुमुद्युक्ता ये हठाच्चेतसो जयम्। ते निबध्नन्ति नागेन्द्रमुन्मत्तं बिसतन्तुभिः॥ ३८॥
चित्तं चित्तस्य वाऽदूरं संस्थितं स्वशरीरकम्। साधयन्ति समुत्सृज्य युक्तिं ये तान्हतान् विदुः॥ ३९॥

योगवाशिष्ठ—उपशम प्र० सर्ग ९२.

4 इसके उदाहरणमें बौद्ध धर्ममें बुद्ध भगवान्ने तो शुरुमें कष्टप्रधान तपस्याका आरंभ करके अंतमें मध्यमप्रतिपदा मार्गका स्वीकार किया है—देखो बुद्धलीलासारसंग्रह.

जैनशास्त्रमें श्रीभद्रबाहुस्वामिने आवश्यकनिर्युक्तिमें "ऊसासं ण णिरुंभइ" १५२० इत्यादि उक्तिसे हठयोगका ही निराकरण किया है। श्रीहेमचन्द्राचार्यने भी अपने योगशास्त्रमें

"तन्नाप्नोति मनःस्वास्थ्यं प्राणायामैः कदर्थितं। प्राणस्यायमने पीडा तस्यां स्यात् चित्तविप्लवः॥"
इत्यादि उक्तिसे उसी बातको दोहराया है। श्रीयशोविजयजीने भी पातञ्जलयोगसूत्रकी अपनी वृत्तिमें (१—३४) प्राणायामको योगका अनिश्चित साधन कह कर हठयोगका ही निरसन किया है।

योगशास्त्र—ऊपरके वर्णनसे मालूम हो जाता है कि—योगप्रक्रियाका वर्णन करनेवाले छोटे बडे अनेक ग्रन्थ हैं। इन सब उपलब्ध ग्रन्थोंमें महर्षि–पतञ्जलिकृत योगशास्त्रका आसन ऊंचा है। इसके तीन कारण हैं—१ ग्रन्थकी संक्षिप्तता तथा सरलता, २ विषयकी स्पष्टता तथा पूर्णता, ३ और मध्यस्थभाव तथा अनुभवसिद्धता यही कारण है कि योगदर्शन यह नाम सुनते ही सहसा पातञ्जल योगसूत्रका स्मरण हो आता है। श्रीशंकराचार्यने अपने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें योगदर्शनका प्रतिवाद करते हुए जो " अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः " ऐसा उल्लेख किया है[1], उससे इस बातमें कोई संदेह नहीं रहता कि उनके सामने पातञ्जल योगशास्त्रसे भिन्न दूसरा कोई योगशास्त्र रहा है। क्यों कि पातञ्जल योगशास्त्रका आरम्भ " अथ योगानुशासनम् " इस सूत्रसे होता है, और उक्त भाष्योल्लिखित वाक्यमें भी ग्रन्थारम्भसूचक अथ शब्द है, यद्यपि उक्त भाष्यमें अन्यत्र और भी योगसम्बन्धी दो उल्लेख हैं[2] जिनमें एक तो पातञ्जल योगशास्त्रका संपूर्ण सूत्र ही है[3] और दूसरा उसका अविकल सूत्र नहीं, किन्तु उसके सूत्रसे मिलता जुलता है[4]। तथापि " अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः " इस उल्लेखकी शब्दरचना और स्वतन्त्रताकी और ध्यान देनेसे यही कहना पडता है कि पिछले दो उल्लेख भी उसी भिन्न योगशास्त्रके होने चाहिये, जिसका अंश " अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः " यह वाक्य माना जाय। अस्तु, जो कुछ हो, आज हमारे सामने तो पतञ्जलिका ही योगशास्त्र उपस्थित है, और वह सर्वप्रिय है; इसलिये बहुत संक्षेपमें भी उसका बाह्य तथा आन्तरिक परिचय कराना अनुपयुक्त न होगा।

इस योगशास्त्रके चार पद और कुल १९५ सूत्र हैं। पहले पादका नाम समाधि, दूसरेका साधन, तीसरेका विभूति, और चोथेका कैवल्यपाद है। प्रथमपादमें मुख्यतया योगका स्वरूप, उसके उपाय और चित्तस्थिरताके उपायोंका वर्णन है। दूसरे पादमें क्रियायोग, आठ योगाङ्ग, उनके फल तथा चतुर्व्यूहका[5] मुख्य वर्णन है॥

तीसरे पादमें योगजन्य विभूतियोंके वर्णनकी प्रधानता है। और चौथे पादमें परिणामवादके स्थापन, विज्ञानवादके निराकरण तथा कैवल्य अवस्थाके स्वरूपका वर्णन मुख्य है। महर्षि पतञ्जलिने अपने योगशास्त्रकी नींव सांख्यसिद्धान्तपर डाली है। इसलिये उसके प्रत्येक पादके अन्तमें " योगशास्त्रे सांख्यप्रवचने " इत्यादि उल्लेख मिलता है। " सांख्यप्रवचने " इस विशेषणसे यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि सांख्यके सिवाय अन्यदर्शनके सिद्धांतोंके आधारपर भी रचे हुए योगशास्त्र उस समय

---

1 ब्रह्मसूत्र २–१–३ भाष्यगत।

2 " स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः " ब्रह्मसूत्र १–३–३३ भाष्यगत। योगशास्त्रप्रसिद्धाः मनसः पञ्च वृत्तयः परिगृह्यन्ते, " प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः नाम " २–४–१२ भाष्यगत।

पं. वासुदेव शास्त्री अभ्यंकरने अपने ब्रह्मसूत्रके मराठी अनुवादके परिशिष्टमें उक्त दो उल्लेखोंका योगसूत्ररूपसे निर्देश किया है, पर " अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः " इस उल्लेखके संबंधमें कहीं भी ऊहापोह नहीं किया है।

3 मिलाओ पा. २ सू. ४४। 4 मिलाओ पा. १ सू. ६।

5 हेय, हेयहेतु, हान, हानोपाय ये चतुर्व्यूह कहलाते हैं। इनका वर्णन सूत्र १६–२६ तकमें है।

मौजुद थे या रचे जाते थे। इस योगशास्त्रके ऊपर अनेक छोटे बडे टीका ग्रन्थ1 हैं, पर व्यासकृत भाष्य और वाचस्पतिकृत टीकासे उसकी उपादेयता बहुत बढ गई है।

सब दर्शनोंके अन्तिम साध्यके सम्बन्धमें विचार किया जाय तो उसके दो पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम पक्षका अन्तिम साध्य शाश्वत सुख नहीं है। उसका मानना है कि मुक्तिमें शाश्वत सुख नामक कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, उसमें जो कुछ है वह दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति ही। दूसरा पक्ष शाश्वतिक सुखलाभको ही मोक्ष कहता है। ऐसा मोक्ष हो जानेपर दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति आप ही आप हो जाती है। वैशेषिक नैयायिक2, सांख्य3, योग4, और बौद्धदर्शन5 प्रथम पक्षके अनुगामी हैं। वेदान्त6 और जैनदर्शन7, दूसरे पक्षके अनुगामी हैं।

योगशास्त्रका विषय-विभाग उसके अन्तिमसाध्यानुसार ही है। उसमें गौण मुख्य रूपसे अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित हैं, पर उन सबका संक्षेपमें वर्गीकरण किया जाय तो उसके चार विभाग हो जाते हैं। १ हेय, २ हेय-हेतु, ३ हान, ४ हानोपाय। यह वर्गीकरण स्वयं सूत्रकारने किया है; और इसलिये भाष्यकारने योगशास्त्रको चतुर्व्यूहात्मक कहा है8। सांख्यसूत्रमें भी यही वर्गीकरण है। बुद्ध भगवान्ने इसी चतुर्व्यूहको आर्य-सत्य नामसे प्रसिद्ध किया है; और योगशास्त्रके आठ योगाङ्गोंकी तरह उन्होंने चौथे आर्य-सत्यके साधनरूपसे आर्य अष्टाङ्गमार्गका9 उपदेश किया है।

दुःख हेय है10, अविद्या हेयका कारण है11, दुःखका आत्यन्तिक नाश हान है12, और विवेक-ख्याति हानका उपाय है13।

उक्त वर्गीकरणकी अपेक्षा दूसरी रीतिसे भी योगशास्त्रका विषय-विभाग किया जा सकता है। जिससे कि उसके मन्तव्योंका ज्ञान विशेष स्पष्ट हो। यह विभाग इस प्रकार है-१ ज्ञाता, २ ईश्वर, ३ जगत्, ४ संसार-मोक्षका स्वरूप, और उसके कारण।

१. ज्ञाता दुःखसे छुटकारा पानेवाले द्रष्टा अर्थात् चेतनका नाम है। योग-शास्त्रमें सांख्य14

---

1 व्यास कृत भाष्य, वाचस्पतिकृत तत्त्ववैशारदी टीका, भोजदेवकृत राजमार्तंड, नागोजीभट्ट कृत वृत्ति, विज्ञानाभिक्षु कृत वार्तिक, योगचन्द्रिका, मणिप्रभा, भावागणेशीय वृत्ति, बालरामोदासीन कृत टिप्पण आदि।

2 " तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः " न्यायदर्शन १-१-२२। 3 ईश्वरकृष्णकारिका १। 4 उसमें हानतत्व मान कर दुःखके आत्यन्तिक नाशको ही हान कहा है। 5 बुद्ध भगवान्के तीसरे निरोध नामक आर्यसत्यका मतलब दुःख नाशसे है। 6 वेदान्त दर्शनमें ब्रह्मको सच्चिदानंदस्वरूप माना है, इसीलिये उसमें नित्यसुखकी अभिव्यक्तिका नाम हि मोक्ष है। 7 जैन दर्शनमें भी आत्माको सुखस्वरूप माना है, इसलिये मोक्षमें स्वाभाविक सुखकी अभिव्यक्ति ही उस दर्शनको मान्य है।

8 यथा चिकित्साशास्त्रं चतुर्व्यूहम्-रोगो रोगहेतुरारोग्यं भैषज्यमिति, एवमिदमपि शास्त्रं चतुर्व्यूहमेव। तद्यथा-संसारः संसारहेतुर्मोक्षो मोक्षोपाय इति। तत्र दुःखबहुलः संसारो हेयः। प्रधानपुरुषयोः संयोगो हेयहेतुः। संयोगस्यात्यन्तिकी निवृत्तिर्हानम्। हानोपायः सम्यग्दर्शनम्। पा० २ सू० १५ भाष्य।

9 सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। बुद्धलीलासार संग्रह. पृ. १६०। 10 " दुःखं हेयमानागतम् " २-१६ यो. सू.। 11 " द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः २-१७। " तस्य हेतुरविद्या " २-२४ यो. सू.।

12 " तदभावात् संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम् " २०-२६ यो. सू.। 13 " विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः " २-२६. यो. सू.। 14 " पुरुषबहुत्वं सिद्धं " ईश्वरकृष्णकारिका- १८।

वैशेषिक[1]-नैयायिक, बौद्ध, जैन[2] और पूर्णप्रज्ञ (मध्व[3]) दर्शनके समान द्वैतवाद अर्थात् अनेक चेतन माने गये हैं[4]।

योगशास्त्र चेतनको जैन दर्शनकी तरह[5] देहप्रमाण अर्थात् मध्यमपरिमाणवाला नहीं मानता, और मध्वसम्प्रदायकी तरह अणुप्रमाण भी नहीं मानता[6] किन्तु सांख्य[7] वैशेषिक[8],-नैयायिक और शांकरवेदान्तकी[9] तरह वह उसको व्यापक मानता है[10]।

इसी प्रकार वह चेतनको जैनदर्शनकी तरह[11] परिणामि-नित्य नहीं मानता, और न बौद्ध दर्शनकी तरह उसको क्षणिक—अनित्य ही मानता है, किन्तु सांख्य आदि उक्त शेष दर्शनोंकी तरह[12] वह उसे कूटस्थ—नित्य मानता[13] है।

२. ईश्वरके सम्बन्धमें योगशास्त्रका मत सांख्य दर्शनसे भिन्न है। सांख्य दर्शन नाना चेतनोंके अतिरिक्त ईश्वरको नहीं मानता[14], पर योगशास्त्र–सम्मत ईश्वरका स्वरूप नैयायिक–वैशेषिक आदि दर्शनोंमें माने गये ईश्वरस्वरूपसे कुछ भिन्न है। योगशास्त्रने ईश्वरको एक अलग व्यक्ति तथा शास्त्रोपदेशक माना है सही, पर उसने नैयायिक आदिकी तरह ईश्वरमें नित्यज्ञान, नित्यइच्छा और नित्यकृतिका सम्बन्ध न मान कर इसके स्थानमें

---

1 "व्यवस्थातो नाना" ३-२-२०. वैशेषिकदर्शन। 2 "पुद्गलजीवास्त्वनेकद्रव्याणि" ५-५. तत्त्वार्थसूत्र—भाष्य।

3 जीवेश्वरभिदा चैव जडेश्वरभिदा तथा। जीवभेदो मिथश्चैव जडजीवभिदा तथा॥
मिथश्च जडभेदो यः प्रपञ्चो भेदपञ्चकः। सोऽयं सत्योऽप्यनादिश्च सादिश्चेन्नाशमाप्नुयात्॥
—सर्वदर्शनसंग्रह पूर्णप्रज्ञदर्शन।

4 " कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् " २–२२ यो. सू.। 5 असंख्येयभागादिषु जीवानाम् "। १५। " प्रदेशसंहारविसर्गाभ्यां प्रदीपवत् " १६–तत्त्वार्थसूत्र अ० ५।

6 देखो " उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् "। ब्रह्मसूत्र २–३–१८ पूर्णप्रज्ञ भाष्य। तथा मिलान करो अभ्यंकरशास्त्री कृत मराठी शांकरभाष्य अनुवाद भा. ४ पृ. १५३ टिप्पण ४६।

7 " निष्क्रियस्य तदसम्भवात् " सां. सू. १–४९, निष्क्रियस्य–विभोः पुरुषस्य गत्यसम्भवात्–भाष्य विज्ञानभिक्षु।

8 विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा। " ७–१–२२–वै. द.। 9 देखो ब्र. सू. २–३–२९· भाष्य।

10 इसलिये कि योगशास्त्र आत्मस्वरूपके विषयमें सांख्यसिद्धान्तानुसारी है।

11 "नित्यावस्थितान्यरूपाणि" ३। " उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् "। २९। " तद्भावाव्ययं नित्यम् ३०। तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ भाष्य सहित.

12 देखो ई० कृ० कारिका ६३ सांख्यतत्त्वकौमुदी। देखो न्यायदर्शन ४–१–१०। देखो ब्रह्मसूत्र २–१–१४। २–१–२७; शांकरभाष्य सहित।

13 देखो योगसूत्र. " सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्य अपरिणामित्वात् " ४–१८। " चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाऽकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् " ४–२२। तथा " द्वयी चेयं नित्यता, कूटस्थनित्यता, परिणामिनित्यता च। तत्र कूटस्थनित्यता पुरुषस्य, परिणामिनित्यता गुणानाम् " इत्यादि ४–३३ भाष्य।

14 देखो सांख्यसूत्र १–९२ आदि।

सत्त्वगुणका परमप्रकर्ष मान कर तद्द्वारा जगतउद्धारादिकी सब व्यवस्था घटा[1] दी है।

३ योगशास्त्र दृश्य जगत्को न तो जैन, वैशेषिक, नैयायिक दर्शनोंकी तरह परमाणुका परिणाम मानता है, न शांकरवेदान्त दर्शनकी तरह ब्रह्मका विवर्त या ब्रह्मका परिणाम ही मानता है, और न बौद्धदर्शनकी तरह शून्य या विज्ञान्यत्मक ही मानता है: किन्तु सांख्य दर्शनकी तरह वह उसको प्रकृतिका परिणाम तथा अनादि—अनन्त—प्रवाहस्वरूप मानता है।

४ योगशास्त्रमें वासना क्लेश और कर्मका नाम ही संसार है, तथा वासनादिका अभाव अर्थात् चेतनके स्वरूपावस्थानका नाम मोक्ष[2] है। उसमें संसारका मूल कारण अविद्या और मोक्षका मुख्य हेतु सम्यग्दर्शन अर्थात योगजन्य विवेकख्याति माना गया है।

महर्षि पतञ्जलिकी दृष्टिविशालता—यह पहले कहा जा चुका है कि सांख्य सिद्धान्त और उसकी प्रक्रियाको ले कर पतञ्जलिने अपना योगशास्त्र रचा है, तथापि उनमें एक ऐसी विशेषता अर्थात् दृष्टिविशालता नजर आती है जो अन्य दार्शनिक विद्वानोंमें बहुत कम पाई जाती है। इसी विशेषताके कारण उनका योगशास्त्र मानों सर्वदर्शनसमन्वय बन गया है। उदाहरणार्थ सांख्यका निरीश्वरवाद जब वैशेषिक, नैयायिक आदि दर्शनोंके द्वारा अच्छी तरह निरस्त हो गया और साधारण लोक-स्वभावका झुकाव भी ईश्वरोपासनाकी ओर विशेष मालूम पडा, तब अधिकारिभेद तथा रुचिविचित्रताका विचार करके पतञ्जलिने अपने योगमार्गमें ईश्वरोपासनाको भी स्थान[3] दिया, और ईश्वरके स्वरूपका उन्होंने निष्पक्ष भावसे ऐसा निरूपण[4] किया है जो सबको मान्य हो सके।

पतञ्जलिने सोचा कि उपासना करनेवाले सभी लोगोंका साध्य एक ही है, फिर भी वे उपासनाकी भिन्नता और उपासनामें उपयोगी होनेवाली प्रतीकोंकी भिन्नताके व्यामोहमें अज्ञानवश आपस आपसमें लड मरते हैं, और इस धार्मिक कलहमें अपने साध्यको लोक भूल जाते हैं। लोगोंको इस अज्ञानसे हटा कर सत्पथपर लानेके लिये उन्होंने कह दिया कि तुम्हारा मन जिसमें लगे उसीका ध्यान करो। जैसी प्रतीक तुम्हें पसंद आवे वैसी प्रतीककी[5] ही उपासना करो, पर किसी भी तरह अपना मन एकाग्र व स्थिर करो, और तद्द्वारा परमात्म-चिन्तनके सच्चे पात्र बनों। इस उदारताकी मूर्तिस्वरूप मतभेदसहिष्णु आदेशके द्वारा पतञ्जलिने सभी उपासकोंको योग-मार्गमें स्थान दिया, और ऐसा करके धर्मके नामसे होनेवाले कलहको कम कर-

---

1 यद्यपि यह व्यवस्था मूल योगसूत्रमें नहीं है, परन्तु भाष्यकार तथा टीकाकारने इसका उपपादन किया है। देखो पातञ्जल यो. पा. १ सू. २४ भाष्य तथा टीका।

2 तदा द्रष्टुः स्वरूपावस्थानम्। १—३ योगसूत्र।

3 " ईश्वरप्रणिधानाद्वा " १—३३।

4 " क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः " " तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् "। " पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात् "। (१—२४, २५, २६)

5 " यथाऽभिमतध्यानाद्वा " १—३९ इसी भावकी सूचक महाभारतमें—

ध्यानमुत्पादयत्यत्र, संहिताबलसंश्रयात्। यथाभिमतमन्त्रेण, प्रणवाद्यं जपेत्कृती ॥
(शान्तिपर्व प्र० १९४ श्लो. २०) यह उक्ति है। और योगवाशिष्ठमें—

यथाभिवाञ्छितध्यानाच्चिरमेकतयोदितात्। एकतत्त्वघनाभ्यासात्प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥
(उपशम प्रकरण सर्ग ७८ श्लो. १६।) यह उक्ति है।

नेका उन्होंने सच्चा मार्ग लोगोंको बतलाया। उनकी इस दृष्टिविशालताका असर अन्य गुण-ग्राही आचार्यों-पर भी पडा[1], और वे उस मतभेदसहिष्णुताके तत्त्वका मर्म समझ गये।

वैशेषिक, नैयायिक आदिकी ईश्वरविषयक मान्यताका तथा साधारण लोगोंकी ईश्वरविषयक श्रद्धाका योगमार्गमें उपयोग करके ही पतञ्जलि चुप न रहे, पर उन्होंने वैदिकेतर दर्शनोंके सिद्धान्त तथा प्रक्रिया जो योगमार्गके लिये सर्वथा उपयोगी जान पडी उसका भी अपने योगशास्त्रमें बडी उदारतासे संग्रह किया। यद्यपि बौद्ध विद्वान् नागार्जुनके विज्ञानवाद तथा आत्मपरिणामित्ववादको युक्तिहीन समझ कर या योगमार्गमें अनुपयोगी समझ कर उसका निरसन चोथे पादमें किया[2] है, तथापि उन्होंने बुद्धभगवान्के परमप्रिय चार आर्यसत्योंका[3] हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय रूपसे स्वीकार निःसंकोच भावसे अपने योगशास्त्रमें किया है।

---

1 पुष्पैश्च बलिना चैव वस्त्रैः स्तोत्रैश्च शोभनैः। देवानां पूजनं ज्ञेयं शौचश्रद्धासमन्वितम्॥
अविशेषेण सर्वेषामधिमुक्तिवशेन वा। गृहिणां माननीया यत्सर्वे देवा महात्मनाम्॥
सर्वान्देवान्नमस्यन्ति नैकं देवं समाश्रिताः। जितेन्द्रिया जितक्रोधा दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥
चारिसंजीवनीचारन्याय एष सतां मतः। नान्यथात्रेष्टसिद्धिः स्याद्विशेषेणादिकर्मणाम्॥
गुणाधिक्यपरिज्ञानाद्विशेषेऽप्येतदिष्यते। अद्वेषेण तदन्येषां वृत्ताधिक्ये तथात्मनः॥
योगबिन्दु श्लो. १६-२०

जो विशेषदर्शी होते हैं, वे तो कीसी प्रतीक विशेष या उपासना विशेषको स्वीकार करते हुए भी अन्य प्रकारकी प्रतीक माननेवालों या अन्य प्रकारकी उपासना करनेवालोंसे द्वेष नहीं रखते, पर जो धर्माभिमानी प्रथमाधिकारी होते हैं वे प्रतीकभेद या उपासनाभेदके व्यामोहसे ही आपसमें लड मरते हैं। इस अनिष्ट तत्त्वको दूर करनेके लिये ही श्रीमान् हरिभद्रसूरिने उक्त पद्योंमें प्रथमाधिकारीके लिये सब देवोंकी उपासनाको लाभदायक बतलानेका उदार प्रयत्न किया है। इस प्रयत्नका अनुकरण श्रीयशोविजयजीने भी अपनी "पूर्वसेवाद्वात्रिंशिका" "आठदृष्टियोंकी सज्झाय" आदि ग्रन्थोंमें किया है। एकदेशीय सम्प्रदायाभिनिवेशी लोगोंको समजानेके लिये 'चारिसंजीवनीचार' न्यायका उपयोग उक्त दोनों आचार्योंने किया है। यह न्याय बडा मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है।

इस समभावसूचक दृष्टान्तका उपनय श्रीज्ञानविमलने आठदृष्टिकी सज्झाय पर किये हुए अपने गूज-राती टबेमें बहुत अच्छी तरह घटाया है, जो देखने योग्य है। इसका भाव संक्षेपमें इस प्रकार है। कीसी स्त्रीने अपनी सखीसे कहा कि मेरा पति मेरे अधीन न होनेसे मुझे बडा कष्ट है। यह सुन कर उस आगन्तुक स्त्रीने कोई जडी खिला कर उस पुरुषको बैल बना दिया, और वह अपने स्थानको चली गई। पतिके बैल बन जानेसे उसकी पत्नी दुःखित हुई, पर फिर वह पुरुषरूप बनानेका उपाय न जाननेके कारण उस बैलरूप पतिको चराया करती थी, और उसकी सेवा किया करती थी। कीसी समय अचानक एक विद्याधरके मुखसे ऐसा सुना कि अगर बैलरूप पुरुषको संजीवनी नामक जडी चराई जाय तो वह फिर असली रूप धारण कर सकता है। विद्याधरसे यह भी सुना कि वह जडी अमुक वृक्षके नीचे है। पर उस वृक्षके नीचे अनेक प्रकारकी वन-स्पति होनेके कारण वह स्त्री संजीवनीको पहचाननेमें असमर्थ थी। इससे उस दुःखित स्त्रीने अपने बैलरूप-धारि पतिको सब वनस्पतियाँ चरा दीं। जिनमें संजीवनीको भी वह बैल चर गया। जैसे विशेष परीक्षा न होनेके कारण उस स्त्रीने सब वनस्पतियोंके साथ संजीवनी खिला कर अपने पतिका कृत्रिम बैलरूप छुडाया, और असली मनुष्यत्वको प्राप्त कराया, वैसे ही विशेष परीक्षाविकल प्रथमाधिकारी भी सब देवोंकी समभावसे उपासना करते करते योगमार्गमें विकास करके इष्ट लाभ कर सकता है।

2 देखो सू० १५, १८। 3 दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग।

जैन दर्शनके साथ योगशास्त्रका सादृश्य तो अन्य सब दर्शनोंकी अपेक्षा अधिक ही देखनेमें आता है। यह बात स्पष्ट होनेपर भी बहुतोंको विदित ही नहीं है। इसका सबब यह है कि जैनदर्शनके खास अभ्यासी ऐसे बहुत कम हैं जो उदारता पूर्वक योगशास्त्रका अवलोकन करनेवाले हों, और योगशास्त्रके खास अभ्यासी भी ऐसे बहुत कम हैं जिन्होंने जैनदर्शनका बारीकीसे ठीक ठीक अवलोकन किया हो। इसलिये इस विषयका विशेष खुलासा करना यहाँ अप्रासङ्गिक न होगा।

योगशास्त्र और जैनदर्शनका सादृश्य मुख्यतया तीन प्रकारका है। १ शब्दका, २ विषयका और ३ प्रक्रियाका।

१ मूल योगसूत्रमें ही नहीं किन्तु उसके भाष्यतकमें ऐसे अनेक शब्द हैं जो जैनेतर दर्शनोंमें प्रसिद्ध नहीं हैं, या बहुत कम प्रसिद्ध हैं, किन्तु जैन शास्त्रमें खास प्रसिद्ध हैं। जैसे—भवप्रत्यय,1 सवितर्क–सविचार-निर्विचार2, महाव्रत3, कृत-कारित-अनुमोदित4, प्रकाशावरण5, सोपक्रम-निरुपक्रम6, वज्रसंहनन7, केवली8, कुशल9, ज्ञानावरणीयकर्म10, सम्यग्ज्ञान,11 सम्यग्दर्शन,12 सर्वज्ञ,13 क्षीणक्लेश,15 चरमदेह16 आदि।

---

1 "भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्" योगसू. १–१९। "भवप्रत्ययो नारकदेवानाम्" तत्त्वार्थ अ. १–२२।

2 ध्यानविशेषरूप अर्थमें ही जैनशास्त्रमें ये शब्द इस प्रकार हैं "एकाश्रये सवितर्के पूर्वे" (तत्त्वार्थ अ. ९–४३) "तत्र सविचारं प्रथमम्" भाष्य "अविचारं द्वितीयम्" तत्त्वा० अ० ९–४४। योगसूत्रमें ये शब्द इस प्रकार आये हैं—"तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः" "स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का" "एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता" १–४२, ४३, ४४।

3 जैनशास्त्रमें मुनिसम्बन्धी पाँच यमोंके लिये यह शब्द बहुत ही प्रसिद्ध है। "सर्वतो विरतिर्महाव्रतमिति तत्त्वार्थ" अ० ७–२ भाष्य। यही शब्द उसी अर्थमें योगसूत्र २–३१ में है।

4 ये शब्द जिस भावके लिये योगसूत्र २–३१ में प्रयुक्त हैं, उसी भावमें जैनशास्त्रमें भी आते हैं, अन्तर सिर्फ इतना है कि जैनग्रन्थोंमें अनुमोदितके स्थानमें बहुधा अनुमतशब्द प्रयुक्त होता है। देखो—तत्त्वार्थ, अ. ६–९।

5 यह शब्द योगसूत्र २–५२ तथा ३–४३ में है। इसके स्थानमें जैनशास्त्रमें 'ज्ञानावरण' शब्द प्रसिद्ध है। देखो तत्त्वार्थ. ६–११ आदि।

6 ये शब्द योगसूत्र ३–२२ में हैं। जैन कर्मविषयक साहित्यमें ये शब्द बहुत प्रसिद्ध हैं। तत्त्वार्थमें भी इनका प्रयोग हुआ है, देखो—अ. २–५२ भाष्य।

7 यह शब्द योगसूत्र ३–४६ में प्रयुक्त है। इसके स्थानमें जैन ग्रन्थोंमें 'वज्रऋषभनाराचसंहनन' ऐसा शब्द मिलता है। देखो तत्त्वार्थ अ० ८–१२ भाष्य।

8 योगसूत्र २–२७ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० ६–१४।

9 देखो योगसूत्र २–२७ भाष्य, तथा दशवैकालिकनिर्युक्ति गाथा १८६।

10 देखो योगसूत्र २–१६ भाष्य, तथा आवश्यकनिर्युक्ति गाथा ८९३।

11 योगसूत्र २–२८ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० १–१।

12 योगसूत्र ४–१५ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० १–२।

13 योगसूत्र ३–४९ भाष्य, तत्त्वार्थ ३–४९।

14 योगसूत्र १–४ भाष्य। जैन शास्त्रमें बहुधा 'क्षीणमोह' 'क्षीणकषाय' शब्द मिलते हैं। देखो तत्त्वार्थ अ० ९–३८।

15 योगसूत्र २–४ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० २–५२

२ प्रसुप्त, तनु आदिक्लेशावस्था[1], पाँच यम,[2] योगजन्य विभूति,[3] सोपक्रम निरुपक्रम[4] कर्मका स्वरूप, तथा उसके दृष्टान्त, अनेक कार्योंका[5] निर्माण आदि ।

---

1 प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार इन चार अवस्थाओंका योगसूत्र २–४ में वर्णन है । जैनशास्त्रमें वही भाव मोहनीयकर्मकी सत्ता, उपशमक्षयोपशम, विरोधिप्रकृतिके उदयादिकृत व्यवधान और उदयावस्थाके वर्णनरूपसे वर्तमान है । देखो योगसूत्र २–४ की यशोविजयकृत वृत्ति ।

2 पाँच यमोंका वर्णन महाभारत आदि ग्रन्थोंमें है सही, पर उसकी परिपूर्णता "जातिदेशकालसमयाऽनवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्" योगसूत्र २–३१ में तथा दशवैकालिक अध्ययन ४ आदि जैनशास्त्रप्रतिपादित महाव्रतोंमें देखनेमें आती है ।

3 योगसूत्रके तीसरे पादमें विभूतियोंका वर्णन है, वे विभूतियाँ दो प्रकारकी हैं । १ वैज्ञानिक २ शारीरिक । अतीताऽनागतज्ञान, सर्वभूतरुतज्ञान, पूर्वजातिज्ञान, परचित्तज्ञान, भुवनज्ञान, ताराव्यूहज्ञान, आदि ज्ञानविभूतियाँ हैं । अन्तर्धान, हस्तिबल, परकायप्रवेश, अणिमादि ऐश्वर्य तथा रूपलावण्यादि कायसंपत्, इत्यादि शारीरिक विभूतियाँ हैं । जैनशास्त्रमें भी अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, जातिस्मरणज्ञान, पूर्वज्ञान आदि ज्ञानलब्धियाँ हैं, और आमौषधि, विप्रुडौषधि, श्लेष्मौषधि, सर्वौषधि, जंघाचारण-विद्याचारण, वैक्रिय, आहारक आदि शारीरिक लब्धियाँ हैं । देखो गा० ६९, ७० आवश्यकनिर्युक्ति लब्धि यह विभूतिका नामान्तर है ।

4 योगभाष्य और जैनग्रन्थोंमें सोपक्रम निरुपक्रम आयुष्कर्मका स्वरूप बिल्कुल एकसा है, इतना ही नहीं बल्कि उस स्वरूपको दिखाते हुए भाष्यकारने यो. सू. ३–२२ के भाष्यमें आर्द्र वस्त्र और तृणराशिके जो दो दृष्टान्त लिखे हैं, वे आवश्यकनिर्युक्ति (गाथा–९५६) तथा विशेषावश्यक भाष्य (गाथा–३० ६१) आदि जैनशास्त्रमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, पर तत्त्वार्थ (अ० –२५२) के भाष्यमें उक्त दो दृष्टान्तोंके उपरान्त एक दूसरा गणितविषयक दृष्टान्त भी लिखा है । इस विषयमें उक्त व्यासभाष्य और तत्त्वार्थभाष्यका शाब्दिक सादृश्य भी बहुत अधिक और अर्थसूचक है ।

" यथाऽऽर्द्रवस्त्रं वितानितं लघीयसा कालेन शुष्येत् तथा सोपक्रमम् । यथा च तदेव संपिण्डितं चिरेण संशुष्येद् एवं निरुपक्रमम् । यथा चाग्निः शुष्के कक्षे मुक्तो वातेन वा समन्ततो युक्तः क्षेपीयसा कालेन दहेत् तथा सोपक्रमम् । यथा वा स एवाऽग्निस्तृणराशौ क्रमशोऽवयवेषु न्यस्तश्चिरेण दहेत् तथा निरुपक्रमम् " योग ३–२२ भाष्य । यथाहि संहतस्य शुष्कस्यापि तृणराशेरवयवशः क्रमेण दह्यमानस्य चिरेण दाहो भवति, तस्यैव शिथिलप्रकीर्णोपचितस्य सर्वतो युगपदादीपितस्य पवनोपक्रमाभिहतस्याशु दाहो भवति, तद्वत् । यथा वा संख्यानाचार्यः करणलाघवार्थं गुणकारभागहाराभ्यां राशिं छेदादेवापवर्तयति न च संख्येयस्यार्थस्याभावो भवति, तद्वदुपक्रमाभिहतो मरणसमुद्घातदुःखार्त्तः कर्मप्रत्ययमनाभोगयोगपूर्वकं करणविशेषमुत्पाद्य फलोपभोगलाघवार्थं कर्मापवर्तयति न चास्य फलाभाव इति ॥ किं चान्यत् । यथा वा धौतपटो जलार्द्र एव संहतश्चिरेण शोषमुपयाति । स एव च वितानितः सूर्यरश्मिवाय्वभिहतः क्षिप्रं शोषमुपयाति । " तत्त्वा० अ० २–५२ भाष्य ।

5 योगबलसे योगी जो अनेक शरीरोंका निर्माण करता है, उसका वर्णन योगसूत्र ४–४ में है, यही विषय वैक्रिय–आहारक–लब्धिरूपसे जैनग्रन्थोंमें वर्णित है ।

३ परिणामि–नित्यता अर्थात् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूपसे त्रिरूप वस्तु मान कर तदनुसार धर्मधर्मीका विवेचन[1] इत्यादि।

इसी विचारसमताके कारण श्रीमान् हरिभद्र जैसे जैनाचार्योंने महर्षि पतञ्जलिके प्रति अपना हार्दिक आदर प्रकट करके अपने योगविषयक ग्रन्थोंमें गुणग्राहकताका निर्भीक परिचय पूरे तोरसे दिया है[2], और जगह जगह पतञ्जलिके योगशास्त्रगत खास साङ्केतिक शब्दोंका जैन सङ्केतोंके साथ मिलान करके सङ्कीर्ण-दृष्टिवालोंके लिये एकताका मार्ग खोल दिया है[3]। जैन विद्वान् यशोविजयवाचकने हरिभद्रसूरिसूचित एकताके मार्गको विशेष विशाल बनाकर पतञ्जलिके योगसूत्रको जैन प्रक्रियाके अनुसार समाझनेका थोडा किन्तु मार्मिक प्रयास किया है[4]। इतना ही नहीं बल्कि अपनी बत्तीसियोंमें उन्होंने पतञ्जलिके योगसूत्रगत कुछ विषयोंपर खास बत्तीसियाँ भी रची हैं[5]। इन सब बातोंको संक्षेपमें बतलानेका उद्देश्य यही है कि महर्षि पतञ्जलिकी दृष्टिविशालता इतनी अधिक थी कि सभी दार्शनिक व साम्प्रदायिक विद्वान् योगशास्त्रके पास आते ही अपना साम्प्रदायिक अभिनिवेश भूल गये और एकरूपताका अनुभव करने लगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि महर्षि पतञ्जलिकी दृष्टि–विशालता उनके विशिष्ट योगानुभवका ही फल है, क्योंकि–जब कोई भी मनुष्य शब्द ज्ञानकी प्राथमिक भूमिकासे आगे बढ़ता है तब वह शब्दकी पूंछ न खींचकर चिन्ताज्ञान तथा भावनाज्ञानके[6] उत्तरोत्तर अधिकाधिक एकतावाले प्रदेशमें अभेद आनंदका अनुभव करता है।

आचार्य हरिभद्रकी योगमार्गमें नवीन दिशा–श्रीहरिभद्र प्रसिद्ध जैनाचार्योंमें एक हुए। उनकी बहुश्रुतता, सर्वतोमुखी प्रतिभा, मध्यस्थता और समन्वयशक्तिका पूरा परिचय करानेका यहाँ प्रसंग नहीं है। इसके लिए

---

1 जैनशास्त्रमें वस्तुको द्रव्यपर्यायस्वरूप माना है। इसीलिये उसका लक्षण तत्त्वार्थ (अ० ५–२९) में "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" ऐसा किया है। योगसूत्र (३–१३, १४) में जो धर्मधर्मीका विचार है वह उक्त द्रव्यपर्यायउभयरूपता किंवा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इस त्रिरूपताका ही चित्रण है। भिन्नता सिर्फ दोनोंमें इतनी ही है कि–योगसूत्र सांख्यसिद्धान्तानुसारी होनेसे "ऋते चितिशक्तेः परिणामिनो भावाः" यह सिद्धान्त मानकर परिणामवादका अर्थात् धर्मलक्षणावस्था परिणामका उपयोग सिर्फ जडभागमें अर्थात् प्रकृतिमें करता है, चेतनमें नहीं। और जैनदर्शन तो "सर्वे भावाः परिणामिनः" ऐसा सिद्धान्त मानकर परिणामवाद अर्थात् उत्पादव्ययरूप पर्यायका उपयोग जड चेतन दोनोंमें करता है। इतनी भिन्नता होनेपर भी परिणामवादकी प्रक्रिया दोनोंमें एक सी है।

2 उक्तं च योगमार्गज्ञैस्तपोनिर्धूतकल्मषैः। भावियोगहितायोच्चैर्मोहदीपसमं वचः॥
(योगविं. श्लो. ६६) टीका 'उक्तं च निरूपितं पुनः योगमार्गज्ञैरध्यात्मविद्भिः पतञ्जलिप्रभृतिभिः॥

"एतत्प्रधानः सच्छ्राद्धः शीलवान् योगतत्परः। जानात्यतीन्द्रियानर्थांस्तथा चाह महामतिः"॥ (योगदृष्टिसमुच्चय श्लो. १००) टीका 'तथा चाह महामतिः पतञ्जलिः'। ऐसा ही भाव गुणग्राही श्रीयशोविजयजीने अपनी योगावतारद्वात्रिंशिकामें प्रकाशित किया है। देखो–श्लो० २० टीका।

3 देखो योगबिन्दु श्लोक ४१८, ४२०। 4 देखो उनकी बनाई हुई पातञ्जलसूत्रवृत्ति।

5 देखो पातञ्जलयोगलक्षणविचार, ईशानुग्रहविचार, योगावतार, क्लेशहानोपाय और योगमाहात्म्य द्वात्रिंशिका।

6 शब्द, चिन्ता तथा भावनाज्ञानका स्वरूप श्रीयशोविजयजीने अध्यात्मोपनिषद्में लिखा है, जो आध्यात्मिक लोगोंको देखने योग्य है। अध्यात्मोपनिषद् श्लो. ६५, ७४।

जिज्ञासु महाशय उनकी कृतियोंको देख लेवें। हरिभद्रसूरिकी शतमुखी प्रतिमाके स्रोत उनके बनाये हुए चार अनुयोगविषयक[1] ग्रंथोंमें ही नहीं बल्कि जैन न्याय तथा भारतवर्षीय तत्कालीन समग्र दार्शनिक सिद्धांतोंकी चर्चावाले[2] ग्रन्थोंमें भी बहे हुए हैं। इतना करके ही उनकी प्रतिभा मौन न हुई; उसने योगमार्गमें एक ऐसी दिशा दिखाई जो केवल जैन योगसाहित्यमें ही नहीं बल्कि आर्यजातीय संपूर्ण योगविषयक साहित्यमें एक नई वस्तु है। जैनशास्त्रमें आध्यात्मिक विकासके क्रमका प्राचीन वर्णन चौदह गुणस्थानरूपसे, चार ध्यान रूपसे और बहिरात्म आदि तीन अवस्थाओंके रूपसे मिलता है। हरिभद्रसूरिने उसी आध्यात्मिक विकासके क्रमका योगरूपसे वर्णन किया है। पर उसमें उन्होंने जो शैली रक्खी है वह अभीतक उपलब्ध योगविषयक साहित्य-मेंसे किसी भी ग्रंथमें कमसे कम हमारे देखनेमें तो नहीं आई है। हरिभद्रसूरि अपने ग्रन्थोंमें अनेक योगि-योंका नामनिर्देश करते हैं[3], एवं योगविषयक[4] ग्रन्थोंका उल्लेख करते हैं जो अभी प्राप्त भी नहीं हैं। संभव है उन अप्राप्य ग्रन्थोंमें उनके वर्णनकीसी शैली रही हो, पर हमारे लिये तो यह वर्णनशैली और योग विषयक वस्तु बिल्कुल अपूर्व है। इस समय हरिभद्रसूरिके योगविषयक चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जो हमारे देखनेमें आये हैं। उनमेंसे षोडशक और योगविंशिकाके योगवर्णनकी शैली और योगवस्तु एक ही है। योगबिंदुकी विचारसरणी और वस्तु योगविंशिकासे जुदा है। योगदृष्टिसमुच्चयकी विचारधारा और वस्तु योगबिंदुसे भी जुदा है। इस प्रकार देखनेसे यह कहना पडता है कि हरिभद्रसूरिने एक ही आध्यात्मिक विकासके क्रमका चित्र भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें भिन्न भिन्न वस्तुका उपयोग करके तीन प्रकारसे खींचा है।

कालकी अपरिमित लंबी नदीमें वासनारूप संसारका गहरा प्रवाह बहता है, जिसका पहला छोर [मूल] तो अनादि है, पर दूसरा [उत्तर] छोर सान्त है। इसलिये मुमुक्षुओंके वास्ते सबसे पहले यह प्रश्न बडे महत्त्वका है कि उक्त अनादि प्रवाहमें आध्यात्मिक विकासका आरंभ कबसे होता है? और उस आरंभके समय आत्माके लक्षण कैसे हो जाते हैं? जिनसे कि आरंभिक आध्यात्मिक विकास जाना जा सके। इस प्रश्नका उत्तर आचार्यने योगबिंदुमें दिया है। वे कहते हैं कि–" जब आत्माके ऊपर मोहका प्रभाव घटनेका आरंभ होता है तभीसे आध्यात्मिक विकासका सूत्रपात हो जाता है। इस सूत्रपातका पूर्ववर्ती समय जो आध्यात्मिकविकासरहित होता है, वह जैनशास्त्रमें अचरमपुद्गलपरावर्तके नामसे प्रसिद्ध है। और उत्तरवर्ती समय जो आध्यात्मिक विका-सके क्रमवाला होता है, वह चरमपुद्गलपरावर्तके नामसे प्रसिद्ध है। अचरमपुद्गलपरावर्तन और चरमपुद्गलपरा-वर्तनकालके परिमाणके बीच सिंधु[5] और बिंदुका सा अंतर होता है। जिस आत्माका संसारप्रवाह चरमपुद्गल-परावर्तपरिमाण शेष रहता है, उसको जैन परिभाषामें ' अपुनर्बंधक ' और सांख्यपरिभाषामें ' निवृत्ताधिकार प्रकृति ' कहते हैं[6]। अपुनर्बन्धक या निवृत्ताधिकारप्रकृति आत्माका आंतरिक परिचय इतना ही है कि उसके ऊपर मोहका दबाव कम होकर उलटे मोहके ऊपर उस आत्माका दबाव शुरू होता है। यही आध्यात्मिक विका-

---

1 द्रव्यानुयोगविषयक–धर्मसंग्रहणी आदि १, गणितानुयोगविषयक–क्षेत्रसमास टीका आदि २, चरण-करणानुयोगविषयक–पञ्चवस्तु, धर्मबिंदु आदि ३, धर्मकथानुयोगविषयक–समराइच्चकहा आदि ४ ग्रन्थ मुख्य हैं।

2 अनेकान्तजयपताका, षड्दर्शनसमुच्चय, शास्त्रवार्तासमुच्चय आदि।

3 गोपेन्द्र (योगबिन्दु श्लोक २००) कालातीत (योगबिन्दु श्लोक ३००)। पतञ्जलि, भदन्तभा-स्करबन्धु, भगवदन्त (त्त) वादी (योगदृष्टि० श्लोक १६ टीका)।

4 योग–निर्णय आदि (योगदृष्टि० श्लोक १ टीका)

5 देखो मुक्त्यद्वेषद्वात्रिंशिका २८। 6 देखो योगबिंदु १७८, २०१।

सका बीजारोपण है। यहींसे योगमार्गका आरंभ हो जानेके कारण उस आत्माकी प्रत्येक प्रवृत्तिमें सरलता, नम्रता, उदारता, परोपकारपरायणता आदि सदाचार वास्तविक रूपमें दिखाई देते हैं; जो उस विकासोन्मुख आत्माका बाह्य परिचय है"। इतना उत्तर देकर आचार्यने योगके आरंभसे लेकर योगकी पराकाष्ठा तकके आध्यात्मिक विकासकी क्रमिक वृद्धिको स्पष्ट समझानेके लिये उसको पाँच भूमिकाओंमें विभक्त करके हर एक भूमिकाके लक्षण बहुत स्पष्ट दिखाये हैं[1], और जगह जगह जैन परिभाषाके साथ बौद्ध तथा योगदर्शनकी परिभाषाका मिलान करके[2] परिभाषाभेदकी दिवारको तोडकर उसकी ओटमें छिपी हुई योगवस्तुकी भिन्नभिन्नदर्शनसम्मत एकरूपताका स्फुट प्रदर्शन कराया है। अध्यात्म, भावना, ध्यान, समता और वृत्तिसंक्षय ये योगमार्गकी पाँच भूमिकायें हैं। इनमेंसे पहली चारको पतंजलि संप्रज्ञात, और अन्तिम भूमिकाको असंप्रज्ञात कहते हैं[3]। यही संक्षेपमें योगबिन्दुकी वस्तु है।

योगदृष्टिसमुच्चयमें आध्यात्मिक विकासके क्रमका वर्णन योगबिन्दुकी अपेक्षा दूसरे ढंगसे है। उसमें आध्यात्मिक विकासके प्रारंभके पहलेकी स्थितिको अर्थात् अचरमपुद्गलपरावर्त्तपरिमाण संसारकालीन आत्माकी स्थितिको ओघदृष्टि कहकर उसके तरतम भावको अनेक दृष्टांत द्वारा समझाया है[4], और पीछे आध्यात्मिक विकासके आरंभसे लेकर उसके अंततकमें पाई जानेवाली योगावस्थाको योगदृष्टि कहा है। इस योगावस्थाकी क्रमिक वृद्धिको समझानेके लिये संक्षेपमें उसे आठ भूमिकाओंमें बाँट दिया है। वे आठ भूमिकायें उस ग्रन्थमें आठ योगदृष्टिके नामसे प्रसिद्ध हैं[5]। इन आठ दृष्टियोंका विभाग पातंजलयोगदर्शन-प्रसिद्ध यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि आठ योगांगोंके आधार पर किया गया है, अर्थात् एक एक दृष्टिमें एक एक योगांगका सम्बन्ध मुख्यतया बतलाया है। पहली चार दृष्टियां योगकी प्रारम्भिक अवस्थारूप होनेसे उनमें अविद्याका अल्प अंश रहता है। जिसको प्रस्तुत ग्रंथमें अवेद्यसंवेद्यपद कहा है [6]। अगली चार दृष्टियोंमें अविद्याका अंश बिल्कुल नहीं रहता। इस भावको आचार्यने वेद्यसंवेद्यपद शब्दसे जनाया [7] है। इसके सिवाय प्रस्तुत ग्रंथमें पिछली चार दृष्टियोंके समय पाये जानेवाले विशिष्ट आध्यात्मिक विकासको इच्छायोग, शास्त्रयोग और सामर्थ्ययोग ऐसी तीन योग भूमिकाओंमें विभाजित करके उक्त तीनों योगभूमिकाओंका बहुत रोचक वर्णन किया है[8]।

आचार्यने अन्तमें चार प्रकारके योगियोंका वर्णन करके योगशास्त्रके अधिकारी कौन हो सकते हैं, यह भी बतला दिया है। यही योगदृष्टिसमुच्चयकी बहुत संक्षिप्त वस्तु है।

योगविंशिकामें आध्यात्मिक विकासकी प्रारंभिक अवस्थाका वर्णन नहीं है, किन्तु उसकी पुष्ट अवस्थाओंका ही वर्णन है। इसीसे उसमें मुख्यतया योगके अधिकारी त्यागी ही माने गये हैं! प्रस्तुत ग्रन्थमें त्यागी गृहस्थ और साधुकी आवश्यक-क्रियाको ही योगरूप बतलाकर उसके द्वारा आध्यात्मिक विकासकी क्रमिक वृद्धिका वर्णन किया है। और उस आवश्यक-क्रियाके द्वारा योगको पाँच भूमिकाओंमें विभाजित किया है। ये पांच भूमिकायें उसमें स्थान, शब्द, अर्थ, सालंबन और निरालंबन नामसे प्रसिद्ध हैं। इन पाँच भूमिकाओंमें कर्मयोग और ज्ञानयोगकी घटना करते हुए आचार्यने पहली दो भूमिकाओंको कर्मयोग और पिछली तीन भूमिकाओंको ज्ञानयोग कहा है। इसके सिवाय प्रत्येक भूमिकामें इच्छा, प्रवृत्ति, स्थैर्य और सिद्धिरूपसे आध्यात्मिक विकासके तरतम भावका प्रदर्शन कराया है; और उस प्रत्येक भूमिका तथा

---

1 योगबिंदु, ३१, ३५७, ३५९, ३६१, ३६३, ३९६।

2 "यत्सम्यग्दर्शनं बोधिस्तत्प्रधानो महोदयः। सत्त्वोऽस्तु बोधिसत्त्वस्तद्धन्तैषोऽन्वर्थतोऽपि हि ॥ २७३॥ वरबोधिसमेतो वा तीर्थकृद्यो भविष्यति। तथाभव्यत्वतोऽसौ वा बोधिसत्त्वः सतां मतः" ॥ २७४॥ योगबिन्दु।

3 देखो योगबिंदु ४१८, ४२०।

4 देखो, योगदृष्टिसमुच्चय १४। 5 १३। 6 ७५। 7 ७३। 8 २–१२।

इच्छा, प्रवृत्ति आदि अवान्तर स्थितिका लक्षण बहुत स्पष्टतया वर्णन किया है[1]। इस प्रकार उक्त पाँच भूमिकाओंकी अन्तर्गत भिन्न भिन्न स्थितियोंका वर्णन करके योगके अस्सी भेद किये हैं, और उन सबके लक्षण बतलाये हैं, जिनको ध्यानपूर्वक देखनेवाला यह जान सकता है कि मैं विकासकी किस सीढीपर खडा हूँ। यही योगविंशिकाकी संक्षिप्त वस्तु है।

उपसंहार—विषयकी गहराई और अपनी अपूर्णताका खयाल होते हुए भी यह प्रयास इस लिये किया गया है कि अबतकका अवलोकन और स्मरण संक्षेपमें भी लिपिबद्ध हो जाय, जिससे भविष्यत्में विशेष प्रगति करना हो तो इस विषयका प्रथम सोपान तैयार रहे। इस प्रवृत्तिमें कई मित्र मेरे सहायक हुए हैं जिनके नामोल्लेख मात्रसे मैं कृतज्ञता प्रकाशित करना नहीं चाहता। उनकी आदरणीय स्मृति मेरे हृदयमें अखंड रहेगी।

पाठकोंके प्रति एक मेरी सूचना है। वह यह कि इस निबंधमें अनेक शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द आये हैं। खासकर अन्तिम भागमें जैन-पारिभाषिक शब्द अधिक हैं, जो बहुतोंको कम विदित होंगे; उनका मैंने विशेष खुलासा नहीं किया है, पर खुलासावाले उस उस ग्रन्थके उपयोगी स्थलोंका निर्देश कर दिया है जिससे विशेष जिज्ञासु मूलग्रन्थद्वारा ही ऐसे कठिन शब्दोंका खुलासा कर सकेंगे। अगर यह संक्षिप्त निबंध न हो कर खास पुस्तक होती तो इसमें विशेष खुलासोंका भी अवकाश रहता।

इस प्रवृत्तिके लिये मुझको उत्साहित करनेवाले गुजरात पुरातत्त्व संशोधन मंदिरके मंत्री परीख रसिकलाल छोटालाल हैं जिनके विद्याप्रेमको मैं नहीं भूल सकता।

संवत् १९७८ पौष
वदि ९
भावनगर.

लेखक—
सुखलाल संघजी.

---

1 योगविंशिका गा० ५, ६।

कुंरपाल सोणपाल प्रशस्ति



(लेखक—बनारसी दास जैन, एम० ए०, ओरियंटल कालेज, लाहोर.)

१. सन १९२० में एस० एस० जैन कानफ्रेन्स की तरफ से इन्दौर वासी सेठ केसरी चन्द भण्डारी ने मुझे लिखा कि उक्त कान्फ्रेन्स का जो प्राकृत कोश बन रहा है आप उसे देख-कर उस के विषय में अपनी तथा अन्य प्राकृत विद्वानों की सम्मति लेकर लिखें। इस सम्बन्ध में मुझे उस साल कई नगरों में जाना पड़ा। जब मैं आगरे में था तो मेरा समागम पं० सुखलालजी से हुआ, उन्हों ने मुझे बतलाया कि यहां के मन्दिर में एक नया शिला लेख निकला है [1] जिसको अभी किसी ने नहीं देखा। मैं मुनि प्रतापविजयजी को साथ लेकर उसे देखने गया। परन्तु उस समय छाप उतारने की सामग्री विद्यमान न थी इस लिये उस समय मैं वहां अधिक ठहरा भी नहीं क्योंकि लेख को देखने के दो तीन घंटे पीछे मैं वहां से चल पड़ा था।

२. फिर अप्रैल सन १९२१ में मैं पंजाब यूनिवर्सिटी के एम. ए. तथा बी. ए. क्लासों के संस्कृत विद्यार्थियों को लेकर कलकत्ता, पटना, लखनऊ आदि बड़े बड़े नगरों के अजायब घर (Museums) देखने जा रहा था, तब आगरे में भी ठहरा और उपरोक्त शिलालेख की छाप तय्यार की, परन्तु अब वहां न तो पं. सुखलालजी थे न ही मुनि प्रतापविजयजी थे। बाबू दयालचन्दजी भी कारण वश बाहिर गए हुए थे। इन के अतिरिक्त और कोई श्रावक मुझ से परिचित न थे इसलिये उस वक्त वह छाप मुझ को न मिल सकी। अब कलकत्ता निवासी श्रीयुत बाबू पूरणचन्द नाहर द्वारा मैं ने वह छाप प्राप्त की है और उसी के आधारपर पाठकों को इस शिलालेख का परिचय दे रहा हूं।

३. यह लेख लाल पत्थर की शिला पर खुदा हुआ है जो लग भग दो फुट लम्बी और दो फुट चौड़ी है। लेख खोदने से पहिले शिला के चारों ओर दो दो इंच का हाशिया (margin) छोड कर रेखा डाल दी गई है। रेखा के बाहिर ऊपर की तरफ़ " पातसाहि श्री जहांगीर " उभरे हुए अक्षरों में खुदा हुआहै। बाकी का सारा लेख गहिरे अक्षरों में खुदा हुआ है। रेखाओं के अन्दर लेख की ३३ पंक्तियां हैं मगर उन में लेख समाप्त न हो सका इस लिये रेखाओं के बाहिर नीचे दो पंक्तियां (नं ३४ और ३८) दाईं ओर एक पंक्ति (नं० ३९) और बाईं ओर दो पंक्तियां [नं० ३६–३७] और खोदी गई हैं। शिला के दाईं ओर नीचे का कुछ भाग टूट गया है जिस से लेख की पंक्ति २८–३४ और ३८ के अन्त के आठ नौ अक्षर और पंक्ति ३९ के आदि के १४, १९ अक्षर टूट गए हैं। इस से कुँवरपाल सोनपाल के उस समय वर्तमान परिवार के प्रायः सब नाम नष्ट हो गए हैं। पंक्ति ३६–३७ के भी कुछ अक्षर पढ़े नहीं गए।

---

1 मन्दिर की एक कोठडी में बहुत से पत्थर पडे थे। जब अप्रैल मई सन् १९२० में उन पत्थरों को निकालने लगे तो उन में से यह लेख भी निकला। अब यह शिला लेख मन्दिर में ही [illegible] है।

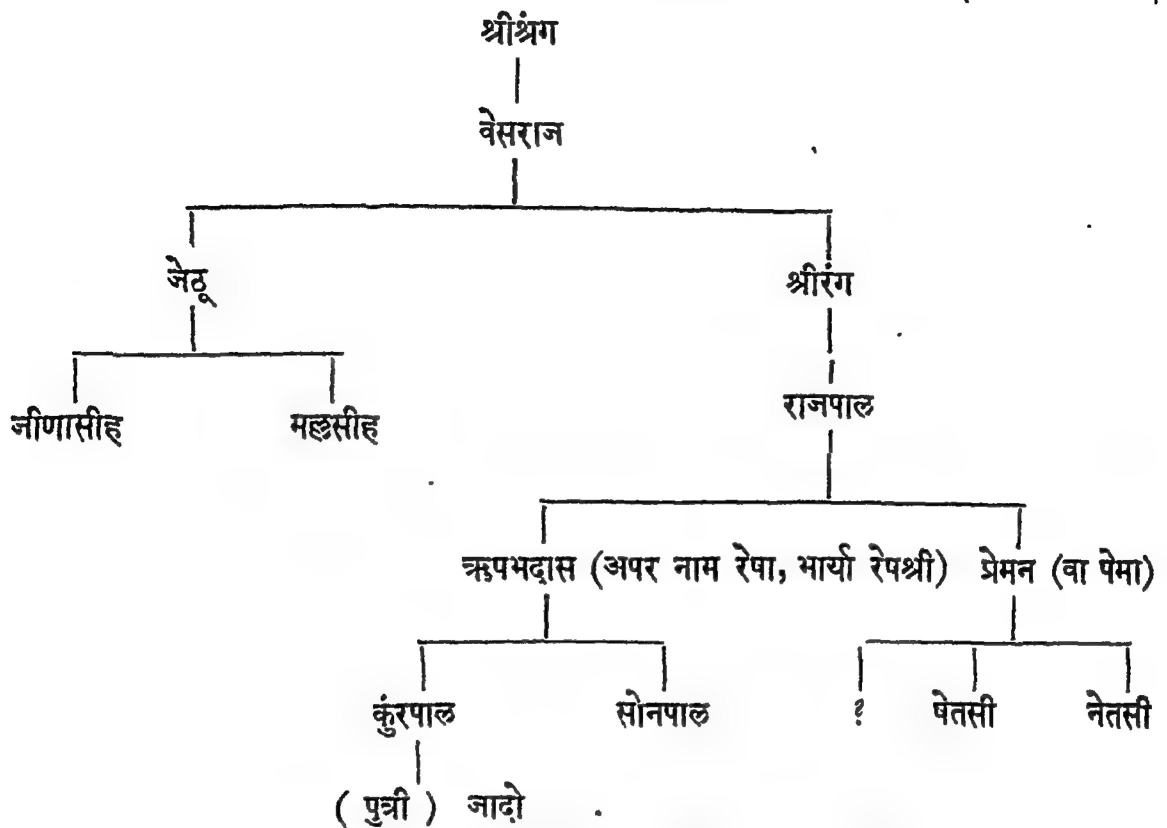
४. लेख के अक्षर शुद्ध जैन लिपि के हैं जो कि हस्त लिखित पुस्तकों (Mss.) में पाए जाते हैं। पुस्तकों की भांति लेख की आदि में 'र्द०' यह चिन्ह हैं जो शायद ' ओम् ' शब्द का द्योतक है, क्योंकि प्राचीन शिलालेख तथा ताम्रशासनों में ' ओम् ' के लिये कुछ ऐसा ही चिन्ह हुआ करता था। ' च ' और ' व ' की आकृति वहुत कुछ मिलती जुलती है। पांक्ति ६ और ८ में मार्ग्ग और वर्ग्ग शब्दों में ' ग्ग ' के लिये ' ग्र ' [1] चिन्ह आया है जो जैन लिपि का खास चिन्ह है।

५. वर्णविन्यास (Spelling) में विशेपता यह है कि " परसवर्ण " कहीं नहीं किया गया अर्थात् स्पर्शीय अक्षरों के पूर्व नासिक्य के स्थान में सर्वदा अनुस्वार लिखा गया हैं जैसे पंक्ति २ में पङ्कज, विम्व, चन्द्र के स्थान में पंकज, विंव, चंद्र लिखे हैं। इसी प्रकार श्लोकार्ध वा श्लोक के अन्त में म् के स्थान में अनुस्वार ही लिखा है जैसे पंक्ति १६ में अठारहवें अर्धश्लोक के अन्त में ' श्रुत्वा कल्याणदेशनां। ' पंक्ति २० अर्धश्लोक २१ ' वित्तवीजमनुत्तरं। ' पंक्ति २२ श्लोकान्त २३ ' चित्तरंजकं। ' पंक्ति २६ श्लोकान्त २८ ' कारितं।' इत्यादि। पंक्ति ९ में षट्त्रिंशत् के स्थान में षड्त्रिंशत् लिखा है। विराम का चिन्ह '।' श्लोकपादों के अन्त में भी लगाया है, कहीं कहीं पंक्ति के अन्त में अक्षर के लिये पूरा स्थान न होने से विराम लिख दिया है जैसे पंक्ति ७, ९, १२, १९ आदि में।

६. पट्टावलि को छोड़ कर वाकी तमाम लेख श्लोकवद्ध है। इसकी भाषा शुद्ध संस्कृत हैं परन्तु पंक्ति १९ में पति शब्द का सप्तमी एक वचन ' पतौ ' लिखा है जो व्याकरण की रीति से ' पत्यौ ' होना चाहिये था। यद्यपि पंक्ति १६ में 'कारिता ' और पंक्ति २६ में ' कारितं ' शब्द आए हैं तथापि पंक्ति ३२ में कारिता के लिये ' कारापिता ' लिखा है। यह शब्द जैन लेखकों के संस्कृत ग्रन्थों में वहुधा पाया जाता है और प्राकृत से संस्कृत प्रयोग वना है। पंक्ति १७ में प्राकृत शैली से आनन्द श्रावक का नाम ' आणंद ' लिखा है और पंक्ति ११ में 'उत्सुकौ' के स्थान में ' उच्छुकौ ' शब्द प्रतीत होता है।

७. यह प्रशस्ति जहांगीर वादशाह के समय की है। विक्रम सं० १६७१ में आगरा निवासी कुंरपाल सोनपाल नाम के दो भाइयों ने वहां श्री श्रेयांस नाथ जी का मन्दिर वनवाया था जिस की प्रतिष्ठा अंचल गच्छ के आचार्य श्री कल्याणसागर जी ने कराई थी। उस समय यह प्रशस्ति लिखी गई। मन्दिर की प्रतिष्ठा के साथ ४५० अन्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भी हुई थी जिन में से ६, ७ प्रतिमाओं के लेख वावू पूर्णचन्द नाहर ने अपने " जैन लेख संग्रह " में दिये हैं। (देखिये उक्त पुस्तक, लेख नं० ३०७–३१२, ४३३)। इन लेखों से कुंरपाल सोनपाल के पूर्वजों का कुछ हाल मालूम नहीं होता लेकिन प्रशस्ति में उन की वंशावलि इस प्रकार दी है।

[1] डाक्टर वेवर (Weber.) इसको ग्र (गृ॰र) पढते हैं जैसा कि वर्लिन नगर के जैन पुस्तकों की सूचि के पृष्ट ५७६ पर आए pograla. शद्ब से स्पष्ट प्रतीत होता हैं, वास्तव में यह शद्ब पोग्गल (Poggla.) हैं। इसी प्रकार पृष्ठ ५२५ पर मियुग्गाम को miyagrama. (मियगृाम) लिखा हैं। Weber's datalogue of Crakrit Mss in the Royal Lidrary at Berlin.



कुंरपाल सोनपाल ओसवाल जाति के लोढा गोत्रीय थे। इन को जहांगीर बादशाह का अमात्य (मंत्री) करके लिखा है। जहांगीर के राज्य सम्बन्धी एक दो फारसी किताबें देखीं परन्तु उन में इन का नाम उपलब्ध नहीं हुआ।

८. मूर्तियों के लेखों[1] से मालूम होता है कि कुंरपाल सोनपाल के वंश को गाणी वंश कहते थे और इन लेखों से उन के परिवार के कुछ नामों का भी पता चलता है जो प्रशस्ति में पढ़े नहीं जाते जैसे कि:— ऋषभदास के कुंरपाल सोनपाल के सिवाय रूपचंद, चतुर्भुज, धनपाल, दुनीचंद आदि और भी पुत्र थे।

प्रेमन की भार्या का नाम शक्ता देवी था।

पेतसी की भार्या का नाम भक्ता देवी था उन का पुत्र०सांग था।

९. इस के अतिरिक्त "जैनसाहित्य संशोधक" खण्ड १ अंक ४ में जो सं.१६६७ का "आगरा संघनो सचित्र सांवत्सरिक पत्र" प्रकाशित हुआ है, उस में कुछ नाम प्रशस्ति के नामों से मिलते हैं परन्तु यहबात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सक्ती कि दोनों लेखों में एक ही व्यक्ति का उल्लेख है या भिन्न २ का:—

1 येह लेख पैरेग्राफ १३ मे उध्दृत किये गए हैं।

सांवत्सरिक	पत्र	पंक्ति	३०	साः	पेमन, संः नेतसी
”	”	”	३३	साः	पेतसी
”	”	”	३४	साः	नेतसी, संः रीपभदास
”	”	”	३९	”	रीपभदास सोनी

१०. प्रशस्ति के समय के संबंध में यह बात बडी ध्यान देने योग्य है कि प्रशस्ति में तो साफ़ तौर पर वैशाख शुदि ३, विक्रम सं० १६७१ गुरुवासर (बृहस्पतिवार) लिखा है परंतु मूर्तियों के लेखों में वैशाख शुदि ३ विक्रम सं. १६७१ शनि (सनीचर वार) लिखा है [1]। यह ऐसा विरोध है कि इस के लिये कोई हेतु नहीं दिया जा सक्ता; क्योंकि एक ही स्थान पर एक ही तिथि में वारभेद कैसे हो सक्ता है। यदि तृतीया वृद्धि तिथि होती तो भी कह सक्ते कि बृहस्पति वार की रात्रि के पिछले पहर में और शनि को दिन के पाहिले पहर में तृतिया थी। मगर तृतीया वृद्धि तिथि न थी जैसा कि इंडियन् कैलेंडर [2] में दी हुई सारिणी (Tables) के अनुसार गणित करने पर गत संवत् (Expired) १६७१ वैशाख सुदि ३ शनिवार २ अप्रैल सन् १६१४ (Old Style) को आती है और उस दिन वह तिथि १७ घडी के अनुमान बाकी थी। रोहिणी नक्षत्र सूर्योदय से १३ घडी पीछे लगा। वैशाख वदि १३ (अमान्त मासों से चैत्र वदि १३) वृद्धि तिथि आती है।

११. प्रशस्ति में दी हुई अंचल गच्छ की पट्टावलि से ज्ञात होता है कि उस गच्छ के प्रवर्तक आचार्य, श्री आर्यरक्षित सूरि, भगवान महावीर स्वामी से ४८ वें पट्ट पर बैठे थे और श्री कल्याण सागर सूरि गच्छ के १८ वें आचार्य थे। अंचल गच्छ की पट्टावलि डा. भांडारकर और डा. ब्यूलर ने भी छापी है। इन में डा. भांडारकर तो पांचवें आचार्य श्री सिंहप्रभ सूरि का नाम छोड़ गए हैं [3] और डा. ब्यूलर छठे आचार्य श्री अजितसिंहसूरि अपरनाम श्री जिनसिंह सूरि का नाम छोड़ गए हैं [4]। हालां कि जिन आधारों परसे उन्हों ने यह पट्टावलि छापी है उन में साफ़ तौर पर उक्त दोनों आचार्यों के नाम यथास्थान दिये हुए हैं। [5]

---

1 जैन लेख संग्रह, लेख नं. ३०८–११ “ श्री मत्संवत १६७१ वर्षे वैशाष सुदि ३ शनौ ”

2 The Indian Calendar dy Sewel and Balkrishna Dikshit, 1896.

3 Report on the Search for Sanskrit manuscripts for the year 1883-84 Bomday 1887 p. 130

4 Epigraphia Indica p.39

5 भांडारकर–उक्त पुस्तक पृष्ठ ३२१

४८ श्रीआर्यरक्षितसूरिः चंद्रगच्छे श्रीअंचलगच्छस्थापना शुद्धविधिप्रकाशनात् सं. ११५९

४९ श्रीविजयसिंह सूरिः ५० श्रीधर्मघोष सूरिः

५१ श्रीमहेंद्रसिंह सूरिः ५२ श्रीसिंहप्रभ सूरिः

५३ श्रीअजितसिंहसूरिः पारके चित्रावालगच्छतो निर्गता सं. १२८५ तपगच्छमतं वस्तुपालतः गच्छस्थापना

१२. अंत में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस प्रशस्ति के संबंध में दो बातों की अधिक खोज आवश्यक है एक तो यह कि मुगल बादशाहों के इतिहास में कुं[व]रपाल और सोनपाल या उन के पिता का नाम ढूंडना चाहिये, और दूसरी यह कि वैसाख सुदि ३ को वृहस्पति और शनि क्योंकर हो सक्ते हैं; इस का समाधान करना चाहिये ॥

[–१३. मूर्तियों के लेखः जैन लेख संग्रहः पृष्ठ ७८, ७९, १०९

नं० ३०७. सम्वत १६७१ आगरावास्तव्य ओसवाल ज्ञातीय लोढा गोत्रे गाणी वंसे सं० ऋपभदास भार्या सुः रेप श्री तत्पुत्र संघराज सं० रूपचन्द चतुर्भुज सं० धनपालादि युते श्री मदंचलगच्छे पूज्य श्री ५ धर्ममूर्ति सूरि तत् पट्टे पूज्य श्री कल्याणसागर सूरीणामुपदेशेन विद्यमान श्री विसाल जिनविंब प्रति....

नं० ३०८. संवत १६७१ वर्षे ओसवाल ज्ञातीय लोढा गोत्रे गाणी वंसे साह कुंरपाल[1] सं० सोनपाल प्रति० अंचलगच्छे श्री कल्याणसागर सूरीणामुपदेशेन वासुपूज्यविंबं प्रतिष्ठापितं ॥

नं० ३०९. ॥ श्रीमत्संवत १६७१ वर्षे वैशाष सुदि ३ शनौ आगरा वास्तव्योसवाल ज्ञातीय लोढा गोत्रे गावंसे संघपति ऋषभदास भा० रेपश्री पुत्र सं० कुंरपाल सं० सोनपाल प्रवरौ स्वपितृ ऋपभदास पुन्यार्थं श्रीमदंचलगच्छे पूज्य श्री ५ कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन श्री पदमप्रभु जिनविंबं प्रतिष्ठापितं सं० चागाकृतं ॥

नं० ३१०. श्रीमत्संवत १६७१ वर्षे वैशाष सुदि ३ शनौ श्री आगरावास्तव्य उपकेस ज्ञातीय लोढा गोत्र सा० प्रेमन भार्या शक्तादे पुत्र सा० षेतसी लघुभ्राता सा० नेतसी[2] सुतेन श्रीमदंचलगच्छे पूज्य श्री ५ कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन श्री वासपूज्यविंबं प्रतिष्ठापितं सं० कुंरपाल सं० सोनपाल प्रतिष्ठितं ।

लर—उक्त (Epig. Ind.) Jaina inscriptions from Satrunjaya, Nos. XXI, XXVII, और CV.

XXI यह लेख स० १६७५ का है—

श्रीसिंहप्रभसूरीशाः सूरयोऽजितसिंहकाः । श्रीमद्देवेन्द्रसूरीशाः श्रीधर्मप्रभसूरयः ॥ ८ ॥
श्रीसिंहतिलकाव्हाश्च श्रीमहेन्द्रप्रभाभिधाः । श्रीमन्तो मेरुतुङ्गाख्या बभूवुः सूरयस्ततः ॥ ९ ॥

XXVII यह लेख सं० १६८३ का है—

तेभ्यः क्रमेण गुरवो जिनसिंहगोत्राः बभूवुरथ पूज्यतमा गणेशाः ॥
देवेन्द्रसिंहगुरवोऽखिललोकमान्याः धर्मप्रभा मुनिवरा विधिपक्षनाथाः ॥ ९ ॥
पूज्याश्च सिंहतिलकास्तदनु प्रभूत–भाग्या महेन्द्रविभवा गुरवो बभूवुः ॥
चक्रेश्वरी भगवती विहितप्रसादाः श्रीमेरुतुङ्गसूरो नरदेववन्द्याः ॥ १० ॥

CV यह लेख सं १९२१ का है। इस में आचार्य कल्याणसागर तक लेख नं XXVII के ही श्लोक उध्दत किये हैं। इन लेखों की भाषा जैन संस्कृत है।

1 सिवाय लेख ४३३ के और सब जगह कुंर को क्रुंर या क्रुर पढा है।

2 प्रशस्ति में तथा मूर्ति के अन्य लेखों मे नेतसी।

नं० ३११. श्रीमत्संवत् १६७१ वैशाष सुदि ३ शनौ श्री आगरानगरे ओ लोढा गोत्रे—गावंसे सा० पेमन भार्या श्री शक्तादे पुत्र सा० पेतमी मा० भक्तादे पुत्र श्री अंचलगच्छे पूज्य श्री ५ कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन श्री विमलनाथ विं० सा० कुंरपाल.... ।

नं० ३१२. [सं० १६७१] ॥ संघपति श्री कुंरपाल सं० सोनपालैः स्वमातृ. अंचलगच्छे पूज्य श्री ५ श्री धर्ममूर्तिसूरि पट्टाम्बुजहंस श्री ५ श्री कल्याणसागरसरी. श्रीपार्श्वनाथविंबं प्रतिष्ठापितं पूज्यमानं चिरं नंदतु ॥

नं० ४३३. श्रीमत्संवत १६७१ वर्षे वैशाष सुदि ३ शनौ श्री आगरावास्त-योसवाल ज्ञातीय लोढा गोत्रे गावं—त्रा स० ऋषभदास भार्या रेषश्री तत्पुत्र श्री कुंरपाल सोनपाल संघाधिपे स्वानुजवर दुनीचंदस्य पुण्यार्थं उपकाराय श्री अंचलगच्छे पूज्य श्री ५ कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन श्री आदिनाथविंबं प्रतिष्ठापितं ॥]

प्रशस्ति की नकल

(नोटः— [ ] इन चिन्हों में दिये अक्षर टूट गए हैं या साफ नहीं पढे जाते)

॥ पातसाहि श्री जहांगी[र] ॥

१. ॥ ॐ ॥ श्री सिद्धेभ्यो नमः ॥ स्वस्ति श्री विष्णुपुत्रो निखिलगुणयुतः पारगो वीतरागः । पायाद् वः क्षीणकर्म्मा सुरशिखरिसमः क [लि]—

२. तीर्थप्रदाने ॥ श्री श्रेयान् धर्म्ममूर्तिर्भविकजनमनःपंकजे विम्ब[1]भानुः । कल्याणाम्भोधिचन्द्रः सुरनरनिकरैः सेव्य [मा]—

३. नः कृपालुः ॥ १ ॥ ऋषभप्रमुखाः सार्वा[2] । गौतमाद्या मुनीश्वराः । पापकर्मविनिर्मुक्ताः क्षेमं कुर्व्वन्तु सर्वदा ॥ २ ॥ कुंर—

४. पालस्वर्ण्णपालौ । धर्मकृत्यपरायणौ । स्ववंशकुजमार्त्तण्डौ । प्रशस्तिर्लिख्यते तयोः ॥ ३ ॥ श्रीमति हायने रम्ये चन्द्रर्षिरस—

५. भूमिते १६७१ । षड्[3]त्रिंशत्तिथिशाके १५३६ विक्रमादित्यभूपतेः ॥ ४ ॥ राधमासे वसन्तर्त्तौ शुक्लायां तृतीयातिथौ । युक्ते तु

६. रोहिणीभेन निर्दोषे गुरुवासरे ॥ ५ ॥ श्री मदञ्चल[4]गच्छाख्ये । सर्वगच्छावतंसके । सिद्धान्ताख्यातमार्गेण । राजिते विश्वविस्तृते । ६ । उग्रसे—

---

1 लेख में विंव

2 विसर्ग खोदकर काटी गई है जिस से विराम सा प्रतीत होता है ।

3 षट्० चाहिये ।

4 " ल " खोदने से रह गया था । पीछे च न के नीचे खोदा गया है ।

5 ग्ग के लिये ग्र चिन्ह लिखा गया है ।

७. नपुरे रम्ये निरातङ्करसाश्रये । प्रासादमन्दिराकीर्णे । सद्ज्ञातौ ह्युपकेशवे । ७ । लोढा गोत्रे विवस्वाँस्त्रिजगति सुयशा ब्रह्मच–
८. र्यादियुक्तः । श्रीश्रङ्गख्यातनामा गुरुवचनयुतः कामदेवादितुल्यः । जीवाजीवादितत्वे पर-रुचिरमतिर्लोकवर्गेषु याव–। ज्जीया–
९. श्चन्द्रार्कबिम्बं परिकरभृतकैः सेवितस्त्वं मुदा हि । ८ । लोढा सन्तानविज्ञातो । धनराजो गुणान्वितः । द्वादशव्रतधारी च । शुभ–
१०. कर्म्मणि तत्परः । ९ । तत्पुत्रो वेसराजश्च । दयावान् सुजनप्रियः । तूर्यव्रतधरः श्रीमान् चातुर्यादिगुणैर्युतः । १० । तत्पुत्रौ द्वा–
११. बभूतां च। सुरागावर्धितौ सदा । जेठू श्रीरङ्गोतौ च । जिनाज्ञापालनोच्छुकौ[1] । ११ । तौ जीणासीहमल्लाख्यौ जेठ्वात्मजौ बभूवतु–
१२. : । धर्म्मविदौ च दक्षौ च । महापूज्यौ यशोधनौ। १२ । आसीच्छ्री[2]रङ्गजो नूनं जिन-पादार्चने रतः । मनीषी सुमना भव्यो राजपा–
१३. ल उदारधीः । १३ । आर्या । धनदौ चर्षभदास । पेमाख्यौ विविधसाख्यधनयुक्तौ । आस्तां प्राज्ञौ दौ च तत्त्वज्ञौ तौ तु तत्पु–
१४. त्रौ । १४ । रेपाभिधस्तयोर्ज्येष्ठः । कल्पद्रुरिव सर्वदः । राजमान्यः कुलाधारो । दयालुर्धर्म्मकर्म्मठः । १५ । रेपश्रीस्तत्प्रिया
१५. भव्या । शीलालङ्कारधारिणी । पतिव्रता पतौ[3] रक्ता । सुलशारेवतीनिभा । १६ । श्री पद्मप्रभबिम्बस्य नवीनस्य जिनाल–
१६. ये । प्रतिष्ठा कारिता येन सत्श्राद्धगुणशालिना[4] । १७ । लब्धै तूर्यव्रतं यस्तु । श्रुत्वा कल्याणदेशनां । राजश्रीनन्दनः
१७. श्रेष्ठ । आनन्द[5]श्रावकोपमः । १८ । तत्सूनुः कुंरपालः । किल विमलमतिः स्वर्णपालो द्वितीय–। श्चातुर्यौदार्यधैर्यप्रमु–
१८. खगुणनिधिर्भाग्यसौभाग्यशाली । तौ द्वौ रूपाभिरामौ । विविधजिनवृपध्यानकृत्यैकनिष्ठौ । त्यागैः कर्णावतारौ निज–
१९. कुलतिलकौ वस्तुपालोपमार्हौ । १९ । श्री जहांगीरभूपालामात्यौ धर्म्मधुरन्धरौ । धनिनौ पुण्यकर्तारौ । विख्यातौ भ्रा–
२०. तरौ भुवि । २० । याम्यामुप्तं नवक्षेत्रे । वित्तबीजमनुत्तरम् । तौ धन्यौ कामदौ लोके । लोढागोत्रावतंसकौ । २१ । अवा–

---

1 च्छ के लिये जैन लिपि का चिन्ह ।
2 लेख में आसीछ्रीरंग० लिखा है ।
3 पत्यौ होना चाहिये था ।
4 सच्‌श्राद्ध० या सच्छ्राद्ध० होना चाहिये था ।
5 लेख में आणंद० लिखा है ।

२१. प्य शासनं चारु । जहांगीरपतेर्ननु । कारयामासतुर्धर्म्मं । क्रियासर्वं सहोदरौ । २२ । शाला पोषधपूर्वा वै यकाभ्यां सा[1]
२२. विनिर्मिता । अधित्यकात्रिकं यत्र राजते चित्तरञ्जकम् । २३ । समेताशिखरे भव्ये शत्रुञ्जयेर्बुदाचले । अन्येष्वपि च तीर्थेषु गि–
२३. रिनारिगिरौ[2] तथा । २४ । सङ्घाधिपत्यमासाद्य । ताभ्यां यात्रा कृता मुदा । महध्दर्या सर्वसामग्र्या । शुद्धसम्यक्त्वहेतवे । २५ । तुरङ्गा–
२४. णां शतं कान्तं । पञ्चविंशतिपूर्वकम् । दत्तं तु तीर्थयात्रायै । गजानां पञ्चविंशतिः । २६ । अन्यदपि धनं वित्तं । प्रत्तं संख्यातिगं खलु
२५. अर्जयामासतुः कीर्ति-। मित्थं तौ वसुधातले । २७ । उत्तुङ्गं गगनालम्बि । सच्चित्रं सध्वजं परम् । नेत्रासेचनकं ताभ्यां । युग्मं चैत्य–
२६. स्य[3] कारितम् । २८ । अथ गद्यम् । श्री अञ्चलगच्छे । श्री वीरादष्टचत्वारिंशत्तमे पट्टे । श्रीपावकगिरौ श्रीसीमन्धरजिनवचसा श्रीचक्रे [श्वरीद]–
२७. त्तवराः । सिद्धान्तोक्तमार्गप्ररूपकाः । श्रीविधिपक्षगच्छसंस्थापकाः । श्रीआर्यरक्षित सूरय-१ । स्तत्पदे श्रीजयसिंहसूरि [२ श्री धर्म घो]–
२८. षसूरि ३ श्रीमहेन्द्रसूरि ४ श्रीसिंहप्रभसूरि ५ श्री जिनसिंहसूरि ६ श्रीदेवेन्द्रसिंहसूरि ७ श्रीधर्मप्रभसूरि ८ श्री[सिंहतिलकसू]—
२९. रि ९ श्रीमहेन्द्रप्रभसूरि १० श्रीमेरुतुङ्गसूरि ११ श्रीजयकीर्तिसूरि १२ । श्रीजय-केशरिसूरि १३ श्रीसिद्धान्तसागर [सूरि १४ श्री भावसा]
३०. गरसूरि १५ श्रीगुणनिधानसूरि १६ श्रीधर्म्ममूर्तिसूरय १७ स्तत्पट्टे सम्प्रति विराज-मानाः । श्रीभट्टारक पुरवराः [– – – – – – – – –][4]
३१. णयः श्रीयुगप्रधानाः । पूज्य भट्टारक श्री ५ श्री कल्याणसागर सूरय १८ स्तेषामुप-देशेन श्रीश्रेयांसजिनविम्बा [दीना – – – – – – –][5]
३२. कुंरपालसोनपालाभ्यां प्रतिष्ठा कारापिता । पुनः श्लोकाः । श्रीश्रेयांसजिनेशस्य विम्बं स्थापितमुत्तमं प्रति [ि – – – – – – – – –]
३३. णामुपदेशतः । २९ । चत्वारि शतमानानि । सार्धान्युपरि[6] तत्क्षणे । प्रतिष्ठितानि विम्बानि · जिनानां सौख्यकारि [णाम् । ३० । – – – –]

---

1 सा शब्द का I चिन्ह २२ वीं पंक्ति में है ।
2 गिरिनार० चाहिये था क्यों कि यह शब्द गिरिनगर का अपभ्रंश है ।
3 चैत्ययोः चाहिये था ।
4 यहां से सात आठ अक्षर टूट गए हैं ।
5 यहां से पांच अक्षर टूट गए हैं ।
6 सार्द्धा० लिखा है ।

३४. तु लेभाते । प्राज्यपुण्यप्रभावतः देवगुर्व्वोः सदा भक्तौ । शश्वती नन्दतां चिरम् । ३१ । अथ तयोः परिवारः । सङ्घराज [---- । --]

३५. ------ । -------- । -------- । ३२ । सूनवः स्वर्णपाल - । -,--- [चतुर्भुज] -------- [पुत्री] युगलमुत्तमम् । ४३ । प्रेमनस्य त्रयः पु [त्राः ---]

३६. पेतसी तथा । नेतसी विद्यमानस्तु सच्छीलेन सुदर्शनः । ३४ । श्रीमतः सङ्घराजस्य । तेजस्विनो यशस्विनः । चत्वारस्तनुजन्मान ------ मताः ।३५कुंरपालस्य स—

३७. द्भार्या । -------- । -------- । ---- पातिप्रिया । ३६ । तदङ्गजास्ति गम्भीरा जादो नाम्नी [स] --- । -------- ज्येष्ठमल्लो गुणाश्रयः । ३७ ।

३८. सङ्घश्रीसुलसश्रीदा । दुर्गश्रीप्रमुखैर्निजैः । वधूजनैर्युतौ भातां । रेषश्री नन्दनौ सदा । ३८ । भूपण्डलसमारङ्ग । सिन्ध्वर्कयुक [--- । -------- । --- ------ । ३८] २



लेख का सारांश

(लेख की भाषा सरल होने के कारण पूरा अनुवाद नहीं दिया)

पंक्ति १–३ मंगलाचरण ।

" ४–५ प्रशस्ति का रचना काल । विक्रम संवत् चन्द्र ऋषि रस भू अर्थात् १६७१,शक संवत् १५३६, राध (वैशाख) मास, वसंत ऋतु, शुक्ल पक्ष, तृतीया तिथी, गुरुवार रोहिणी नक्षत्र ।

" ६ अंचल गच्छ की प्रशंसा ।

" ७ उग्रसेनपुर (आगरा नगर) की शोभा का वर्णन ।

" ८–९ उपकेश (ओसवाल) ज्ञातीय, लोढा गोत्रीय, श्रीश्रंग की स्तुति ।

१० उस के पुत्र वेसराज के गुणों का वर्णन ।

११ वेसराज के पुत्र जेठू और श्रीरंग का वर्णन ।

" ११–१२ जेठू के पुत्र जीणासीह और मल्ल[सीह] का वर्णन ।

" १२ श्रीरंग का पुत्र राजपाल, तिस का वर्णन ।

" १३ राजपाल की राज दरबार में बडी प्रतिष्ठा थी, और उस के ऋषभदास और प्रेमन दो पुत्र थे ।

" १४ उन में ऋषभदास (अपरनाम रेषा) बडा था । इस की भार्या रेषश्री ।

" १५–१६ ऋषभदास ने मंदिर में श्रीपद्मप्रभ के नये बिंब की प्रतिष्ठा कराई थी । और

१ यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सका कि पंक्ति ३४ के अंत और पंक्ति ३५ के आदि में कितने अक्षर टूटे हैं ।

२ प्रतीत होता है कि प्रशस्ति यहां समाप्त हो गई ।

,, किसी आचार्य की कल्याणकारी देशना[1] को सुनकर राजश्री के पुत्रने[2] ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया।

,, १७-१८ ऋषभदास के पुत्र कुंरपाल स्वर्णपाल (सोनपाल)। तिन के गुणों का वर्णन। दान देने में उन की कर्ण से उपमा।

,, १९-२० ये जहांगीर बादशहा के अमात्य (मंत्री) थे; बडे धनवान थे; सदा शुभकाम करते और पुण्य क्षेत्रों में धन लगाते थे।

,, २१ जहांगीर की आज्ञा से दोनों भाई धर्म का काम करते थे।

,, २२-२३ उन्हों ने तीन भवन वाली एक पौषधशाला बनवाई। संघाधिपति बनकर समेतशिखर, शत्रुंजय, आबू, गिरनार तथा अन्य तीर्थों की यात्रा की।

,, २४ १२५ घोडे,९२५ हाथी यात्रा के लिये जुदा कर छोडे थे।

,, २५ उन्हों ने दो चैत्य बनवाए जो बहुत ही ऊंचे, चित्रों और झंडों से सजे हुये थे।

,, २६ अंचल गच्छ की उत्पत्ति। भगवान महावीर से ४८ वें पट्ट पर श्री आर्य रक्षित सूरि हुए। उन्हों ने श्री सीमंधर[3] स्वामी की आज्ञा पूर्वक चक्रेश्वरी देवी से वर प्राप्त करके विधिपक्ष अर्थात् अंचलगच्छ चलाया।

,, २७-३० पट्टावलि।

,, ३१-३२ कुंरपाल सोनपालने श्री कल्याणसागरके उपदेश से श्रेयांस नाथजी का मंदिर बनवाया।

,, ३३-३४ और उसी समय ४५० अन्य प्रतिमाओं[4] की प्रतिष्ठा हुई। इस से उन की बडी कीर्ती हुई।

,, ३५ संघराज...बेटे सोनपाल...चतुर्भुज...दो बेटियां। प्रेमन के तीन पुत्र...

,, ३६ चेतसी और नेतसी जो शीलपालने से मानो सुदर्शन ही विद्यमान था। बुद्धिमान, तेजस्वी और यशस्वी संघराज के चार बेटे थे।

,, ३७ कुंरपाल की भार्या.........उस की पुत्री का नाम जादो था। जेठमल गुणों का धाम ......

,, ३८ रेषश्री के दोनो पुत्र (कुंरपाल सोनपाल) अपनी पुत्रवधुओं संघश्री, सुलसश्री, दुर्गाश्री आदि के गुणों से शोभा पाते रहें। आशीर्वाद (जिस के बहुत से अक्षर टूट गए हैं)॥

---

१ कल्याणदेशना से शायद श्रीकल्याणसागर जी के उपदेश का आशय हो।

२ शायद ऋषभदास की माता का नाम राजश्री था।

३ महाविदेह क्षेत्र में वर्तमान तीर्थंकर।

४ इन प्रतिमाओं का पता लगाना चाहिये।

५ यहां से लेख का सम्बंध ठीक नहीं बैठता।

[टिप्पणी—कुंवरपाल सेनपालकी प्रशंसामें किसीएक कविने हिन्दी भाषामें एक कविता लिखी है जो पाटनके किसीएक भंडारमें हमारे देखनेमें आई थी और जिसकी नकल हमने अपनी नोटबुकमें कर ली थी। उसका संबंध इस लेखके साथ होनेसे हम यहां उसे प्रकट किये देते हैं।—संपादक।]

कोरपाल सोनपाल लोढा गुणप्रशंसा

कवित्त

सगर भरथ जगि, जगडु जावड भये। पेमराय सारंग, सुजश नाम धरणी ॥ १
सेत्रुंजे संघ चलायो, सुधन सुखेत बायो। संघपतिपद पायो, कवि कोटि किर्ति बरणी ॥ २
लांहनि कडाहि ठांम, ठांम द्रुग भांन कहि। आनंद मंगल घरि घरि गावे घरणी ॥३
वस्तपाल तेजपाल, हुये रेखचंद नंद। कोरपाल सोनपाल, कीनी भली करणी ॥ ४
कहि लखमण लोढा, दूनींकुं दिखाइ देख। लछिको प्रमान जोपे, एसो लाह लीजिये ॥ ५
आंन संघपति कोउ, संघ जोपे कीयो चाहे। कोरपाल सोनपाल,—को सो संघ कीजिये ॥ ६
सबल राय बिभार, निबल थापना चार। वाधा राइ वंदि छोर, अरि डर साजको ॥ ७
अहेराय अवठंभ, खितीपती रायखंभ। मंत्रीराय आरंभ, प्रगट सुभ साजको ॥ ८
कवि कहि रूप भूप, राइन मुकटमनि। त्यागी राई तिलक, विरद गज बाजको ॥ ९
हय गय हेमदांन, मांन नंदकी समांन। हिंदु सुरताण, सोनपाल रेखराजको ॥ १०
सैन बर आसनके, पैजपर पासनके। निजदल रंजन, भंजन पर दलको ॥ ११
मदमत्तवारे, विकरारे,अति भारे भारे। कारे कारे बादरसे, वासव सुजलके ॥ १२
कवि कहि रूप, नृप भुपतिनिके सिंगार। अति वडवार ऐरापति समबलके ॥ १३
रेखराजनंदकोर पाल सोनपालचंद। हेतवांनि देत ऐसे हाथिनिके हलके ॥ १४

सोमदेवसूरिकृत नीतिवाक्यामृत।

(ग्रन्थपरिचय)

[लेखक—श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी.]

[श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीकी देखरेखमें बम्बईसे जो माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैनग्रन्थ-माला प्रकट होती है, उसमें अभी हाल ही सोमदेवसूरिकृत नीतिवाक्यामृत नामका एक अमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थके कर्ता और विषय आदिका विस्तृत परिचय करानेके लिए प्रेमीजीने ग्रन्थके प्रारंभमें एक पाण्डित्यपूर्ण और अनेक ज्ञातव्य बातोंसे भरपूर सुन्दर प्रस्तावना लिखी है जो प्रत्येक साहित्य और इतिहास प्रेमीके लिए अवश्य पठनीय और मननीय है। इस लिए हम लेखक महाशयकी अनुमति लेकर, जैनसाहित्यसंशोधकके पाठकोंके ज्ञानार्थ, उस प्रस्तावनाको अविकलतया यहाँ पर प्रकट करते हैं—संपादक।]

श्रीमत्सोमदेवसूरिका यह 'नीतिवाक्यामृत' संस्कृत साहित्य-सागरका एक अमूल्य और अनुपम रत्न है। इसका प्रधान विषय राजनीति है। राजा और उसके राज्यशासनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रायः सभी आवश्यक बातोंका इसमें विवेचन किया गया है। यह सारा ग्रन्थ गद्यमें है और सूत्रपद्धतिसे लिखा गया है। इसकी प्रतिपादनशैली बहुत ही सुन्दर, प्रभावशालिनी और गंभीरतापूर्ण है। बहुत बड़ी बातको एक छोटेसे वाक्यमें कह देनेकी कलामें इसके कर्ता सिद्धहस्त हैं। जैसा कि ग्रन्थके नामसे ही प्रकट होता है, इसमें विशाल नीतिसमुद्रका मन्थन करके सारभूत अमृत संग्रह किया गया है और इसका प्रत्येक वाक्य इस बातकी साक्षी देता है। नीतिशास्त्रके विद्यार्थी इस अमृतका पान करके अवश्य ही सन्तृप्त होंगे।

यह ग्रन्थ ३२ समुद्देशोंमें × विभक्त है और प्रत्येक समुद्देशमें उसके नामके अनुसार विषय प्रतिपादित है।

प्राचीन राजनीतिक साहित्य।

राजनीति, चार पुरुषार्थोंमेंसे दूसरे अर्थपुरुषार्थके अन्तर्गत है। जो लोग यह समझते हैं कि प्राचीन भारतवासियोंने 'धर्म' और 'मोक्ष' को छोड़कर अन्य पुरुषार्थोंकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, वे इस देशके प्राचीन साहित्यसे अपरिचित हैं। यह सच है कि पिछले समयमें इन विषयोंकी ओरसे लोग उदासीन होते गये, इनका पठन पाठन बन्द होता गया और इस कारण इनके सम्बन्धका जो साहित्य था वह धीरे धीरे नष्टप्राय होता गया। फिर भी इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि राजनीति आदि विद्याओंकी भी यहाँ खूब उन्नति हुई थी और इनपर अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गये थे।

वात्स्यायनके कामसूत्रमें लिखा है कि प्रजापतिने प्रजाके स्थितिप्रबन्धके लिए त्रिवर्गशासन—(धर्म-अर्थ-काम विषयक महाशास्त्र) बनाया जिसमें एक लाख अध्याय थे। उसमेंके एक एक भागको लेकर मनुने धर्माधिकार, बृहस्पतिने अर्थाधिकार, और नन्दीने कामसूत्र, इस प्रकार तीन अधिकार बनाये * । इसके बाद इन तीनों विषयोंपर उत्तरोत्तर

× "समुद्देशश्च संक्षेपाभिधानम्"—कामसूत्रटीका, अ० ३।

* "प्रजापतिर्हि प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच। तस्यैकदेशिकं मनुः स्वायंभुवो धर्माधिकारकं पृथक् चकार। बृहस्पतिरर्थाधिकारम्। नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक्कामसूत्रं चकार।"—कामसूत्र अ० १।

संक्षिप्त ग्रन्थोंका निर्माण हुआ। पुराणोंमें भी लिखा है कि प्रजापतिके उक्त एक लाख अध्यायवाले त्रिवर्ग-शासनके नारद, इन्द्र, बृहस्पति, शुक्र, भारद्वाज, विशालाक्ष, भीष्म, पराशर, मनु, अन्यान्य महर्षि और विष्णुगुप्त (चाणक्य) ने संक्षिप्त करके पृथक् पृथक् ग्रन्थोंकी रचना की +। परन्तु इस समय उक्त सब साहित्य प्रायः नष्ट हो गया है। कामपुरुषार्थ पर वात्स्यायनका कामसूत्र, अर्थपुरुषार्थ पर विष्णुगुप्त या चाणक्यका अर्थशास्त्र और धर्मपुरुषार्थ पर मनुके धर्म-शास्त्रका संक्षिप्तसार 'मानवं धर्मशास्त्र'—जो कि भृगु नामक आचार्यका संग्रह किया हुआ है और मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध है—उपलब्ध है।

उक्त ग्रन्थोंमेंसे राजनीतिका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ '**कौटिलीय अर्थशास्त्र**' अभी १३–१४ वर्ष पहले ही उपलब्ध हुआ है और उसे मैसूरकी यूनीवर्सिटीने प्रकाशित किया है। यह अबसे लगभग २२०० वर्ष पहले लिखा गया था। सुप्रसिद्ध मौर्यवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्तके लिए—जो कि हमारे कथाग्रन्थोंके अनुसार जैनधर्मके उपासक थे और जिन्होंने अन्तमें जिनदीक्षा धारण की थी*—आर्य चाणक्यने इस ग्रन्थको निर्माण किया था ×। नन्दवंशका समूल उच्छेद करके उसके सिंहासन पर चन्द्रगुप्तको आसीन करानेवाले चाणक्य कितने बड़े राजनीतिज्ञ होंगे, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। उनकी राजनीतिज्ञताका सबसे अधिक उज्ज्वल प्रमाण यह अर्थशास्त्र है। यह बड़ा ही अद्भुत ग्रन्थ है और उस समयकी शासनव्यवस्था पर ऐसा प्रकाश डालता है जिसकी पहले किसीने कल्पना भी न की थी। इसे पढ़नेसे मालूम होता है कि उस प्राचीन कालमें भी इस देशने राजनीतिमें आश्चर्यजनक उन्नति कर ली थी। इस ग्रन्थमें मनु, भारद्वाज, उशना (शुक्र), बृहस्पति, विशालाक्ष, पिशुन, पराशर, वातव्याधि, कौणपदन्त और बाहुदन्तीपुत्र नामक प्राचीन आचार्योंके राजनीतिसम्बन्धी मतोंका जगह जगह उल्लेख मिलता है। आर्य चाणक्य प्रारंभमें ही कहते हैं कि पृथिवीके लाभ और पालनके लिए पूर्वाचार्योंने जितने अर्थशास्त्र प्रस्थापित किये हैं, प्रायः उन सबका संग्रह करके यह अर्थशास्त्र लिखा जाता है +। इससे मालूम होता है कि चाणक्यसे भी पहले इस विषयके अनेकानेक ग्रन्थ मौजूद थे और चाणक्यने उन सबका अध्ययन किया था। परन्तु इस समय उन ग्रन्थोंका कोई पता नहीं है।

चाणक्यके बादका एक और प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है जिसका नाम '**नीतिसार**' है और जिसे संभवतः चाणक्यके ही शिष्य **कामन्दक** नामक विद्वानने अर्थशास्त्रको संक्षिप्त करके लिखा है ÷। अर्थशास्त्र प्रायः गद्यमें है; परन्तु नीतिसार श्लोकबद्ध है। यह भी अपने ढंगका अपूर्व और प्रामाणिक ग्रन्थ है और अर्थशास्त्रको समझनेमें इससे बहुत सहायता मिलती है। इसमें भी विशालाक्ष, पुलोमा, यम आदि प्राचीन नीतिग्रन्थकर्त्ताओंके मतोंका उल्लेख है।

\+ ब्रह्माध्यायसहस्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम्। तन्नारदेन शक्रेण गुरुणा भार्गवेण च॥
भारद्वाजविशालाक्षभीष्मपाराशरैस्तथा। संक्षिप्तं मनुना चैव तथा चान्यैर्महर्षिभिः॥
प्रजानामायुषो ह्रासं विज्ञाय च महात्मना। संक्षिप्तं मनुना चैव तथा चान्यैर्महर्षिभिः॥
प्रजानामायुषो ह्रासं विज्ञाय च महात्मना। संक्षिप्तं विष्णुगुप्तेन नृपाणामर्थसिद्धये॥

ये श्लोक हमने गुजरातीटीकासहित कामन्दकीय नीतिसारकी भूमिका परसे उध्दृत किये हैं; परन्तु उससे यह नहीं मालूम हो सका कि ये किस पुराणके हैं।

* सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मि० विन्सेण्ट स्मिथ आदि विद्वान् भी इस बातको संभव समझते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैनधर्मके उपासक थे। 'त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति' नामक प्राकृत ग्रन्थमें—जो विक्रमकी पाँचवीं शताब्दिके लगभगका है—लिखा है कि मुकुटधारी राजाओंमें सबसे अन्तिम राजा चन्द्रगुप्त था जिसने जिनदीक्षा ली।—देखो जैनहितैषी वर्ष १३, अंक १२।

× सर्वशास्त्रानुपक्रम्य प्रयोगानुपलभ्य च। कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः॥
येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः। अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥

\+ पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्।

÷ देखो गुजराती प्रेस बम्बईके 'कामन्दकीय नीतिसार' की भूमिका।

कामन्दकके नीतिसारके बाद जहाँ तक हम जानते हैं, यह नीतिवाक्यामृत ग्रन्थ ही ऐसा बना है, जो उक्त दोनों ग्रन्थोंकी श्रेणीमें रक्खा जा सकता है और जिसमें शुद्ध राजनीतिकी चर्चा की गई है। इसका अध्ययन भी कौटिलीय अर्थशास्त्रके समझनेमें बड़ी भारी सहायता देता है।

नीतिवाक्यामृतके कर्ताने भी अपने द्वितीय ग्रन्थ (यशस्तिलक) में गुरु,शुक्र,विशालाक्ष, भारद्वाजके नीतिशास्त्रोंका उल्लेख किया है*। मनुके भी बीसो श्लोकोंको उद्धृत किया है +। नीतिवाक्यामृतमें विष्णुगुप्त या चाणक्यका और उनके अर्थशास्त्रका उल्लेख है×। बृहस्पति, शुक्र, भारद्वाज, आदिके अभिप्रायोंको भी उन्होंने नीतिवाक्यामृतमें संग्रह किया है जिसका स्पष्टीकरण नीतिवाक्यामृतकी इस संस्कृत टीकासे होता है। स्मृतिकारोंसे भी वे अच्छी तरह परिचित मालूम होते हैं †। इससे हम कह सकते हैं कि नीतिवाक्यामृतके कर्ता पूर्वोक्त राजनीतिके साहित्यसे यथेष्ट परिचित थे। बहुत संभव है कि उनके समयमें उक्त सबका सब साहित्य नहीं तो उसका अधिकांश उपलब्ध होगा। कमसे कम पूर्वोक्त आचार्योंके ग्रन्थोंके सार या संग्रह आदि अवश्य मिलते होंगे।

इन सब बातोंसे और नीतिवाक्यामृतको अच्छी तरह पढ़नेसे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि नीतिवाक्यामृत प्राचीन नीतिसाहित्यका सारभूत अमृत है। दूसरे शब्दोंमें यह उन सबके आधारसे और कविकी विलक्षण प्रतिभासे प्रसूत हुआ संग्रह ग्रन्थ है। जिस तरह कामन्दकने चाणक्यके अर्थशास्त्रके आधारसे संक्षेपमें अपने नीतिसारका निर्माण किया है, उसी प्रकार सोमदेवसूरिने उनके समयमें जितना नीतिसाहित्य प्राप्त था उसके आधारसे यह नीतिवाक्यामृत निर्माण किया है ÷। दोनोंमें अन्तर यह है कि नीतिसार श्लोकबद्ध है और केवल अर्थशास्त्रके आधारसे लिखा गया है, परन्तु नीतिवाक्यामृत गद्यमें है और अनेकानेक ग्रन्थोंके आधारसे निर्माण हुआ है, यद्यपि अर्थशास्त्रकी भी इसमें यथेष्ट सहायता ली गई है।

कौटिलीय अर्थशास्त्रकी भूमिकामें श्रीयुत शामशास्त्रीने लिखा है कि, "यत्र यशोधरमहाराजसमकालीन सोमदेवसूरिणा नीतिवाक्यामृतं नाम नीतिशास्त्रं विरचितं तदपि कामन्दकीयमिव कौटिलीयार्थशास्त्रादेव संक्षिप्य संगृहीतमिति तद्ग्रन्थपदवाक्यशैलीपरीक्षायां निस्संशयं ज्ञायते।" अर्थात् यशोधर महाराजके समकालिक सोमदेवसूरिने जो 'नीतिवाक्यामृत' नामका ग्रन्थ लिखा है उसके पद और वाक्योंकी शैलीकी परीक्षासे यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वह भी कामन्दकके नीतिसारके समान कौटिलीय अर्थशास्त्रसे ही संक्षिप्त करके लिखा गया है*।" परन्तु हमारी समझमें

---

*"न्यायादवसरमलभमानस्य विरसेवकसमाजस्य विज्ञप्तय इव नर्मसचिवोक्तयः प्रतिपन्नकामचारव्यवहारेषु स्वैरविहारेषु मम गुरुशुक्रविशालाक्षपरीक्षितपराशरभीमभीष्मभारद्वाजादिप्रणीतनीतिशास्त्रश्रवणसनाथं श्रुतपथमभजन्त।"—यशस्तिलकचम्पू, आश्वास ३, पृ० २३६।

+"दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः। समं सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम्॥
इति कथमिदमाह वैवस्वतो मनुः।"—यशस्तिलक आ० ४, पृष्ठ १००। यह श्लोक मनुस्मृति अ० ६ का ६६ वाँ श्लोक है। इसके सिवाय यशस्तिलक आश्वास ४, पृ० ९०—९१—११६ (प्रोक्षितं भक्षयेत्), ११७ (क्रीत्वा स्वयं), १२७ (सभी श्लोक), १४९ (सभी श्लोक), २८७ (अधीत्य) के श्लोक भी मनुस्मृतिमें ज्योंके त्यों मिलते हैं। यद्यपि वहाँ यह नहीं लिखा है कि ये मनुके हैं। 'उक्तं च' रूपमें ही दिये हैं।

× नीतिवाक्यामृत पृष्ठ० ३६ सूत्र ९, पृ० १०७ सूत्र ४, पृ० १७१ सूत्र १४ आदि।

† "विप्रकीतावूढापि पुनर्विवाहदीक्षामर्हतीति स्मृतिकाराः"—नी०वा०पृ०२७७,सू०२७; "श्रुतेःस्मृतेर्बाह्यवाह्यतरे;" यशस्तिलक आ० ४, पृ० १०५; "श्रुतिस्मृतीभ्यामतीव बाह्ये"—यशस्तिलक आ० ४, पृ० १११; "तथा च स्मृतिः" पृ० ११६; और "इति स्मृतिकारकीर्तितमप्रमाणीकृत्य" पृ० २८७।

÷ यशस्तिलक आ० ४ पृ० १०० में नीतिकार **भारद्वाज**के षाड्गुण्य प्रस्तावके दो श्लोक और **विशालाक्ष**के कुछ वाक्य दिये हैं। ये विशालाक्ष संभवतः वे ही नीतिकार हैं जिनका उल्लेख अर्थशास्त्र और नीतिसारमें किया गया है।

* शास्त्रीजीका यह बड़ा भारी भ्रम है, जो सोमदेवसूरिको वे यशोधर महाराजके समकालिक समझते हैं। यशोधर जैनोंके एक पुराणपुरुष हैं। इनका चरित सोमदेवसे भी पहले पुष्पदन्त, वच्छराय आदि कवियोंने लिखा है। पुष्पदन्तका समय शकसंवत् ६०६ के लगभग है। और वच्छराय पुष्पदन्तसे भी पहले हुए हैं।

शास्त्रीजीने उक्त परीक्षा बारीकीसे या अच्छी तरह विचार करके नहीं की है । यह हम मानते हैं कि नीतिवाक्यामृतकी रचनामें अर्थशास्त्रकी सहायता अवश्य ली गई है, जैसा कि आगे दिये हुए दोनोंके अवतरणोंसे मालूम होगा । पाठक देखेंगे कि दोनोंमें विलक्षण समता है, कहीं कहीं तो दोनोंके पाठ बिल्कुल एकसे मिल गये हैं । परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि नीतिवाक्यामृत अर्थशास्त्रका ही संक्षिप्त सार है । अर्थशास्त्रका अनुधावन करनेवाला होकर भी वह अनेक अंशोंमें बहुत कुछ स्वतंत्र है । अर्थशास्त्रके अतिरिक्त अन्यान्य नीतिशास्त्रोंके अभिप्राय भी उसमें अपने ढंगसे समावेशित किये गये हैं । इसके सिवाय ग्रन्थकर्ताने अपने देश-काल पर दृष्टि रखते हुए बहुत सी पुरानी बातोंको—जिनकी उस समय जरूरत नहीं रही थी या जो उनकी समझमें अनुचित थीं—छोड़ दिया है या परिवर्तित कर दिया है । साथ ही बहुतसी समयोपयोगी बातें शामिल भी कर दी हैं ।

यहाँ हम अर्थशास्त्र और नीतिवाक्यामृतके ऐसे अवतरण देते हैं जिनसे दोनोंकी समानता प्रकट होती है:—

१—दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति, किमङ्ग पुनर्गृहस्थान् । अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति । बलीयानबलं ग्रसते दण्डधराभावे ।　—अर्थशास्त्र पृ० ९ ।

दुष्प्रणीतो हि दण्डः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वा सर्वजनविद्वेषं करोति । अप्रणीतो हि दण्डो मात्स्यन्यायमुद्भावयति । बलीयानबलं ग्रसते (इति मात्स्यन्यायः) ।　— नीतिवा० पृ० १०४–५ ।

२—ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात् । अतो गोदानं दारकर्म च ।　—अर्थ० पृ० १० ।

ब्रह्मचर्यमाषोडशाद्वर्षात्ततो गोदानपूर्वकं दारकर्म चास्य ।　—नी० १६७ ।

३—पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां च अभिविनीतमापदां दैवमानुषीणां अथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्त्तारं कुर्वीत ।　—अर्थ० पृ० १५–१६ ।

पुरोहितमुदितकुलशीलं षडंगवेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यामभिविनीतमापदां दैवीनां मानुषीणां च प्रतिकर्त्तारं कुर्वीत ।　—नीति० पृ० १५९ ।

४ परमर्मज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः ।—अर्थ पृ० १८ ।

परमर्मज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः । —. नी० पृ० १७३ ।

५—श्रूयते हि शुकसारिकाभिः मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः । तस्मान्मन्त्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत् ।　—अर्थ० पृ० २६ ।

अनायुक्तो न मन्त्रकाले तिष्ठेत् । श्रूयते हि शुकशारिकाभ्यामन्यैश्च तिर्यग्भिर्मन्त्रभेदः कृतः । —नीति० पृ० ११८।

६—द्वादशवर्षा स्त्री प्राप्तव्यवहारा भवति । षोडशवर्षः पुमान् ।　—अर्थ० १५४ ।

द्वादशवर्षा स्त्री षोडशवर्षः पुमान् प्राप्तव्यवहारौ भवतः ।　—नीति० ३७३ ।

इस तरहके और भी अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं ।

यहाँपर पाठकोंको यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि चाणक्यने भी तो अपने पूर्ववर्ती विशालाक्ष, भारद्वाज, बृहस्पति आदिके ग्रन्थोंका संग्रह करके अपना ग्रन्थ लिखा है* । ऐसी दशामें यदि सोमदेवकी रचना अर्थशास्त्रसे मिलती जुलती हो, तो क्या आश्चर्य है । क्योंकि उन्होंने भी उन्हीं ग्रन्थोंका मन्थन करके अपना नीतिवाक्यामृत लिखा है । यह दूसरी बात है कि नीतिवाक्यामृतकी रचनाके समय ग्रन्थकर्ताके सामने अर्थशास्त्र भी उपस्थित था ।

परन्तु पाठक इससे नीतिवाक्यामृतके महत्त्वको कम न समझ लें । ऐसे विषयोंके ग्रन्थोंका अधिकांश भाग संग्रहरूप ही होता है । क्योंकि उसमें उन सब तत्त्वोंका समावेश तो नितान्त आवश्यक ही होता है जो ग्रन्थकर्त्ताके पूर्वलेखकों द्वारा उस शास्त्रके सम्बन्धमें निश्चित हो चुकते हैं । उनके सिवाय जो नये अनुभव और नये तत्त्व उपलब्ध होते हैं उन्हें ही वह विशेषरूपसे अपने ग्रन्थमें लिपिबद्ध करता है । और हमारी समझमें नीतिवाक्यामृत ऐसी बातोंसे खाली नहीं है । ग्रन्थकर्त्ताकी स्वतंत्र प्रतिभा और मौलिकता उसमें जगह जगह प्रस्फुटित हो रही है ।

---

* देखो पृष्ठ ५ की टिप्पणी 'पृथिव्या लाभे' आदि ।

ग्रन्थकर्ताका परिचय ।

गुरुपरम्परा ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है नीतिवाक्यामृतके कर्त्ता श्रीसोमदेवसूरि हैं । वे देवसंघके आचार्य थे । दिगम्बर-सम्प्रदायके सुप्रसिद्ध चार संघोंमेंसे यह एक है । मंगराज कविके कथनानुसार यह संघ सुप्रसिद्ध तार्किक भट्टाकलंकदेवके बाद स्थापित हुआ था । अकलंकदेवका समय विक्रमकी ९ वीं शताब्दिका प्रथम पाद है । *

सोमदेवके गुरुका नाम नेमिदेव और दादागुरुका नाम यशोदेव था । यथा:—

श्रीमानस्ति स देवसंघतिलको देवो यशःपूर्वकः,
शिष्यस्तस्य बभूव सद्गुणनिधिः श्रीनेमिदेवाह्वयः ।
तस्याश्चर्यतपः स्थितेस्त्रिनवतेर्जेतुर्महावादिनां,
शिष्योऽभूदिह सोमदेव इति यस्तस्यैष काव्यक्रमः ॥ —यशस्तिलकचम्पू ।

नीतिवाक्यामृतकी गद्यप्रशस्तिसे भी यह मालूम होता है कि वे नेमिदेवके शिष्य थे । साथ ही उसमें यह भी लिखा है कि वे महेन्द्रदेव भट्टारकके अनुज थे । इन तीनों महात्माओं—यशोदेव, नेमिदेव और महेन्द्रदेवके सम्बन्धमें हमें और कोई भी बात मालूम नहीं है । न तो इनकी कोई रचना ही उपलब्ध है और न अन्य किसी ग्रन्थादिमें इनका कोई उल्लेख ही मिला है । इनके पूर्वके आचार्योंके विषयमें भी कुछ ज्ञात नहीं है । सोमदेवसूरिकी शिष्यपरम्परा भी अज्ञात है । यशस्तिलकके टीकाकार श्रीश्रुतसागरसूरिने एक जगह लिखा है कि वादिराज और वादीभसिंह, दोनों ही सोमदेवके शिष्य थे ×; परन्तु इसके लिए उन्होंने जो प्रमाण दिया है वह किस ग्रन्थका है, इसके जाननेका कोई साधन नहीं है । यशस्तिलककी रचना शकसंवत् ८८१ (विक्रम १०१६) में समाप्त हुई है और वादिराजने अपना पार्श्वनाथचरित शकसंवत् ९४७ (वि० १०८२) में पूर्ण किया है; अर्थात् दोनोंके बीचमें ६६ वर्षका अन्तर है । ऐसी दशामें उनका गुरु शिष्यका नाता होना दुर्घट है । इसके सिवाय वादिराजके गुरुका नाम मतिसागर था और वे द्रविड संघके आचार्य थे । अब रहे वादीभसिंह, सो उनके गुरुका नाम पुष्पषेण था और पुष्पषेण अकलंकदेवके गुरुभाई थे, इसलिए उनका समय सोमदेवसे बहुत पहले जा पड़ता है । ऐसी अवस्थामें वादिराज और वादीभसिंहको सोमदेवका शिष्य नहीं माना जा सकता । ग्रन्थकर्ताके गुरु बड़े भारी तार्किक थे । उन्होंने ९३ वादियोंको पराजित करके विजयकीर्ति प्राप्त की थी +।

इसी तरह महेन्द्रदेव भट्टारक भी दिग्विजयी विद्वान् थे । उनका 'वादीन्द्रकालानल' उपपद ही इस बातकी घोषणा करता है ।

तार्किक सोमदेव ।

श्रीसोमदेवसूरि भी अपने गुरु और अनुजके सदृश बड़े भारी तार्किक विद्वान् थे । वे इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें कहते हैं:—

अल्पेऽनुग्रहधीः समे सुजनता मान्ये महानादरः, सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्रचरिते श्रीसोमदेवे मयि ।
यः स्पर्धेत तथापि दर्पदृढताप्रौढिप्रगाढाग्रह—स्तस्याखर्वितगर्वपर्वतपविर्मद्वाक्कृतान्तायते ॥

सारांश यह कि मैं छोटोंके साथ अनुग्रह, बराबरीवालोंके साथ सुजनता और बड़ोंके साथ महान् आदरका बर्ताव करता हूँ । इस विषयमें मेरा चरित्र बहुत ही उदार है । परन्तु जो मुझे ऐंठ दिखाता है, उसके लिए, गर्वरूपी पर्वतको विध्वंस करनेवाले मेरे वज्र-वचन कालस्वरूप हो जाते हैं ।

---

* देखो जैनहितैषी भाग ११, अंक ७—८ ।

× "उक्तं च वादिराजेन महाकविना—......................स वादिराजोऽपि श्रीसोमदेवाचार्यस्य शिष्यः— 'वादीभसिंहोऽपि मदीयशिष्यः श्रीवादिराजोऽपि मदीयशिष्यः' इत्युक्तत्वाच्च ।" —यशस्तिलकटीका आ० २, पृ० २६५ ।

\+ यशस्तिलकके ऊपर उद्धृत हुए श्लोकमें उन महावादियोंकी संख्या—जिनको श्रीनेमिदेवने पराजित किया था—तिरानबे बतलाई है; परन्तु नीतिवाक्यामृतकी गद्यप्रशस्तिमें पचपन है । मालूम नहीं, इसका क्या कारण है ।

दर्पान्धबोधबुधसिन्धुरसिंहनादे , वादिद्विपोद्दलनदुर्धरवाग्विवादे ।
श्रीसोमदेवमुनिपे वचनारसाले, वागीश्वरोऽपि पुरतोऽस्ति न वादकाले ॥

भाव यह कि अभिमानी पण्डित गजोंके लिए सिंहके समान ललकारनेवाले और वादिगजोंको दलित करनेवाला दुर्धर विवाद करनेवाले श्रीसोमदेव मुनिके सामने, वादके समय वागीश्वर या देवगुरु बृहस्पति भी नहीं ठहर सकते हैं।

इसी तरहके और भी कई पद्य हैं जिनसे उनका प्रखर और प्रचण्ड तर्कपाण्डित्य प्रकट होता है।

यशस्तिलक चम्पूकी उत्थानिकामें कहा है:—

आजन्मकृतभ्यासाच्छुष्कात्तर्कात्तृणादिव ममास्याः।
मतिसुरभेरभवादिदं सूक्तपयः सुकृतिनां पुण्यैः ॥ १७

अर्थात् मेरी जिस बुद्धिरूपी गौने जीवन भर तर्करूपी सूखा घास खाया, उसीसे अब यह काव्यरूपी दुग्ध उत्पन्न हो रहा है। इस उक्तिसे अच्छी तरह प्रकट होता है कि श्रीसोमदेवसूरिने अपने जीवनका बहुत बड़ा भाग तर्कशास्त्रके अभ्यासमें ही व्यतीत किया था। उनके स्याद्वादाचलसिंह, वादीभपंचानन और तार्किकचक्रवर्ती पद भी इसी बातके द्योतक हैं।

परन्तु वे केवल तार्किक ही नहीं थे—काव्य, व्याकरण, धर्मशास्त्र और राजनीति आदिके भी धुरंधर विद्वान् थे।

महाकवि सोमदेव।

उनका यशस्तिलकचम्पू महाकाव्य—जो निर्णयसागर की काव्यमालामें प्रकाशित हो चुका है—इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे महाकवि थे और काव्यकला पर भी उनका असाधारण अधिकार था। समूचे संस्कृत साहित्यमें यशस्तिलक एक अद्भुत काव्य है और कवित्वके साथ उसमें ज्ञानका विशाल खजाना संगृहीत है। उसका गद्य भी कादम्बरी तिलकमञ्जरी आदिकी टक्करका है। सुभाषितोंका तो उसे आकर ही कहना चाहिए। उसकी प्रशंसामें स्वयं ग्रन्थकर्त्ताने यत्रतत्र जो सुन्दर पद्य कहे हैं, वे सुनने योग्य हैं:—

असहायमनादर्शं रत्नं रत्नाकरादिव।
मत्तः काव्यमिदं जातं सतां हृदयमण्डनम् ॥ १४ —प्रथम आश्वास।

समुद्रसे निकले हुए असहाय, अनादर्श और सज्जनोंके हृदयकी शोभा बढ़ानेवाले रत्नकी तरह मुझसे भी यह असहाय (मौलिक), अनादर्श (बेजोड़) और हृदयमण्डन काव्यरत्न उत्पन्न हुआ।

कर्णाञ्जलिपुटैः पातुं चेतः सूक्तामृते यदि।
श्रूयतां सोमदेवस्य नव्याः काव्योक्तियुक्तयः ॥ २४६ ॥ —द्वितीय आ०।

यदि आपका चित्त कानोंकी अँजुलीसे सूक्तामृतका पान करना चाहता है, तो सोमदेवकी नई नई काव्योक्तियाँ सुनिए।

लोकवित्त्वे कवित्वे वा यदि चातुर्यचञ्चवः।
सोमदेवकवेः सूक्तिं समभ्यस्यन्तु साधवः ॥ ५१३ ॥ —तृतीय आ०।

यदि सज्जनोंकी यह इच्छा हो कि वे लोकव्यवहार और कवित्वमें चातुर्य प्राप्त करें तो उन्हें सोमदेव कविकी सूक्तियोंका अभ्यास करना चाहिए।

मया वागर्थसंभारे भुक्ते सारस्वते रसे।
कवयोऽन्ये भविष्यन्ति नूनमुच्छिष्टभोजनाः ॥ —चतुर्थ आ०, पृ० १६५।

मैं शब्द और अर्थपूर्ण सारे सारस्वत रस (साहित्य रस) का स्वाद ले चुका हूँ, अतएव अब जितने दूसरे कवि होंगे, वे निश्चयसे उच्छिष्टभोजी या जूठा खानेवाले होंगे—वे कोई नई बात न कह सकेंगे।

अरालकालव्यालेन ये लीढा साम्प्रतं तु ते।
शब्दाः श्रीसोमदेवेन प्रोत्थाप्यन्ते किमद्भुतम् ॥ —पंचम आ०, पृ० २६६।

समयरूपी विकट सर्पने जिन शब्दोंको निगल लिया था, अतएव जो मृत हो गये थे, यदि उन्हें श्रीसोमदेवने उठा दिया, जिला दिया—तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। (इसमें 'सोमदेव' शब्द श्लिष्ट है। सोम चन्द्रवाची है और चन्द्रकी अमृत-किरणोंसे विषमूर्च्छित जीव सचेत हो जाते हैं।)

उद्धृत्य शास्त्रजलधेर्नितले निमग्नैः
पर्यागतैरिव चिरादभिधानरत्नैः ।
या सोमदेवविदुषा विहिता विभूपा
वाग्देवता वहतु सम्प्रति तामनर्घाम् ॥ —पं० आ०, पृ० २६६ ।

चिरकालसे शास्त्रसमुद्रके विल्कुल नीचे डूबे हुए शब्द-रत्नोंका उद्धार करके सोमदेव पण्डितने जो यह बहुमूल्य आभूषण (काव्य) बनाया है, उसे श्रीसरस्वती देवी धारण करें ।

इन उक्तियोंसे इस बातका आभास मिलता है कि आचार्य सोमदेव किस श्रेणीके कवि थे और उनका उक्त महाकाव्य कितना महत्त्वपूर्ण है । पूर्वोक्त उक्तियोंमें अभिमानकी मात्रा विशेप रहने पर भी वे अनेक अंशोंमें सत्य जान पड़ती हैं । सचमुच ही यशस्तिलक शब्दरत्नोंका बड़ा भारी खजाना है और यदि माघकाव्यके समान कहा जाय कि इस काव्यको पढ़ लेने पर फिर कोई नया शब्द नहीं रह जाता, तो कुछ अत्युक्ति न होगी । इसी तरह इसके द्वारा सभी विपयोंकी व्युत्पत्ति हो सकती है । व्यवहारदक्षता बढ़ानेकी तो इसमें ढेर सामग्री है ।

महाकवि सोमदेवके वाक्कल्लोलपयोनिधि, कविराजकुंजर और गद्यपद्यविद्याधरचक्रवर्ती विशेषण, उनके श्रेष्ठकवित्वके ही परिचायक हैं ।

धर्माचार्य सोमदेव ।

यद्यपि अभीतक सोमदेवसूरिका कोई स्वतंत्र धार्मिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है; परन्तु यशस्तिलकके अन्तिम दो आश्वास—जिनमें उपासकाध्ययन या श्रावकोंके आचारका निरूपण किया गया है—इस बातके साक्षी हैं कि वे धर्मके कैसे मर्मज्ञ विद्वान् थे । स्वामी समन्तभद्रके रत्नकरण्डके वाद श्रावकोंका आचारशास्त्र ऐसी उत्तमता, स्वाधीनता और मार्मिकताके साथ इतने विस्तृतरूपमें आजतक किसी भी विद्वान्की कलमसे नहीं लिखा गया है । जो लोग यह समझते हैं कि धर्मग्रन्थ तो परम्परासे चले आये हुए ग्रन्थोंके अनुवादमात्र होते हैं—उनमें ग्रन्थकर्ता विशेप क्या कहेगा, उन्हें यह उपासकाध्ययन अवश्य पढ़ना चाहिए और देखना चाहिए कि धर्मशास्त्रोंमें भी मौलिकता और प्रतिभाके लिए कितना विस्तृत क्षेत्र है । खेद है कि जैनसमाजमें इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थके पठन पाठनका प्रचार बहुत ही कम है और अब तक इसका कोई हिन्दी अनुवाद भी नहीं हुआ है । नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिमें लिखा है:—

सकलसमयतर्के नाकलंकोऽसि वादिन् न भवसि समयोक्तौ हंससिद्धान्तदेवः ।
न च वचनविलासे पूज्यपादोऽसि तत्त्वं वदसि कथमिदानीं सोमदेवेन साधम् ॥

अर्थात् हे वादी, न तो तू समस्तदर्शन शास्त्रों पर तर्क करनेके लिए अकलंकदेवके तुल्य है, न जैनसिद्धान्तको कहनेके लिए हंससिद्धान्तदेव है और न व्याकरणमें पूज्यपाद है, फिर इस समय सोमदेवके साथ किस बिरते पर बात करने चला है ? *

इस उक्तिसे स्पष्ट है कि सोमदेवसूरि तर्क और सिद्धान्तके समान व्याकरणशास्त्रके भी पण्डित थे ।

राजनीतिज्ञ सोमदेव ।

सोमदेवके राजनीतिज्ञ होनेका प्रमाण यह नीतिवाक्यामृत तो है ही, इसके सिवाय उनके यशस्तिलकमें भी यशोधर महाराजका चरित्रचित्रण करते समय राजनीतिकी बहुत ही विशद और विस्तृत चर्चा की गई है । पाठकोंको चाहिए कि वे इसके लिए यशस्तिलकका तृतीय आश्वास अवश्य पढ़ें ।

यह आश्वास राजनीतिके तत्त्वोंसे भरा हुआ है । इस विपयमें वह अद्वितीय है । वर्णन करनेकी शैली बड़ी ही सुन्दर है । कवित्वकी कमनीयता और सरसतासे राजनीतिकी नीरसता मालूम नहीं कहाँ चली गई है । नीतिवाक्यामृतके

* अकलंकदेव—अष्टशती, राजवार्तिक आदि ग्रन्थोंके रचियता । हंससिद्धान्तदेव—ये कोई सैद्धान्तिक आचार्य जान पड़ते हैं । इनका अब तक और कहीं कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आया । पूज्यपाद—देवनन्दि, जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ता ।

अनेक अंशोंका अभिप्राय उसमें किसी न किसी रूपमें अन्तर्निहित जान पड़ता है + ।

जहाँ तक हम जानते हैं जैनविद्वानों और आचार्योंमें—दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनोंमें—एक सोमदेवने ही 'राजनीतिशास्त्र' पर कलम उठाई है। अतएव जैनसाहित्यमें उनका नीतिवाक्यामृत अद्वितीय है। कमसे कम अब तक तो इस विषयका कोई दूसरा जैनग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है।

ग्रन्थ-रचना।

इस समय सोमदेवसूरिके केवल दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं—**नीतिवाक्यामृत** और **यशस्तिलकचम्पू**। इनके सिवाय—जैसा कि नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिसे मालूम होता है—तीन ग्रन्थ और भी हैं—१ **युक्तिचिन्तामणि**, २ **त्रिवर्गमहेन्द्रमातलिसंजल्प** और ३ **षण्णवतिप्रकरण**। परन्तु अभीतक ये कहीं प्राप्त नहीं हुए हैं। उक्त ग्रन्थोंमेंसे **युक्तिचिन्तामणि** तो अपने नामसे ही तर्कग्रन्थ मालूम होता है और दूसरा शायद नीतिविषयक होगा। महेन्द्र और उसके सारथी मातलिके संवादरूपमें उसमें त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामकी चर्चा की गई होगी। तीसरेके नामसे सिवाय इसके कि उसमें ९६ प्रकरण या अध्याय हैं, विषयका कुछ भी अनुमान नहीं हो सकता है।

इन सब ग्रन्थोंमें नीतिवाक्यामृत ही सबसे पिछला ग्रन्थ है। यशोधरमहाराजचरित या यशस्तिलक इसके पहलेका है। क्योंकि नीतिवाक्यामृतमें उसका उल्लेख है। बहुत संभव है कि नीतिवाक्यामृतके बाद भी उन्होंने ग्रन्थरचना की हो और उक्त तीन ग्रन्थोंके समान वे भी किसी जगह दीमक या चूहोंके खाद्य बन रहे हों, या सर्वथा नष्ट ही हो चुके हों।

विशाल अध्ययन।

यशस्तिलक और नीतिवाक्यामृतके पढ़नेसे मालूम होता है कि सोमदेवसूरिका अध्ययन बहुत ही विशाल था। ऐसा जान पड़ता है कि उनके समयमें जितना साहित्य—न्याय, व्याकरण, काव्य, नीति, दर्शन आदि सम्बन्धी—उपलब्ध था, उस सबसे उनका परिचय था। केवल जैन ही नहीं, जैनेतर साहित्यसे भी वे अच्छी तरह परिचित थे। यशस्तिलकके चौथे आश्वासमें (पृ० ११३ में) उन्होंने लिखा है कि इन महाकवियोंके काव्योंमें नग्न क्षपणक या दिगम्बर साधुओंका उल्लेख क्यों आता है? उनकी इतनी अधिक प्रसिद्धि क्यों है?—**उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेण्ठ, कण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, भास,* वोस, कालिदास×, बाण+, मयूर, नारायण, कुमार, माघ और राजशेखर।**

इससे मालूम होता है कि वे पूर्वोक्त कवियोंके काव्योंसे अवश्य परिचित होंगे। प्रथम आश्वासके ९० वें पृष्ठमें उन्होंने **इन्द्र, चन्द्र, जैनेन्द्र, आपिशल** और **पाणिनि**के व्याकरणोंका जिकर किया है। **पूज्यपाद**

+ नीतिवाक्यामृत और यशस्तिलकके कुछ समानार्थक वचनोंका मिलान कीजिए:—

१—बुभुक्षाकालो भोजनकालः— नी० वा०, पृ० २५३।

चारायणो निशि तिमिः पुनरस्तकाले, मध्ये दिनस्य धिषणश्चरकः प्रभाते।
भुक्तिं जगाद नृपते मम चैष सर्गस्तस्याः स एव समयः क्षुधितो यदैव ॥३२८॥ —यशस्तिलक, आ० ३।

(पूर्वोक्त पद्यमें चारायण, तिमि, धिषण और चरक इन चार आचार्योंके मतोंका उल्लेख किया गया है।)

२—कोकवद्दिवाकामः निशि भुञ्जीत। चकोरवन्नक्तंकामः दिवापक्वम्।— नी० वा० पृ० २५७।

अन्ये त्विदमाहुः—

यः कोकवद्दिवाकामः स नक्तं भोक्तुमर्हति।
स भोक्ता वासरे यश्च रात्रौ रन्ता चकोरवत् ॥ ३३० ॥ —यशस्तिलक, आ० २

* भास महाकविका '**पेया सुरा प्रियतमामुखमीक्षणीयं**' आदि पद्य भी पाँचवें आश्वासमें (पृ० २५०) उद्धृत है। × रघुवंशका भी एक जगह (आश्वास ४, पृ० १९४) उल्लेख है। + बाण महाकविका एक जगह औ भी (आ० ४, पृ० १०१) उल्लेख है और लिखा है कि उन्होंने शिकारकी निन्दा की है।

(जैनेन्द्रके कर्त्ता) और पाणिनिका उल्लेख और भी एक दो जगह हुआ है। गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पराशर, भीम, भीष्म, भारद्वाज आदि नीतिशास्त्रप्रणेताओंका भी वे कई जगह स्मरण करते हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्रसे तो वे अच्छी तरह परिचित हैं ही। हमारे एक पण्डित मित्रके कथनानुसार नीतिवाक्यामृतमें सौ सवा सौ के लगभग ऐसे शब्द हैं जिनका अर्थ वर्तमान कोशोंमें नहीं मिलता। अर्थशास्त्रका अध्येता ही उन्हें समझ सकता है। अश्वविद्या, गजविद्या, रत्नपरीक्षा, कामशास्त्र, वैद्यक आदि विद्याओंके आचार्योंका भी उन्होंने कई प्रसंगोंमें जिकर किया है। प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म, वराहमिहिरकृत प्रतिष्ठाकाण्ड, आदित्यमत, निमित्ताध्याय, महाभारत, रत्नपरीक्षा, पतंजलिका योगशास्त्र और वररुचि, व्यास, हरप्रबोध, कुमारिलकी उक्तियोंके उद्धरण दिये हैं। सैद्धान्तवैशेषिक, तार्किक वैशेषिक, पाशुपत, कुलाचार्य, सांख्य, दशवलशासन, जैमिनीय, बार्हस्पत्य, वेदान्तवादि, काणाद, ताथागत, कापिल, ब्रह्माद्वैतवादि, अवधूत आदि दर्शनोंके सिद्धान्तोंपर विचार किया है। इनके सिवाय मतङ्ग, भृगु, भर्ग, भरत, गौतम, गर्ग, पिंगल, पुलह, पुलोम, पुलस्ति, पराशर, मरीचि, विरोचन, धूमध्वज, नीलपट, अहिल, आदि अनेक प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध आचार्योंका नामोल्लेख किया है। बहुतसे ऐतिहासिक दृष्टान्तोंका भी उल्लेख किया गया है। जैसे यवनदेश (यूनान?) में मणिकुण्डला रानीने अपने पुत्रके राज्यके लिए विषदूषित शरावके कुरलेसे अजराजाको, सूरसेन (मथुरा) में वसन्तमतिने विषमय आलतेसे रंगे हुए अधरोंसे सुरतविलास नामक राजाको, दशार्ण (भिलसा) में वृकोदरीने विषलिप्त करधनीसे मदनार्णव राजाको, मगध देशमें मदिराक्षीने तीखे दर्पणसे मन्मथविनोदको, पाण्ड्य देशमें चण्डरसा रानीने कबरीमें छुपी हुई छुरीसे मुण्डीर नामक राजाको मार डाला *। इत्यादि। पौराणिक आख्यान भी बहुतसे आये हैं। जैसे प्रजापति ब्रह्माका चित्त अपनी लड़की पर चलायमान हो गया, वररुचि या कात्यायनने एक दासीपर रीझकर उसके कहनेसे मद्यका घड़ा उठाया, आदि ×। इन सब बातोंसे पाठक जान सकेंगे कि आचार्य सोमदेवका ज्ञान कितना विस्तृत और व्यापक था।

उदार विचारशीलता।

यशस्तिलकके प्रारंभके २० वें श्लोकमें सोमदेवसूरि कहते हैं:—

> लोको युक्तिः कलाश्छन्दोऽलंकाराः समयागमाः।
> सर्वसाधारणाः सद्भिस्तीर्थमार्ग इव स्मृताः॥

अर्थात् सज्जनोंका कथन है कि व्याकरण, प्रमाणशास्त्र (न्याय), कलायें, छन्दःशास्त्र, अलंकारशास्त्र और (आर्हत, जैमिनि, कपिल, चार्वाक, कणाद, बौद्धादिके) दर्शनशास्त्र तीर्थमार्गके समान सर्वसाधारण हैं। अर्थात् जिस तरह गंगादिके मार्ग पर ब्राह्मण भी चल सकते हैं और चाण्डाल भी, उसी तरह इनपर भी सबका अधिकार है। +

१—" पूज्यपाद इव शब्देतिह्येषु...पाणिपुत्र इव पदप्रयोगेषु " यश० आ० २, पृ० २३६। —२, ३, ४, ५, ६—" रोमपाद इव गजविद्यासु रैवत इव हयनयेषु शुकनाश इव रत्नपरीक्षासु, दत्तक इव कन्तुसिद्धान्तेषु "—आ० ४, पृ० २३६–२३७। 'दत्तक' कामशास्त्रके प्राचीन आचार्य हैं। वात्स्यायनने इनका उल्लेख किया है। 'चारायण' भी कामशास्त्रके आचार्य हैं। इनका मत यशस्तिलकके तीसरे आश्वासके ५०९ पृष्ठमें चरकके साथ प्रकट किया गया है।

१, २, ३, ४, ५—उक्त पाँचों ग्रन्थोंके उद्धरण यश० के चौथे आश्वासके पृ० ११२–१३ और ११९ में उद्धृत हैं। महाभारतका नाम नहीं है, परन्तु 'पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्' आदि श्लोक महाभारतसे ही उद्धृत किया गया है।

६—तदुक्तं रत्नपरीक्षायाम्—' न केवलं ' आदि; आश्वास ५, पृ० २५६।

७—यशस्तिलक आ० ६, पृ० २७६–७७। ८—९—आ० ४, पृ० ९९ ।१०,११—आ० ५, पृ०२५१–५४।

१२—इन सब दर्शनोंका विचार पाँचवें आश्वासके पृ० २६९ से २७७ तक किया गया है।

१३—देखो आश्वास ५, पृ० २५२–५५ और २९९।

* यशस्तिलक आ० ४, पृ० १५३। इन्हीं आख्यानोंका उल्लेख नीतिवाक्यामृत (पृ० २३२) में भी किया गया है। आश्वास ३- पृ० ४३१ और ५५० में भी ऐसे ही कई ऐतिहासिक दृष्टान्त दिये गये हैं।

× यश० आ० ४, पृ० १३८—३९।

+ " लोको व्याकरणशास्त्रम्, युक्तिः प्रमाणशास्त्रम्, ...समयागमाः जिनजैमिनिकपिलकणचरचार्वाकशाक्यानां सिद्धान्ताः। सर्वसाधारणाः सद्भिः कथिताः प्रतिपादिताः। क इव तीर्थे मार्ग इव। यथा तीर्थमार्गे ब्राह्मणाश्चलन्ति, चाण्डाला अपि गच्छन्ति, नास्ति तत्र दोषः। "—श्रुतसागरी टीका।

इस उक्तिसे पाठक जान सकते हैं कि उनके विचार ज्ञानके सम्बन्धमें कितने उदार थे। उसे वे सर्वसाधारणकी चीज समझते थे और यही कारण है जो उन्होंने धर्माचार्य होकर भी अपने धर्मसे इतर धर्मके माननेवालोंके साहित्यका भी अच्छी तरहसे अध्ययन किया था, यही कारण है जो वे पूज्यपाद और भट्ट अकलंकदेवके साथ पाणिनि आदिका भी आदरके साथ उल्लेख करते हैं और यही कारण है जो उन्होंने अपना यह राजनीतिशास्त्र [illegible] जैनेतर आचार्योंके विचारोंका सार खींचकर बनाया है। यह सच है कि उनका जैन सिद्धान्तों पर अचल विश्वास है और इसीलिए यशस्तिलकमें उन्होंने अन्य सिद्धान्तोंका खण्डन करके जैनसिद्धान्तकी उपादेयता प्रतिपादन की है; परन्तु इसके साथ ही वे इस सिद्धान्तके पक्के अनुयायी हैं कि 'युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः।' उनकी यह नीति नहीं थी कि ज्ञानका मार्ग भी संकीर्ण कर दिया जाय और संसारके विशाल ज्ञान-भाण्डारका उपयोग करना छोड़ दिया जाय।

समय और स्थान।

नीतिवाक्यामृतके अन्तकी प्रशस्तिमें इस बातका कोई जिकर नहीं है कि वह कब और किस स्थानमें रचा गया था; परन्तु यशस्तिलक चम्पूके अन्तमें इन दोनों बातोंका उल्लेख है:—

"शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेष्वष्टस्वेकाशीत्यधिकेषु गतेषु अङ्कतः (८८१) सिद्धार्थसंवत्सरान्तर्गतचैत्रमासमदनत्रयोदश्यां पाण्ड्य-सिंहल-चोल-चेरमप्रभृतीन्महीपतीन्प्रसाध्य मेलपाटीप्रवर्धमानराज्यप्रभावे श्रीकृष्णराजदेवे सति तत्पादपद्मोपजीविनः समधिगतपञ्चमहाशब्दमहासामन्ताधिपतेश्चालुक्यकुलजन्मनः सामन्तचूडामणेः श्रीमदरिकेसरिणः प्रथमपुत्रस्य श्रीमद्वयगराजस्य लक्ष्मीप्रवर्धमानवसुधारायां गङ्गाधारायां विनिर्मापितमिदं काव्यमिति।"

अर्थात् चैत्र सुदी १३, शकसंवत् ८८१ (विक्रम संवत् १०१६) को जिस समय श्रीकृष्णराजदेव पाण्ड्य सिंहल, चोल, चेर आदि राजाओं पर विजय प्राप्त करके मेलपाटी नामक राजधानीमें राज्य करते थे और उनके चरणकमलोपजीवी सामन्त वद्दिग—जो चालुक्यवंशीय अरिकेसरीके प्रथम पुत्र थे—गंगाधाराका शासन करते थे, यह काव्य समाप्त हुआ।

दक्षिणके इतिहाससे पता चलता है कि ये कृष्णराजदेव राष्ट्रकूट या राठौर वंशके महाराजा थे और इनका दूसरा नाम अकालवर्ष था। यह वही वंश है जिसमें भगवज्जिनसेनके परमभक्त महाराज अमोघवर्ष (प्रथम) उत्पन्न हुए थे। अमोघवर्षके पुत्र अकालवर्ष (द्वितीय कृष्ण) और अकालवर्षके जगत्तुंग हुए *। इन जगत्तुंगके दो पुत्रों—इन्द्र या नित्यवर्ष और वद्दिग या अमोघवर्ष (तृतीय) मेंसे—अमोघवर्ष तृतीयके पुत्र कृष्णराजदेव या तृतीय कृष्ण थे। इनके समयके शक संवत् ८६७, ८७३, ८७६, और ८८१ के चार शिलालेख मिले हैं, इससे इनका राज्यकाल कमसे कम ८६७ से ८८१ तक सुनिश्चित है। ये दक्षिणके सार्वभौमराजा थे और बड़े प्रतापी थे। इनके अधीन अनेक माण्डलिक या करद राज्य थे। कृष्णराजने—जैसा कि सोमदेवसूरिने लिखा है—सिंहल, चोल, पाण्ड्य और चेर राजाओंको युद्धमें पराजित किया था। इनके समयमें कनड़ी भाषाका सुप्रसिद्ध कवि पोन्न हुआ है जो जैन था और जिसने

---

१ पाण्ड्य=वर्तमानमें मद्रासका 'तिनेवली'। सिंहल=सिलोन या लंका। चोल=मदरासका कारोमण्डल। चेर=केरल, वर्तमान त्रावणकोर। २ मुद्रित ग्रन्थमें 'मेल्याटी' पाठ है। ३ मुद्रित पुस्तकमें 'श्रीमद्वागराजप्रवर्धमान—' पाठ है।

* जगत्तुंग गद्दीपर नहीं बैठे। अकालवर्षके बाद जगत्तुंगके पुत्र तृतीय इन्द्रको गद्दी मिली। इन्द्रके दो पुत्र थे—अमोघवर्ष (द्वितीय) और गोविन्द (चतुर्थ)। इनमेंसे द्वितीय अमोघवर्ष पहले सिंहासनारूढ हुए; परन्तु कुछ ही समयके बाद गोविन्द चतुर्थने उन्हें गद्दीसे उतार दिया और आप राजा बन बैठे। गोविन्दके बाद उनके काका अर्थात् जगत्तुंगके दूसरे पुत्र अमोघवर्ष (तृतीय) गद्दीपर बैठे। अमोघवर्षके बाद ही कृष्णराजदेव सिंहासनासीन हुए। इन सबके विषयमें विस्तारसे जाननेके लिए डा० भाण्डरकरकृत 'हिस्ट्री आफ दी डेकन' या उसका मराठी अनुवाद पढ़िए।

शान्तिपुराण नामक श्रेष्ठ ग्रन्थकी रचना की है। महाराज कृष्णराज देवके दरबारसे इसे ' उभयभाषाकविचक्रवर्ती ' की उपाधि मिली थी।

निजामके राज्यमें मलखेड़ नामका एक ग्राम है जिसका प्राचीन नाम 'मान्यखेट ' है। यह मान्यखेट ही अमोघवर्ष आदि राष्ट्रकूट राजाओंकी राजधानी थी × और उस समय बहुत ही समृद्ध थी। संभव है कि सोमदेवने इसीको मेलपाटी या मिलपाटी लिखा हो। ' हिस्टरी आफ कनारी लिटरेचर ' के लेखकने लिखा है कि पोन्न कविको उभयभाषाकविचक्रवर्तीकी उपाधि देनेवाले राष्ट्रकूट राजा कृष्णराजने मान्यखेटमें सन् ९३९ से ९६८ तक राज्य किया है। इससे भी मालूम होता है कि मान्यखेटका ही नाम मेलपाटी होगा; परंतु यदि यह मेलपाटी कोई दूसरा स्थान है तो समझना होगा कि कृष्णराज देवके समयमें मान्यखेटसे राजधानी उठकर उक्त दूसरे स्थानमें चली गई थी। इस बातका पता नहीं लगता कि मान्यखेटमें राष्ट्रकूटोंकी राजधानी कब तक रही।

राष्ट्रकूटोंके समयमें दक्षिणका चालुक्यवंश (सोलंकी) हतप्रभ हो गया था। क्योंकि इस वंशका सार्वभौमत्व राष्ट्रकूटोंने ही छीन लिया था। अतएव जब तक राष्ट्रकूट सार्वभौम रहे तब तक चालुक्य उनके आज्ञाकारी सामन्त या माण्डलिक राजा बनकर ही रहे। जान पड़ता है कि **अरिकेसरीका** पुत्र **वद्दिग** ऐसा ही एक सामन्तराजा था जिसकी गंगाधारा नामक राजधानीमें यशस्तिलककी रचना समाप्त हुई है।

चालुक्योंकी एक शाखा ' जोल ' नामक प्रान्तपर राज्य करती थी जिसका एक भाग इस समयके धारवाड़ जिलेमें आता है और श्रीयुक्त आर. नरसिंहाचार्यके मतसे चालुक्य अरिकेसरीकी राजधानी 'पुलगेरी'में थी जो कि इस समय ' लक्ष्मेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध है।

इस अरिकेसरीके ही समयमें कनड़ी भाषाका सर्वश्रेष्ठ कवि **पम्प** हो गया है जिसकी रचना पर मुग्ध होकर अरिकेसरीने धर्मपुर नामका एक ग्राम पारितोषिकमें दिया था। पम्प जैन था। उसके बनाये हुए दो ग्रन्थ ही इस समय उपलब्ध है—एक **आदिपुराण चम्पू** और दूसरा **भारत** या **विक्रमार्जुनविजय**। पिछले ग्रन्थमें उसने अरिकेसरीकी वंशावली इस प्रकार दी है—**युद्धमल्ल – अरिकेसरी—नारसिंह–युद्धमल्ल – बद्दिग – युद्धमल्ल–नारसिंह और अरिकेसरी**। उक्त ग्रन्थ शक संवत ८६३ (वि० ९९८ में) समाप्त हुआ है, अर्थात् यह यशस्तिलकसे कोई १८ वर्ष पहले बन चुका था। इसकी रचनाके समय अरिकेसरी राज्य करता था, तब उसके १८ वर्ष-बाद—यशस्तिलककी रचनाके समय—उसका पुत्र राज्य करता होगा, यह सर्वथा ठीक जँचता है।

काव्यमाला द्वारा प्रकाशित यशस्तिलकमें अरिकेसरीके पुत्रका नाम ' **श्रीमद्वागराज** ' मुद्रित हुआ है; परन्तु हमारी समझमें वह अशुद्ध है। उसकी जगह ' **श्रीमद्वद्दिगराज**' पाठ होना चाहिए। दानवीर सेठ माणिकचंदजीके सरस्वतीभंडारकी वि० सं० १४६४ की लिखी हुई प्रतिमें ' श्रीमद्वद्यगराजस्य ' पाठ है और इससे हमें अपने कल्पना किये हुए पाठकी शुद्धतामें और भी अधिक विश्वास होता है। ऊपर जो हमने **पम्पकवि**-लिखित **अरिकेसरीकी** वंशावली दी है, उस पर पाठकोंको जरा बारीकीसे विचार करना चाहिए। उसमें **युद्धमल्ल** नामके तीन, **अरिकेसरी** नामके दो और **नारसिंह** नामके दो राजा है। अनेक राजवंशोंमें प्रायः यही परिपाटी देखी जाती है कि पितामह और पौत्र या प्रपितामह और प्रपौत्रके नाम एकसे रक्खे जाते थे, जैसा कि उक्त वंशावलीसे प्रकट होता है *। अतएव हमारा अनुमान है कि इस वंशावलीके अन्तिम राजा **अरिकेसरी** (पम्पके आश्रयदाता) के पुत्रका नाम **बद्दिग** × ही होगा जो कि लेखकोंके प्रमादसे 'वद्यग' या 'वाग' बन गया है।

× महाराजा अमोघवर्ष (प्रथम) के पहले शायद राष्ट्रकूटोंकी राजधानी मयूरखण्डी थी जो इस समय नासिक जिलेमें मोरखण्ड किलेके नामसे प्रसिद्ध है।

* दक्षिणके राष्ट्रकूटोंकी वंशावलीमें भी देखिए कि अमोघवर्ष नामके चार, कृष्ण या अकालवर्ष नामके तीन, गोविन्द नामके चार, इन्द्र नामके तीन और कर्क नामके तीन राजा लगभग २५० वर्षके बीचमें ही हुए हैं।

× श्रद्धेय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने अपने ' सोलंकियोंके इतिहास ' (प्रथम भाग) में लिखा है कि सोमदेवसूरीने अरिकेसरीके प्रथम पुत्रका नाम नहीं दिया है; परन्तु ऐसा उन्होंने यशस्तिलककी प्रशस्तिके अशुद्ध पाठके कारण समझ लिया है; वास्तवमें नाम दिया है और वह ' वद्दिग ' ही है।

'गंगाधारा' स्थान के विषयमें हम कुछ पता न लगा सके जो कि वद्दिगकी राजधानी थी और जहाँ यशस्तिलककी रचना समाप्त हुई है। संभवतः यह स्थान धारवाड़के ही आसपास कहीं होगा।

श्रीसोमदेवसूरिने नीतिवाक्यामृतकी रचना कब और कहाँ पर की थी, इस बातका विचार करते हुए हमारी दृष्टि उसकी संस्कृत टीकाके निम्नलिखित वाक्यों पर जाती है।

"अत्र तावदखिलभूपालमौलिलालितचरणयुगलेन रघुवंशावस्थायिपराक्रमपालितकस्य (कृत्स्न) कर्णकुब्जेन महाराजश्रीमहेन्द्रदेवेन पूर्वाचार्यकृतार्थशास्त्रदुरवबोधग्रन्थगौरवखिन्नमानसेन सुबोधललितलघुनीतिवाक्यामृतरचनासु प्रवर्तितः सकलपारिषदत्वान्नीतिग्रन्थस्य नानादर्शनप्रतिबद्धश्रोतृणां तत्तदभीष्टश्रीकण्ठाच्युतविरंच्यर्हतां वाचनिकनमस्कृतिसूचनं तथा स्वगुरोः सोमदेवस्य च प्रणामपूर्वकं शास्त्रस्य तत्कर्तृत्वं ख्यापयितुं सकलसत्त्वकृताभयप्रदानं मुनिचन्द्राभिधानः क्षपणकव्रतधर्त्ता नीतिवाक्यामृतकर्त्ता निर्विघ्नसिद्धिकरं...श्लोकमेकं जगाद–" पृष्ठ २.

इसका अभिप्राय यह है कि कान्यकुब्जनरेश्वर महाराजा **महेन्द्रदेवने** पूर्वाचार्यकृत अर्थशास्त्र (कौटिलीय अर्थशास्त्र ?) की दुर्बोधता और गुरुतासे खिन्न होकर ग्रन्थकर्त्ताको इस सुबोध, सुन्दर और लघु नीतिवाक्यामृतकी रचना करनेमें प्रवृत्त किया।

कन्नौजके राजा **महेन्द्रपालदेवका** समय वि० संवत् ९६० से ९६४ तक निश्चित हुआ है। कर्पूरमंजरी और काव्यमीमांसा आदिके कर्त्ता सुप्रसिद्ध कवि **राजशेखर** इन्हीं महेन्द्रपालदेवके उपाध्याय थे *। परन्तु हम देखते हैं कि यशस्तिलक वि० संवत् १०१६ में समाप्त हुआ है और नीतिवाक्यामृत उससे भी पीछे बना है, क्योंकि नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिमें ग्रन्थकर्त्ताने अपनेको यशोधरमहाराजचरित या यशस्तिलक महाकाव्यका कर्त्ता प्रकट किया है और इससे प्रकट होता है कि उक्त प्रशस्ति लिखते समय वे यशस्तिलकको समाप्त कर चुके थे। ऐसी अवस्थामें महेन्द्रपालदेवसे कमसे कम ५०–५१ वर्ष बाद नीतिवाक्यामृतका रचनाकाल ठहरता है। तब समझमें नहीं आता कि टीकाकारने सोमदेवको महेन्द्रपालदेवका सामयिक कैसे ठहराया है। आश्चर्य नहीं जो उन्होंने किसी सुनी सुनाई किंवदन्तीके आधारसे पूर्वोक्त बात लिख दी हो।

नीतिवाक्यामृतके टीकाकारका समय अज्ञात है; परंतु यह निश्चित है कि वे मूल ग्रन्थकर्तासे बहुत पीछे हुए हैं, क्योंकि और तो क्या वे उनके नामसे भी अच्छी तरह परिचित नहीं है। यदि ऐसा न होता तो मंगलाचरणके श्लोककी टीकामें जो ऊपर उद्धृत हो चुकी है, वे ग्रंथकर्ताका नाम '**मुनिचन्द्र**' और उनके गुरुका नाम '**सोमदेव**' न लिखते। इससे भी मालूम होता है कि उन्होंने ग्रन्थकर्त्ता और महेन्द्रदेवका समकालिकत्व किंवदन्तीके आधारसेही लिखा है।

सोमदेवसूरिने यशस्तिलकमें एक जगह जो प्राचीन महाकवीयोंकी नामावली दी है, उसमें सबसे अन्तिम नाम **राजशेखरका** है ×। इससे मालूम होता है कि राजशेखरका नाम सोमदेवके समयमें प्रसिद्ध हो चुका था, अत एव राजशेखर उनसे अधिक नहीं तो ५० वर्ष पहले अवश्य हुए होंगे और महेन्द्रदेवके वे उपाध्याय थे। इससे भी नीतिवाक्यामृतका उनके समयमें या उनके कहनेसे बनना कम संभव जान पड़ता है।

और यदि कान्यकुब्जनरेशके कहनेसे सचमुच ही नीतिवाक्यामृत बनाया गया होता, तो इस बातका उल्लेख ग्रन्थकर्ता अवश्य करते; बल्कि महाराजा महेन्द्रपालदेव इसका उल्लेख करनेके लिए स्वयं उनसे आग्रह करते।

पहले बतलाया जा चुका है कि सोमदेवसूरि देवसंघके आचार्य थे और जहाँ तक हम जानते हैं यह संघ दक्षिणमें ही रहा है। अब भी उत्तरमें जो भट्टारकोंकी गद्दियाँ हैं, उनमेंसे कोई भी देवसंघकी नहीं है। यशस्तिलक भी दक्षिणमें ही बना है और उसकी रचनासे भी अनुमान होता है कि उसके कर्ता दाक्षिणात्य हैं। ऐसी अवस्थामें उनका

* देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण), भाग २, अंक १ में स्वर्गीय पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरीका 'अवन्तिसुन्दरी' शीर्षक नोट।

×" तथा—उर्व-भारवि-भवभूति-भर्तृहरि-भर्तृमेण्ठ-गुणाढ्य-व्यास-भास-वोस-कालिदास–बाण-मयूर-नारायण–कुमार-माघ-राजशेखरादिमहाकविकाव्येषु तत्र तत्रावसरे भरतप्रणीते काव्याध्याये सर्वजनप्रसिद्धेषु तेषु तेषूपाख्यानेषु च कथं तद्विषया महती प्रसिद्धिः।" —यशस्तिलक आ० ४, पृ०११३।

निर्ग्रन्थ होकर भी कान्यकुब्जके राजाकी सभामें रहना और उसके कहनेसे नीतिवाक्यामृतकी रचना करना असंभव नहीं तो विलक्षण अवश्य जान पड़ता है।

मूलग्रन्थ और उसके कर्त्ताके विषयमें जितनी बातें मालूम हो सकीं उन्हें लिखकर अब हम टीका और टीकाकारका परिचय देनेकी ओर प्रवृत्त होते हैं:—

टीकाकार।

जिस एक प्रतिके आधारसे यह टीका मुद्रित हुई है, उसमें कहीं भी टीकाकारका नाम नहीं दिया है। संभव है कि टीकाकारकी भी कोई प्रशस्ति रही हो और वह लेखकोंके प्रमादसे छूट गई हो। परन्तु टीकाकारने ग्रन्थके आरंभमें जो मंगलाचरणका श्लोक लिखा है, उससे अनुमान होता है कि उनका नाम बहुत करके 'हरिबल' होगा।

हरिं हरिबलं नत्वा हरिवर्णं हरिप्रभम्।
हरिज्यं च ब्रुवे टीका नीतिवाक्यामृतोपरि॥

यह श्लोक मूल नीतिवाक्यामृतके निम्नलिखित मंगलाचरणका बिल्कुल अनुकरण है:—

सोमं सोमसमाकारं सोमाभं सोमसंभवम्।
सोमदेवं मुनिं नत्वा नीतिवाक्यामृतं ब्रुवे॥

जब टीकाकारका मंगलाचरण मूलका अनुकरण है और मूलकारने अपने मंगलाचरणमें अपना नाम भी पर्यायान्तरसे व्यक्त किया है, तब बहुत संभव है कि टीकाकारने भी अपने मंगलाचरणमें अपना नाम व्यक्त करनेका प्रयत्न किया हो और ऐसा नाम उसमें **हरिबल** ही हो सकता है जिसके आगे मूलके सोमदेवके समान 'नत्वा' पद पड़ा हुआ है। यह भी संभव है कि हरिबल टीकाकारके गुरुका नाम हो और यह इसलिए कि सोमदेवको उन्होंने मूलग्रन्थकर्त्ताके गुरुका नाम समझा है। यद्यपि यह केवल अनुमान ही है, परन्तु यदि उनका या उनके गुरुका नाम **हरिबल** हो, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

टीकाकारने मंगलाचरणमें हरि या वासुदेवको नमस्कार किया है। इससे मालूम होता है कि वे वैष्णव धर्मके उपासक होंगे।

वे कहाँके रहनेवाले थे और किस समयमें उन्होंने यह टीका लिखी है, इसके जाननेका कोई साधन नहीं है। परन्तु यह बात निःसंशय होकर कही जा सकती है कि वे बहुश्रुत विद्वान् थे और एक राजनीतिके ग्रन्थपर टीका लिखनेकी उनमें यथेष्ट योग्यता थी। इस विषयके उपलब्ध साहित्यका उनके पास काफी संग्रह था और टीकामें उसका पूरा पूरा उपयोग किया गया है। नीतिवाक्यामृतके अधिकांश वाक्योंकी टीकामें उस वाक्यसे मिलते जुलते अभिप्रायवाले उद्धरण देकर उन्होंने मूल अभिप्रायको स्पष्ट करनेका भरसक प्रयत्न किया है। विद्वान् पाठक समझ सकते हैं कि यह काम कितना कठिन है और इनके लिए उन्हें कितने ग्रन्थोंका अध्ययन करना पड़ा होगा; स्मरणशक्ति भी उनकी कितनी प्रखर होगी।

यह टीका पचासों ग्रन्थकारोंके उद्धरणोंसे भरी हुई है। इसमें किन किन कवियों, आचार्यों या ऋषियोंके श्लोक उद्धृत किये गये हैं, यह जाननेके लिए ग्रन्थके अन्तमें उनके नामोंकी और उनके पद्योंकी एक सूची वर्णानुक्रमसे लगा दी गई है, इसलिए यहाँ पर उन नामोंका पृथक् उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं है। पाठक देखेंगे कि उसमें अनेक नाम बिल्कुल अपरिचित हैं और अनेक ऐसे हैं जिनके नाम तो प्रसिद्ध हैं; परन्तु रचनायें इस समय अनुपलब्ध हैं। इस दृष्टिसे यह टीका और भी बड़े महत्त्वकी है कि इससे राजनीति या सामान्यनीतिसम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थकारोंकी रचनाके सम्बन्धमें अनेक नई नई बातें मालूम होंगी।

संशोधकके आक्षेप।

इस ग्रन्थकी प्रेसकापी और प्रुफ संशोधनका काम श्रीयुत पं० पन्नालालजी सोनीने किया है। आपने केवल अपने उत्तरदायित्व पर, मेरी अनुपस्थितिमें, कई टिप्पणियाँ ऐसी लगा दी हैं जिनसे टीकाकारके और उसकी टीकाके विषयमें एक बड़ा भारी भ्रम फैल सकता है अतएव यहाँ पर यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उन टिप्पणियों पर भी एक नजर डाल ली जाय। सोनीजीकी टिप्पणियोंके आक्षेप दो प्रकारके हैं:—

१—टीकाकारने जो मनु, शुक्र और याज्ञवल्क्यके श्लोक उद्धृत किये हैं, वे मनुस्मृति, शुक्रनीति और याज्ञवल्क्यस्मृतिमें, नहीं है। यथा पृष्ठ १६५ की टिप्पणी—" श्लोकोऽयं मनुस्मृतौ तु नास्ति। टीकाकर्त्रा स्वदौष्ट्येन ग्रन्थकर्तृपराभवाभिप्रायेण बहवः श्लोकाः स्वयं विरचय्य तत्र तत्र स्थलेषु विनिवेशिताः।' अर्थात् यह श्लोक मनुस्मृतिमें तो नहीं है, टीकाकारने अपनी दुष्टतावश मूलकर्त्ताको नीचा दिखानेके अभिप्रायसे स्वयं ही बहुतसे श्लोक बनाकर जगह जगह घुसेड़ दिये हैं।

२—इस टीकाकारने–जो कि निश्चयपूर्वक अजैन है–बहुतसे सूत्र अपने मतके अनुसार स्वयं बनाकर जोड़ दिये हैं। यथा पृष्ठ ४९ की टिप्पणी–"अस्य ग्रन्थस्य कर्त्ता कश्चिदजैनविद्वानस्तीति निश्चितं। अतस्तेन स्वमतानुसारेण बहूनि सूत्राणि विरचय्य संयोजितानि। तानि च तत्र तत्र निवेदयिष्यामः।"

पहले आक्षेपके सम्बन्धमें हमारा निवेदन है कि सोनीजी वैदिक धर्मके साहित्य और उसके इतिहाससे सर्वथा अनभिज्ञ हैं; फिर भी उनके साहसकी प्रशंसा करनी चाहिए कि उन्होंने मनु या शुक्रके नामके किसी ग्रन्थके किसी एक संस्करणको देखकर ही अपनी अद्भुत राय दे डाली है। खेद है कि उन्हें एक प्राचीन विद्वानके विषयमें–केवल इतने कारणसे कि वह जैन नहीं है इतनी बड़ी एकतरफा डिक्री जारी कर देनेमें जरा भी झिझक नहीं हुई!

सोनीजीने सारी टीकामें मनुके नामके पाँच श्लोकोंपर, याज्ञवल्क्यके एक श्लोकपर, और शुक्रके दो श्लोकोंपर अपने नोट दिये हैं कि ये श्लोक उक्त आचार्योंके ग्रन्थोंमें नहीं हैं। सचमुच ही उपलब्ध मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति और शुक्रनीतिमें उद्धृत श्लोकोंका पता नहीं चलता। परन्तु जैसा कि सोनीजी समझते हैं, इसका कारण टीकाकारकी दुष्टता या मूलकर्ताको नीचा दिखानेकी प्रवृत्ति नहीं है।

सोनीजीको जानना चाहिए कि हिन्दुओंके धर्मशास्त्रोंमें समय समय पर बहुत कुछ परिवर्तन होते रहे हैं। अपने निर्माणसमयमें वे जिस रूपमें थे, इस समय उस रूपमें नहीं मिलते हैं। उनके संक्षिप्त संस्करण भी हुए हैं और प्राचीन ग्रन्थोंके नष्ट हो जानेसे उनके नामसे दूसरोंने भी उसी नामके ग्रन्थ बना दिये हैं। इसके सिवाय एक स्थानकी प्रतिके पाठोंसे दूसरे स्थानोंकी प्रतियोंके पाठ नहीं मिलते। इस विषयमें प्राचीन साहित्यके खोजियोंने बहुत कुछ छानबीन की है और इस विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डाला है। कौटिलीय अर्थशास्त्रकी भूमिकामें उसके सुप्रसिद्ध सम्पादक पं० आर. शामशास्त्री लिखते हैं:–

" अतश्च चाणक्यकालिकं धर्मशास्त्रमधुनातनायाज्ञवल्क्यधर्मशास्त्रादन्यदेवासीदिति प्रतिभाति। एवमेव ये पुनर्मानव–बार्हस्पत्यौशनसा भिन्नाभिप्रायास्तत्र तत्र कौटिल्येन परामृष्टाः न तेऽअधुनोपलभ्यमानेषु तत्तद्धर्मशास्त्रेषु दृश्यन्त इति कौटिल्यपरामृष्टानि तानि शास्त्राण्यन्यान्येवेति बाढं सुवचम्।"

अर्थात् इससे मालूम होता है कि चाणक्यके समयका याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र वर्तमान याज्ञवल्क्य शास्त्र (स्मृति) से कोई जुदा ही था। इसी तरह कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्रमें जगह जगह बार्हस्पत्य, औशनस आदिसे जो अपने भिन्न अभिप्राय प्रकट किये हैं वे अभिप्राय इस समय मिलनेवाले उन धर्मशास्त्रोंमें नहीं दिखलाई देते। अतएव यह अच्छी तरह सिद्ध होता है कि कौटिल्यने जिन शास्त्रोंका उल्लेख किया है, वे इनके सिवाय दूसरे ही थे।

स्वर्गीय बाबू रमेशचन्द्र दत्तने अपने 'प्राचीन सभ्यताके इतिहास' में लिखा है कि प्राचीन धर्मसूत्रोंको सुधार कर उत्तरकालमें स्मृतियाँ बनाई गई हैं—जैसे कि मनु और याज्ञवल्क्यकी स्मृतियाँ। जो धर्मसूत्र खोये गये हैं उनमें एक मनुका सूत्र भी है जिससे कि पीछेके समयमें मनुस्मृति बनाई गई है। ऽ

याज्ञवल्क्य स्मृतिके सुप्रसिद्ध टीकाकार विज्ञानेश्वर लिखते हैं:—" याज्ञवल्क्यशिष्यः कश्चन प्रश्नोत्तररूपं याज्ञवल्क्यप्रणीतं धर्मशास्त्रं संक्षिप्य कथयामास, यथा मनुप्रोक्तं भृगुः।' अर्थात् याज्ञवल्क्यके किसी शिष्यने याज्ञवल्क्यप्रणीत धर्मशास्त्रको संक्षिप्त करके कहा–जिस तरह कि भृगुने मनुप्रणीत धर्मशास्त्रको संक्षिप्त करके मनुस्मृति लिखी है। इससे मालूम होता है कि उक्त दोनों स्मृतियाँ, मनु और याज्ञवल्क्यके प्राचीन शास्त्रोंके उनके

ऽ रमेशबाबूने अपने इतिहासके चौथे भागमें इस समय मिलनेवाली पृथक् पृथक् बीसों स्मृतियों पर अपने विचार प्रकट किये हैं और उसमें बतलाया है कि अधिकांश स्मृतियाँ बहुत पीछेकी बनी हुई हैं और बहुतोंमें–जो प्राचीन भी हैं–बहुत पीछे तक नई नई बातें शामिल की जाती रही हैं।

शिष्यों या परम्पराशिष्यों द्वारा निर्मित किये हुए सार हैं और इस बातको तो सभी जानते हैं कि उपलब्ध मनुस्मृति भृगुप्रणीत हैं-स्वयं मनुप्रणीत नहीं।

बम्बईके गुजराती प्रेसके मालिकोंने कुल्लूकभट्टकी टीकाके सहित मनुस्मृतिका एक सुन्दर संस्करण प्रकाशित किया है। उसके परिशिष्टमें ३५५ श्लोक ऐसे दिये हैं जो वर्तमान मनुस्मृतिमें तो नहीं मिलते हैं; परन्तु हेमाद्रि, मिताक्षरा, पराशरमाधवीय, स्मृतिरत्नाकर, निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें मनु, वृद्धमनु और बृहन्मनुके नामसे 'उक्तंच' रूपमें उद्धृत किये हैं। इसके सिवाय सैकड़ों श्लोक क्षेपकरूपमें भी दिये हैं, जिनकी कुल्लूक भट्टने भी टीका नहीं की है।

हमारे जैनग्रन्थोंमें भी मनुके नामसे अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं जो इस मनुस्मृतिमें नहीं है। उदाहरणार्थ स्वनामधन्य पं० **टोडरमल्लजी**ने अपने **मोक्षमार्गप्रकाशके** पाँचवें अधिकारमें मनुस्मृतिके तीन श्लोक दिये हैं, जो वर्तमान मनुस्मृतिमें नहीं हैं ×। इसी तरह '**द्विजवदनचपेट**' नामक दिगम्बर जैनग्रन्थमें भी मनुके नामसे ७ श्लोक उद्धृत हैं जिनमेंसे वर्तमान मनुस्मृतिमें केवल २ मिलते हैं, शेष ५ नहीं हैं।*

शुक्रनीति जो इस समय मिलती है उसके विषयमें तो विद्वानोंकी यह राय है कि वह बहुत पीछेकी बनी हुई है— पाँच छः सौ वर्षसे पहलेकी तो वह किसी तरह हो ही नहीं सकती। शुक्रका प्राचीन ग्रन्थ इससे कोई पृथक् ही था +। कौटिलीय अर्थशास्त्रमें लिखा है कि शुक्रके मतसे दण्डनीति एक ही राजविद्या है, इसीमें सब विद्यायें गर्भित हैं; परन्तु वर्तमान शुक्रनीतिका कर्त्ता चारों विद्याओंको राजविद्या मानता है—'**विद्याश्चतस्र एवेताः**' आदि (अ० १ श्लो० ५१)। अतएव इस शुक्रनीतिको शुक्रकी मानना भ्रम है।

इन सब बातों पर विचार करनेसे हम टीकाकार पर यह दोष नहीं लगा सकते कि उसने स्वयं ही श्लोक गढ़कर मनु आदिके नाम पर मढ़ दिये हैं। हम यह नहीं कहते कि वर्तमान मनुस्मृति उक्त टीकाकारके बादकी है, इस लिए उस समय यह न उपलब्ध होगी। क्योंकि टीकाकारसे भी पहले मूलकर्त्ता श्रीसोमदेवसूरिने भी मनुके बीसों श्लोक उद्धृत किये हैं और वे वर्तमान मनुस्मृतिमें मिलते हैं; अतएव टीकाकारके समयमें भी यह मनुस्मृति अवश्य होगी; परन्तु इसकी जो प्रति उन्हें उपलब्ध होगी, उसमें टीकोद्धृत श्लोकोंका रहना असंभव नहीं माना जा सकता। यह भी संभव है कि किसी दूसरे ग्रन्थकर्त्ताने इन श्लोकोंको मनुके नामसे उद्धृत किया हो और उस ग्रन्थके आधारसे टीकाकारने भी उद्धृत कर लिया हो। जैसे कि अभी मोक्षमार्गप्रकाशके या द्विजवदनचपेटके आधारसे उनमें उद्धृत किये हुए मनुस्मृतिके श्लोकोंको, कोई नया लेखक अपने ग्रन्थमें भी लिख दे।

याज्ञवल्क्यस्मृतिके श्लोकके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। अब रही शुक्रनीति, सो उसकी प्राचीनतामें तो बहुत ही संदेह है। वह तो इस टीकाकारसे भी पीछेकी रचना जान पड़ती है। इसके सिवाय शुक्रके नामसे तो टीकाकारने दो चार नहीं १७० के लगभग श्लोक उद्धृत किये हैं। तो क्या टीकाकारने वे सबके सब ही मूलकर्त्ताको नीचा दिखानेकी गरजसे गढ़ लिये होंगे? और मूलकर्त्ता तो इसमें अपनी कोई तौहीन ही नहीं समझते हैं। उन्होंने तो अपने यशस्तिलकमें न जाने कितने विद्वानोंके वाक्य और पद्य जगह जगह उद्धृत करके अपने विषयका प्रतिपादन किया है।

सोनीजीका दूसरा आक्षेप यह है कि टीकाकारने स्वयं ही बहुतसे सूत्र (वाक्य) गढकर मूलमें शामिल कर दिये हैं। विद्यावृद्धसमुद्देशके, नीचे लीखे २१ वें, २३ वें और २५ वें सूत्रोंको आप टीकाकर्त्ताका बतलाते हैं:—

१—" वैवाहिकः शालीनो जायावरोऽघोरो गृहस्थाः ॥ " २१
२—बालखिल्य औदुम्बरी वैश्वानराः सद्यःप्रक्षल्यकश्चेति वानप्रस्थाः " ॥ २३

× देखो मोक्षमार्गप्रकाशका बम्बईका संस्करण, पृष्ठ० २०१।

* 'द्विजवदनचपेट' संस्कृत ग्रन्थ है, कोल्हापुरके श्रीयुत पं० कल्लाप्पा भरमाप्पा निटवेने 'जैनबोधक' में और स्वतंत्र पुस्तकाकार भी, अबसे कोई १२–१४ वर्ष पहले, मराठी टीकासहित प्रकाशित किया था।

× देखो गुजराती प्रेसकी शुक्रनीतिकी भूमिका।

३—"कुटीरकबह्वोदक-हंस-परमहंसा यतयः" ॥ २५

इसका कारण आपने यह बतलाया है कि मुद्रित पुस्तकमें और हस्तलिखित मूलपुस्तकमें ये सूत्र नहीं हैं। परन्तु इस कारणमें कोई तथ्य नहीं दिखलाई देता। क्योंकि—

१—जब तक दश पाँच हस्तलिखित प्रतियाँ प्रमाणमें पेश न की जासकें, तब तक यह नहीं माना जा सकता कि मुद्रित और मूलपुस्तकमें जो पाठ नहीं हैं वे मूलकर्त्ताके नहीं हैं—ऊपरसे जोड़ दिये गये हैं। इस तरहके हीन अधिक पाठ जुदी जुदी प्रतियोंमें अकसर मिलते हैं।

२—मूलकर्त्ताने पहले वर्णोंके भेद बतलाकर फिर आश्रमोंके भेद बतलाये हैं—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति। फिर ब्रह्मचारियोंके उपकुर्वाण, नैष्ठिक, और कृतुप्रद ये तीन भेद बतलाकर उनके लक्षण दिये हैं। इसके आगे गृहस्थ, वानप्रस्थ और यतियोंके लक्षण क्रमसे दिये हैं; तब यह स्वाभाविक और क्रमप्राप्त है कि ब्रह्मचारियोंके समान गृहस्थों, वानप्रस्थों और यतियोंके भी भेद बतलाये जाँय और वे ही उक्त तीन सूत्रोंमें बतलाये गये हैं। तब यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रकरणके अनुसार उक्त तीनों सूत्र अवश्य रहने चाहिए और मूलकर्त्ताने ही उन्हें रचा होगा। जिन प्रतियोंमें उक्त सूत्र नहीं हैं; उनमें उन्हें भूलसे ही छूटे हुए समझना चाहिए।

३—यदि इस कारणसे ये मूलकर्त्ताके नहीं हैं कि इनमें बतलाये हुए भेद जैनमतसम्मत नहीं हैं, तो हमारा प्रश्न है कि उपकुर्वाण, कृतुप्रद आदि ब्रह्मचारियोंके भेद भी किसी जैनग्रन्थमें नहीं लिखे हैं, तब उनके सम्बन्धके जितने सूत्र हैं, उन्हें भी मूलकर्त्ताके नहीं मानने चाहिए। यदि सूत्रोंके मूलकर्त्ताकृत होनेकी यही कसौटी सोनीजी ठहरा देवें, तब तो इस ग्रन्थका आधेसे भी अधिक भाग टीकाकारकृत ठहर जायगा। क्योंकि इसमें सैकड़ों ही सूत्र ऐसे हैं जिनका जैनधर्मके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है और कोई भी विद्वान् उन्हें जैनसम्मत सिद्ध नहीं कर सकता।

४—जिसतरह टीकापुस्तकमें अनेक सूत्र अधिक हैं और जिन्हें सोनीजी टीकाकर्त्ताकी गढ़न्त समझते हैं, उसी प्रकार मुद्रित और मूलपुस्तकमें भी कुछ सूत्र अधिक हैं (जो टीकापुस्तकमें नहीं हैं), तब उन्हें किसकी गढ़न्त समझनी चाहिए? विद्यावृद्धसमुद्देशके ५९ वें सूत्रके आगे निम्नलिखित पाठ छूटा हुआ है जो मुद्रित और मूलपुस्तकमें मौजूद है:—

"सांख्यं योगो लोकायतं चान्वीक्षिकी। बौद्धार्हतोः श्रुतेः प्रतिपक्षत्वात् (नान्वीक्षिकीत्वं), प्रकृतिपुरुषज्ञो हि राजा सत्त्वमवलम्बते। रजः फलं चाफलं च परिहरति, तमोभिर्नाभिभूयते।"

भला इन सूत्रोंको टीकाकारने क्यों छोड़ दिया? इसमें कही हुई बातें तो उसके प्रतिकूल नहीं थीं? और मुद्रित तथा मूलपुस्तक दोनों ही यदि जैनोंके लिए विशेष प्रामाणिक मानी जावें तो उनमें यह अधिक पाठ नहीं होना चाहिए था। क्योंकि इसमें वेदविरोधी होनेके कारण जैन और बौद्धदर्शनको आन्वीक्षिकीसे बाहर कर दिया है। और मुद्रित पुस्तकमें तो मूलकर्त्ताके मंगलाचरण तकका अभाव है। वास्तविक बात यह है कि न इसमें टीकाकारका दोष है और न मुद्रित करानेवालेका। जिसे जैसी प्रति मिली है उसने उसीके अनुसार टीका लिखी है और पाठ छपाया है। एक प्रतिसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी इस तरह प्रतियाँ होते होते लेखकोंके प्रमादसे अकसर पाठ छूट जाते हैं और टिप्पण आदि मूलमें शामिल हो जाते हैं।

हम समझते हैं कि इन बातोंसे पाठकोंका यह भ्रम दूर हो जायगा कि टीकाकारने कुछ सूत्र स्वयं रचकर मूलमें जोड़ दिये हैं। यह केवल सोनीजीके मस्तककी उपज है और निस्सार है। खेद है कि हमें उनकी भ्रमपूर्ण टिप्पणियोंके कारण भूमिकाका इतना अधिक स्थान रोकना पड़ा।

एक विचारणीय प्रश्न।

इस आशासे अधिक बढ़ी हुई भूमिकाको समाप्त करनेके पहले हम अपने पाठकोंका ध्यान इस ओर विशेषरूपसे आकर्षित करना चाहते हैं कि वे इस ग्रन्थका जरा गहराईके साथ अध्ययन करें और देखें कि इसका जैनधर्मके साथ क्या सम्बन्ध है। हमारी समझमें तो इसका जैनधर्मसे बहुत ही कम मेल खाता है। राजनीति यदि धर्मनिरपेक्ष है, अर्थात् वह किसी विशेष धर्मका पक्ष नहीं करती, तो फिर इसका जिस प्रकार जैनधर्मसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है

उसी प्रकार और धर्मोंसे भी नहीं रहना चाहिए था। परंतु हम देखते हैं कि इसका वर्णाचार और आश्रमाचारकी व्यवस्थाके लिए वैदिक साहित्यकी ओर बहुत अधिक झुकाव है। इस ग्रन्थके विद्यावृद्ध, आन्वीक्षिकी और त्रयी समुद्देशोंको अच्छी तरह पढ़नेसे पाठक हमारे अभिप्रायको अच्छी तरह समझ जावेंगे। जैनधर्मके मर्मज्ञ विद्वानोंको चाहिए कि वे इस प्रश्नका विचारपूर्वक समाधान करें कि एक जैनाचार्यकी कृतिमें आन्वीक्षिकी और त्रयीको इतनी अधिक प्रधानता क्यों दी गई है।

यशस्तिलकके नीचे लिखे पद्योंको भी इस प्रश्नका उत्तर सोचते समय सामने रख लेना चाहिए:—

द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः।
लोकाश्रयो भवेदाद्यः परस्यादागमाश्रयः॥
जातयोऽनादयः सर्वास्तत्क्रियापि तथाविधा।
श्रुतिः शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं कात्र न क्षतिः॥
स्वजात्यैव विशुद्धानां वर्णानामिह रत्नवत्।
तत्क्रियाविनियोगाय जैनागमविधिः परम्॥
यद्भवभ्रान्तिनिर्मुक्तिहेतुधीस्तत्र दुर्लभा।
संसारव्यवहारे तु स्वतःसिद्धे वृथागमः॥
तथा च— सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्॥

कहीं श्रीसोमदेवसूरि वर्णाश्रमव्यवस्था और तत्सम्बन्धी वैदिक साहित्यको लौकिक धर्म तो नहीं समझते हैं? और इसी लिए तो यह नहीं कहते हैं कि यदि इस विषय में श्रुति (वेद) और शास्त्रान्तर (स्मृतियाँ) प्रमाण माने जावें तो हमारी क्या हानि है? राजनीति भी तो लौकिक शास्त्र ही है।

हमको आशा है कि विद्वज्जन इस प्रश्नको ऐसा ही न पड़ा रहने देंगे।

मुद्रण-परिचय।

अबसे कोई २५ वर्ष पहले बम्बईकी मेसर्स गोपाल नारायण कम्पनीने इस ग्रन्थको एक संक्षिप्त व्याख्याके साथ प्रकाशित किया था और लगभग उसी समय विद्याविलासी बड़ोदानरेशने इसके मराठी और गुजराती अनुवाद प्रकाशित कराये थे। उक्त तीनों संस्करणोंको देखकर—जिन दिनों मैं स्वर्गीय स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजीकी अधीनतामें जैनमित्रका सम्पादन करता था—मेरी इच्छा इसका हिन्दी अनुवाद करनेकी हुई और तदनुसार मैंने इसके कई समुद्देशोंका अनुवाद जैनमित्रमें प्रकाशित भी किया; परन्तु इसके आन्वीक्षिकी और त्रयी आदि समुद्देशोंका जैनधर्मके साथ कोई सामञ्जस्य न कर सकनेके कारण मैं अनुवादकार्यको अधूरा ही छोड़ कर इसकी संस्कृत टीकाकी खोज करने लगा।

तबसे, इतने दिनोंके बाद, यह टीका प्राप्त हुई और अब यह माणिकचन्द्रग्रन्थमालाके द्वारा प्रकाशित की जा रही है। खेद है कि इसके मध्यके २५–२६ पत्र गायब हैं और वे खोज करनेपर भी नहीं मिले। इसके सिवाय इसकी कोई दूसरी प्रति भी न मिल सकी और इस कारण इसका संशोधन जैसा चाहिए वैसा न कराया जा सका। दृष्टिदोष और अनवधानतासे भी बहुतसी अशुद्धियाँ रह गई हैं। फिर भी हमें आशा है कि मूलग्रन्थके समझनेमें इस टीकासे काफी सहायता मिलेगी और इस दृष्टिसे इस अपूर्ण और अशुद्धरूपमें भी इसका प्रकाशित करना सार्थक होगा।

हस्तलिखित प्रतिका इतिहास।

पहले जैनसमाजमें शास्त्रदान करनेकी प्रथा विशेषतासे प्रचलित थी। अनेक धनी मानी गृहस्थ ग्रन्थ लिखा लिखाकर जैनसाधुओं और विद्वानोंको दान किया करते थे और इस पुण्यकृत्यसे अपने ज्ञानावरणीय कर्मका निवारण करते थे। बहुतोंने तो इस कार्यके लिए लेखनशालायें ही खोल रक्खी थीं जिनमें निरन्तर प्राचीन अर्वाचीन ग्रन्थोंकी प्रतियाँ होती रहती थीं। यही कारण है जो उस समय मुद्रणकला न रहने पर भी ग्रन्थोंका यथेष्ट प्रचार रहता था और ज्ञानका प्रकाश मन्द नहीं होने पाता था। स्त्रियोंका इस ओर और भी अधिक लक्ष्य था। हमने ऐसे पचासों हस्तलिखित ग्रन्थ देखे हैं जो धर्मप्राणा स्त्रियोंके द्वारा ही दान किये गये हैं।

इस शास्त्रदान प्रथाको उत्तेजित करनेके लिए उस समयके विद्वान् प्रायः प्रत्येक दान किये हुए ग्रन्थके अन्तमें दाताकी प्रशस्ति लिख दिया करते थे जिसमें उसका और उसके कुटुम्बका गुणकीर्तन रहा करता था। हमारे प्राचीन पुस्तक-भंडारोंके ग्रन्थोंमेंसे इस तरहकी हजारों प्रशस्तियाँ संग्रह की जा सकती हैं जिनसे इतिहास-सम्पादनके कार्यमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

नीतिवाक्यामृतटीकाकी वह प्रति भी जिसके आधारसे यह ग्रन्थ मुद्रित हुआ है इसी प्रकार एक धनी गृहस्थकी धर्मप्राणा स्त्रीके द्वारा दान की गई थी। ग्रन्थके अन्तमें जो प्रशस्ति दी हुई है, उससे मालूम होता है कि कार्तिक सुदी ५ विक्रमसंवत् १५४१ को, हिसार नगरके चन्द्रप्रभचैत्यालयमें, सुलतान बहलोल (लोदी) के राज्यकालमें, यह प्रति दान की गई थी।

नागपुर या नागौरके रहनेवाले खण्डेलवालवंशीय क्षेत्रपालगोत्रीय संघपति कामाकी भार्या साध्वी **कमलश्रीने** हिसार निवासी पं० मेहा या मीहाको इसे भक्तिभावपूर्वक भेट किया था।

कल्हू नामक संघपतिकी भार्याका नाम **राणी** था। उसके चार पुत्र थे—**हंवा, धीरा, कामा** और **सुरपति**। इनमेंसे तीसरे पुत्र संघपति कामाकी भार्या उक्त साध्वी कमलश्री थी जिसने ग्रन्थ दान किया था। कमलश्रीसे **भीवा** और **बच्छूक** नामके दो पुत्र थे। इनमेंसे भीवाकी भार्या **भिउंसिरिके गुरुदास** नामक पुत्र था जिसकी **गुणश्री** भार्याके गर्भसे **रणमल्ल** और **जट्ट** नामके दो पुत्र थे। दूसरे बच्छूककी भार्या **चउसिरिके रावणदास** पुत्र था जिसकी स्त्रीका नाम **सरस्वती** था। पाठक देखें कि यह परिवार कितना बड़ा और कितना दीर्घजीवी था। कमलश्रीके सामने उसके प्रपौत्र तक मौजूद थे।

पण्डित मेहा या मीहाका दूसरा नाम पं० मेधावी था। ये वही मेधावी हैं जिन्होंने **धर्मसंग्रहश्रावकाचार** नामका ग्रन्थ बनाया है और जो मुद्रित हो चुका है। पं० मीहा अपनी गुरुपरम्पराके विषयमें कहते हैं कि नन्दिसंघ, बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छके भट्टारक **पद्मनन्दिके** शिष्य भ० **शुभचन्द्र** और उनके शिष्य भ० **जिनचन्द्र** मेरे गुरु थे। जिनचन्द्रके दो शिष्य और थे—एक रत्ननन्दि और दूसरे विमलकीर्ति।

यह पुस्तकदाताकी प्रशस्ति पं० मेधावीकी ही लिखी हुई मालूम होती है। उन्होंने **त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति**, मूलाचारकी **वसुनन्दिवृत्ति** आदि ग्रन्थोंमें और भी कई बड़ी बड़ी प्रशस्तियाँ लिखी हैं। वसुनन्दि वृत्तिकी प्रशस्ति वि० सं० १५१६ की और त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति की १५१९ की लिखी हुई है *। धर्मसंग्रहश्रावकाचार उन्होंने कार्तिक वदी १३ सं० १५४१ को समाप्त किया है। नीतिवाक्यामृतटीकाकी यह प्रशस्ति धर्मसंग्रहके समाप्त होनेके कोई आठ दिन बाद ही लिखी गई है।

धर्मसंग्रहमें पं० मेधावीने अपने पिताका नाम **उद्धरण**, माताका **भीषुही** और पुत्रका **जिनदास** लिखा है। वे अग्रवाल जातिके थे और अपने समयके एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। उन्होंने दक्षिणके पुस्तकगच्छके आचार्य **श्रुतमुनिसे** अन्य कई विद्वानोंके साथ **अष्टसहस्री** (विद्यानन्दस्वामीकृत) पढी थी। जान पड़ता है कि उस समय हिसारमें जैन विद्वानोंका अच्छा समूह था। भट्टारकोंकी गद्दी भी शायद वहीं पर थी।

यह टीकापुस्तक हिसारसे आमेरके पुस्तक भंडारमें कब और कैसे पहुँची, इसका कोई पता नहीं है। आमेरके भंडारमेंसे सं० १९६४ में भट्टारक महेन्द्रकीर्ति द्वारा यह बाहर निकाली गई और उसके बाद जयपुर निवासी पं० इन्द्रलालजी शास्त्रीके प्रयत्नसे हमको इसकी प्राप्ति हुई। इसके लिए हम भट्टारकजी और शास्त्रीजी दोनोंके कृतज्ञ हैं।

इस प्रतिमें १३३ पत्र हैं और प्रत्येक पृष्ठमें प्रायः २० पंक्तियाँ हैं। प्रत्येक पत्रकी लम्बाई ११॥ इंच और चौड़ाई ५॥ इंचसे कुछ कम है। ५१ से ७५ तकके पृष्ठ मौजुद नहीं हैं।

बम्बई। पौषशुक्ला तृतीया १९७९ वि०।	निवेदक— **नाथूराम प्रेमी।**

---

* देखो जैनहितैषी भाग १५, अंक ३–४।

[नोटः—' भारतीय वाङ्मय ' का जर्मन भाषामें विस्तृत और परिपूर्ण इतिहास लिखनेवाले प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ० विण्टरनित्स्, जो वर्तमानमें बङ्गीय साहित्य सम्राट् कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर संस्थापित शांतिनिकेतनकी विश्व-भारती संस्थाको अपने ज्ञानका दान कर रहे हैं; उनके पास ' नीतिवाक्यामृत ' की १ प्रति अभिप्रायार्थ भेट की गई थी। इस भेटके स्वीकाररूपमें डॉ० महाशयने ग्रन्थमालाके मंत्री और इस प्रस्तावनाके लेखक श्रीयुत प्रेमीजीके पास जो एक पत्र भेजा है वह यहांपर मुद्रित किया जाता है। इससे, सोमदेवसूरिके नीतिवाक्यामृतके बारेमें डॉ० महाशयका कैसा अभिप्राय है वह थोडेमें ज्ञात हो जाता है। इस ग्रन्थके बारेमें, जैसा कि डॉ० महाशयने अपने इस पत्रमें सूचित किया है, विशेष उल्लेख, उन्होंने अपने भारतीय वाङ्मयके इतिहासके तीसरे भाग, (जो हालहींमें प्रकाशित हुआ है) पृ० ५०२७-५३० में किया है। —संपादक।

(Santiniketana, Birbbum, Bengal)
Srinagar (Kashmir) 25-4-23.

To Nathurama Premi, Mantri,
Manikachanda-Jaina Granthamala,
Bombay.

Dear Sir,

I beg to acknowledge the receipt of one copy of Nitivakyamritam Satikam, published in the Jaina Granthamala. As I have pointed out in the third volume of my 'History of Indian Literature,' the work is of the greatest importance both on account of its contents and especially as the date of its author is well known. Though quoting largely from the Kautilya Arthasastra, Somadeva is yet quite on original writer and treats his subject from a different point of view. The late Jainacharya Vijaya Dharma Suri had lent me a copy of the old edition of the book which is very rare. I often urged upon him the necessity of a new edition of this important work. I am very glad that the work is now accessible in such a handy and excelent edition, and I am very much obliged to you for sending me a copy.

It is a pity that the introduction is not in English or in Sanskrit, as few Europeans read the Vernacular.

Yours truly,
M. WINTERNITZ.

(शान्तिनिकेतन, वीरभूम बंगाल)
श्रीनगर (काश्मीर) ता. २५-४-२३

नाथूराम प्रेमी, मंत्री
माणिकचन्द्र जैन ग्रंथमाला मुंबई.

प्रिय महाशय,

आपकी जैन ग्रंथमालामें प्रकाशितक सटीक नीतिवाक्यामृतकी पुस्तक मुझे मिली। जैसा कि मैंने अपने ' भारतीय वाङ्मयका इतिहास ' नामक ग्रन्थके तीसरे भागमें लिखा है, यह ग्रन्थ, अन्दरके विषय और इसके कर्ताके समयकी दृष्टिसे बहुत महत्वका है। यद्यपि कौटिल्यके ग्रन्थका इसमें अनुसरण किया गया है तथापि सोमदेवसूरि स्वतंत्र लेखक हो कर विषय प्रतिपादनकी शैली उनकी निराली ही है। जैनाचार्य विजयधर्मसूरिने इस ग्रन्थकी अत्यंत दुर्लभ्य ऐसी एक प्रति मुझे दी थी और इस महत्त्वके ग्रन्थकी दूसरी आवृत्ति प्रकट करनी चाहिए ऐसा मैंने आग्रह भी उनसे किया था। अब इस ग्रन्थकी सुन्दर आकारमें उत्तम रीतीसे प्रकट की हुई इस आवृत्तिको देख कर मुझे आनंद होता है और आपने जो इसकी एक प्रति मुझे भेजी इस लिए मैं आपका बहुत ही उपकृत हूं।

इसकी प्रस्तावना इंग्रेजी या संस्कृतमें नहीं लिखी गई इस लिए मुझे खेद होता है, क्यों कि देशभाषा जानने वाला युरपियन क्वचित् ही होता है।

आपका,
एम्. विंटरनित्स्

कीर ग्रामनो जैन शिलालेख.

[पंजाब प्रांतना कांगडा जिल्लामां कीरग्राम करीने एक स्थान छे अने त्यां शिव-वैद्यनाथनुं प्राचीन अने प्रख्यात धाम छे. ए वैद्यनाथना मंदिरमां कोई जैन प्रतिमानुं पाषाणनुं सिंहासन क्यांएथी आवी गएलुं छे जेना उपर नीचे आपेलो लेख कोतरेलो छे. ए लेख एपिग्राफिआ इंडिकाना, १ ला भागना, ११८ पान उपर डॉ० जी. बुल्हरे संक्षिप्त विवेचन साथे प्रकट करेलो छे. ए विवेचन अने लेख आ प्रमाणे छे.— संपादक]

नीचे आपेलो लेख कांगडानां कीरग्राममां आवेला शिव-वैद्यनाथना देवालयमांथी मळी आवेलो छे. ए लेख जैन नागरी अक्षरोमां बे लीटिओमां लखेलो छे. आ लीटिओ महावीरनी प्रतिमानी बेठकनी त्रण बाजुए चार मोटा अने बे नाना भागमां व्हेंचाएली छे. लेख लगभग सारी स्थितिमां छे. एमां दोल्हण अने आल्हण नामना बे व्यापारिओए आ प्रतिमा बनाव्या विषे तथा देवभद्रसूरिए एनी प्रतिष्ठा कर्या विषे उल्लेख करेलो छे. वळी कीरग्राममां आ बंने भाईओए महावीरनुं एक मंदिर बंधाव्यानी नोंध पण एमां करेली छे. वर्तमानमां, कीरग्राममां कोई पण जूना जैन मंदिरनी हयाती जणाती नथी तेथी एम लागे छे के ए मंदिर नष्ट थई गयुं छे अने आ बेसणी कोईए त्यांथी उपाडी लावी शिवना देवालयमां मूकी दीधी छे. ए देवालयना अधिकारिओनी अजाणताने लीधे आ लेख सही सलामत रहेवा पाम्यो होय एम लागे छे.

मूर्ति अने मंदिर बनावनारा गुजराती होवा जोईए; पंजाबी नहीं. प्रतिष्ठा करनार सूरि पण गुजरातना हता. कारण के दोल्हण अने आल्हण ब्रह्मक्षत्र गोत्र अगर ज्ञातिना हता के जे ज्ञाति गुजरातमां वधारे छे. १८८१ ना सेन्सस रीपोर्ट प्रमाणे पंजाबमां ते ज्ञाति जणाती नथी. सूरी देवभद्रनो गुजरात साथे संबंध तेमना गुरु अभयदेवना लीधे छे. आ अभयदेवने 'रुद्रपल्लीय' कहेवामां आवे छे; अने ते जिनवल्लभ सूरिनी शिष्यसंततिमांना हता. आ जिनवल्लभ ते खरतर गच्छनी पट्टावलीमां कहेला जे ४३ मां पट्टधर अने युगप्रधान पदधारी छे ते ज छे.[2] तेओ एक नवो संप्रदाय जेने अहीं 'संतान,' ना विशेषणथी उल्लेखेलो छे ते चलाव्या पछी वि. सं. ११६७ मां स्वर्गस्थ थया हता. तेमना पछी थएला आचार्य जिनदत्तना वखतमां खरतर गच्छनी रुद्रपल्लीय शाखानी स्थापना जिनशेखराचार्ये वि. सं. १२०४ मां करी हती. तेथी आ लेखमां जणावेला देवभद्रसूरि श्वेतांबर मतना खरतर गच्छनी एक शाखाना हता. जूनी परंपरा प्रमाणे खरतर गच्छनी स्थापना गुजरातना अणहिलवाड पाटणमां थई हती. लेखनी मिति 'संवत एटले वि. सं. १२९६ फाल्गुण वदि ५; रविवार' ते डॉक्टर स्क्रेम (Dr. Schram) नी गणना प्रमाणे ई. स. १२४० नी १५ जान्यूआरी बराबर थाय छे. जनरल सर कनिंगहाम जेणे आ लेख प्रथम शोधी काढ्यो हतो तेमणे पोताना आर्किओलॉजिकल रीपोर्टस् (पु. ५ पान १८३) मां ए लेखनी जे नकल आपी छे, ते अधूरी छे. कारण के तेमां 'क्षेत्रगोत्रो' थी 'पुत्राभ्यां' अने 'प्रति-

[1] अहीं आपेली लेखनी नकल पंजाब आर्किआलॉजिकल व्हर्से तरफथी मळेली एक सारी छाप उपरथी पाडेली छे.

[2] जुओ-क्लॅट (klata) ई. ऐं, पु. ११, पा० २४८ अने ३५४.

ष्ठितं ' थी ' संतानीय ' सूधीनी बे लीटिओ मूकी दीधेली छे. आने लीधे तेम ज केटलाक खोटा-पाठोने लीधे तेमनी नकल उपरथी भाषांतर करवुं केवळ अशक्य छे[3].

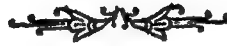
मू ळ ले ख

१. ओ० संवत् १२९६ वर्षे फाल्गुण वदि ५ रवौ कीरग्रामे ब्रह्मक्षत्र गोत्रोत्पन्न व्यव० मानू पुत्राभ्यां व्य० दोल्हण आल्हणाभ्यां स्वकारित श्रीमन्महावीर देव चैत्ये ॥

२. श्रीमहावीर जिन मूल बिंबं आत्मश्रेयो [र्थं] कारितं । प्रतिष्ठितं च श्रीजिनवल्लभ सूरि-संतानीय रुद्रपल्लीय श्रीमदभयदेवसूरि शिष्यैः श्रीदेवभद्र सूरिभिः ॥[4]

भा षां त र

ॐ. (लौकिक)[5] वर्ष १२९६ ना फाल्गुण[6] वदि पंचमीने [दिवसे]—कीरग्राममां ब्रह्मक्षत्र ज्ञातिना व्यापारी मानूना बे पुत्रो व्यापारी दोल्हण अने आल्हणे पोते बंधावेला श्रीमन्महावीर देवना मन्दिरमां श्री महावीर जिननी मुख्य प्रतिमा,[7] पोताना कल्याणमाटे करावी. तेनी प्रतिष्ठा श्रीजिनवल्लभ सूरिना ' संतानीय ' रुद्रपल्लीय श्रीमत्सूरि अभयदेवना शिष्य श्रीसूरि देवभद्रे करी[8].



३. जनरल कनिंगहाम कहे छे के शिववैद्यनाथना देवालयना इतिहास साथे आ लेखनो कांई संबंध नथी.

४. पंक्ति १ ली—ओं वांचवुं; कीरग्रामे ना र तथा ग्र जोडेला छे ते भूल छे; ब्रह्म वांचवुं; ह्म नी उपर एक भूलथी करेल मात्र काढी नाखेल छे; कदाच 'मातृपुत्राभ्यां' खरो पाठ होय. कारण के त तथा न ओळखाय तेवा नथी. [पण ते बराबर नथी; ' मानू ' शब्द ज बराबर छे. कारण के तेनी पहेलां व्य०=व्यवहारी शब्द पडेलो छे जे मातृपुत्रा० पाठ लेतां निरर्थक अने असंबद्ध थई जाय छे–संपादक.]

५. पंक्ति २ जी–श्रेयोर्थं नो थ जतो रह्यो छे; संतानीय नो ता स्पष्ट नथी.

६. वर्षेनुं भाषांतर लौकिक वर्षे करूं छुं, कारण के विक्रम संवत् पछी वर्षेने बदले घणीवार लौकिक वर्ष वापरवामां आवे छे. पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम हिंदुस्थानमां विक्रम संवत्नां वर्षोने लौकिक वर्षो कहे छे. अने शक संवत्ने शास्त्रीय वर्षो कहे छे. कारण के ते ज्योतिष विगेरे विषयोमां आवे छे.

७. लेखमां जे फागुण लख्युं छे ते अर्धं प्राकृत अने अर्धं संस्कृत रूप छे.

८. मूल बिंब शब्दने भाषांतर कर्या शिवाय ज हुं रहेवा दउं छुं. तेनो खास अर्थ शो छे तेनी खबर नथी. हुं धारूं छुं के बीजी नानी मोटी प्रतिमाओथी तेने खास ओळखावा माटे तेनुं नाम आवुं पाड्युं हशे. एनो अर्थ कदाच ' मुख्य प्रतिमा ' थई शके. [ए ज अर्थ थाय छे. सं०]

९. प्रतिष्ठितं च ए संस्कृतना नियम प्रमाणे शुद्ध नथी. पण जैन पुस्तकोमां ए घणा ठेकाणे जोवामां आवे छे. खरी रीते प्रतिष्ठापितं च अगर प्रतिष्ठा कृता च एवो पाठ जोईए.

महाकवि पुष्पदन्त और उनका महापुराण।

[अपभ्रंश भाषा का एक महाकवि और महान् ग्रन्थ।]

(लेखक—श्रीयुत पं. नाथूरामजी प्रेमी।)

भारत में अनेक शताब्दियों तक जो आर्य भाषायें प्रचलित रही हैं, वे सब प्राकृत कहलाती हैं। प्राकृत शब्द का अर्थ है स्वाभाविक—कृत्रिमता के दोष से रहित और संस्कृत का अर्थ है संस्कार की हुई मार्जित भाषा। वैदिक सूक्त जिस सरल और प्रचलित भाषा में लिखे गये थे, उस भाषा को प्राकृत ही कहना चाहिए। इस आदि प्राकृत भाषा से जिन सब आर्य भाषाओं का विकास हुआ है, उनकी गणना दूसरी श्रेणी की प्राकृत में होती है। यह द्वितीय श्रेणी की प्राकृत अशोक के शिलालेखों में मिलती है। बौद्धशास्त्रों की प्रधान भाषा पाली भी इसी दूसरी श्रेणी की प्राकृतों में से है। इस समय प्राकृत कहने से पाली की अपेक्षा उन्नत भाषा का बोध होता है।

अशोक के समय की आर्य भाषा की दो प्रधान शाखायें थीं, एक पश्चिमी प्राकृत और दूसरी पूर्वीय प्राकृत। पश्चिमी प्राकृत को सौरसेनी या सूरसेन (मथुरा) की भाषा कहते थे और पूर्वीय को मागधी या मगध की भाषा। इन दोनों पूर्वीय और पश्चिमी भाषाओं के बीचों बीच एक और भाषा बोली जाती थी जो अर्ध मागधी के नाम से प्रसिद्ध थी। कहा जाता है कि भगवान् महावीर ने इसी भाषा के द्वारा अपने सिद्धांतों का प्रचार किया था। प्राचीन जैन ग्रन्थ इसी भाषा में लिखे गये थे। प्राचीन मराठी के साथ इस भाषा का बहुत ही निकट सम्बन्ध है। प्राचीन प्राकृत काव्य इसी प्राचीन मराठी में लिखे गये हैं।

उक्त दूसरी श्रेणी की प्राकृत भाषाओं के बाद की भाषा अपभ्रंश कहलाती है। जो दूसरी श्रेणी की प्राकृत का पिछला और विशेष विकसित रूप है। यों अपभ्रंश का साधारण अर्थ दूषित या विकृत होता है; परन्तु भाषा के सम्बन्ध में प्रयुक्त होने पर इस का अर्थ उन्नत या विकसित होता है। वर्तमान प्रचलित आर्य भाषायें जिन भाषाओं से निकली हैं, उनकी गणना अपभ्रंश में होती है। इन अपभ्रंश भाषाओं में भी एक समय अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गये थे जिनमें से बहुत से इस समय भी मिलते हैं। जान पड़ता है, इन भाषाओं का साहित्य बहुत प्रौढ़ हो गया था और सर्वसाधारण में बहुत ही आदर की दृष्टि से देखा जाता था। इस साहित्य में हम उस समय की बोलचाल की भाषाओं की अस्पष्ट छाया पा सकते हैं। विक्रम की सातवीं शताब्दि तक के अपभ्रंश साहित्य का पता लगा है। इसके बाद जान पड़ता है कि इस भाषा का प्रचार नहीं रहा। अपभ्रंश के पहले की प्राकृत भाषाओं का प्रचार दसवीं शताब्दि के बाद नहीं रहा।

उक्त अपभ्रंश भाषाओं की गणना दूसरी श्रेणी की ही प्राकृत में की जाती है। उनके बाद आधुनिक भाषाओं का काल आता है जिन्हें हम तीसरी श्रेणी की प्राकृत में गिनते हैं। इन भाषाओं का निदर्शन हम तेरहवीं शताब्दि के लगभग पाते हैं। अतएव मोटे हिसाब से कहा जा सकता है कि दशवीं शताब्दि से आधुनिक आर्य भाषाओं का प्रचलन आरम्भ हुआ है और अपभ्रंश से ही इन सब का विकास हुआ है। संक्षेप में प्राकृत भाषाओं का यही इतिहास है।

इस लेख में हम जिस महाकवि का परिचय देना चाहते हैं, उसकी रचना इन्हीं अपभ्रंश भाषाओं में की एक भाषा में हुई है जिसे हम दक्षिण महाराष्ट्र की अपभ्रंश कह सकते हैं। दक्षिण की होने पर भी पाठक देखेंगे कि इसकी प्रकृति हमारी हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी भाषाओं से कितनी मिलती जुलती हुई है।

हमें पुष्पदन्त से भी पहले के अपभ्रंश साहित्य के कुछ ग्रन्थ मिले हैं जिन का परिचय हम आगे के किसी अंक में देना चाहते हैं।

महाकवि पुष्पदन्त कहां के रहनेवाले थे, इसका पता नहीं लगता। उनके ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है उसके अनुसार हम उन्हें सब से पहले मेलाड़ि नगर में जो संभवतः मान्यखेट का ही दूसरा नाम है, पाते हैं। वहां वे पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए आ पहुंचते हैं और वहीं से उनके कवि-जीवन का प्रारम्भ होता है।

वे काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम केशव और माता का मुग्धादेवी था। एक जगह उन्होंने अपने पिता का नाम कन्हड़ लिखा है* जो केशव के ही पर्यायवाची शब्द कृष्ण का अपभ्रंश रूप है। 'खण्ड' यह शायद उनका प्रचलित नाम था जो उनके ग्रन्थों में जगह २ व्यवहृत हुआ है। अभिमानमेरु, काव्यरत्नाकर, कव्वपिसल्ल (काव्यपिशाच) या काव्यराक्षस, कविकुलतिलक, सरस्वतीनिलय आदि उनके उपनाम थे।

वे शरीर से कृश थे, कृष्णवर्ण थे, कुरूप थे परन्तु सदा प्रसन्नमुख रहते थे। उन्होंने आपको स्त्रीपुत्र हीन लिखा है; परन्तु संभव है यह उस समय की ही अवस्था का द्योतक हो जब वे मान्यखेटपुर में थे और अपने (उपलब्ध) ग्रन्थों की रचना कर रहे थे। इसके पहले जहां के वे रहनेवाले थे वहां शायद वे गृहस्थ रहे हों और विवाह आदि भी हुआ हो। यद्यपि अपने ग्रन्थों में उन्होंने अपना बहुत कुछ परिचय दिया है; परन्तु उससे यह नहीं मालूम होता है कि मान्यखेट में आने के पहले उनकी क्या अवस्था थी और न यही स्पष्ट होता है कि वास्तव में उन्होंने अपनी जन्मभूमि क्यों छोड़ी थी। केवल यही मालूम होता है कि दुष्टों ने उनको अपमानित किया था और उन्हीं से संत्रस्त होकर वे भटकते भटकते बड़े ही दुर्गम और लम्बे रास्ते को तय करके मान्यखेट तक आये थे। उनके हृदय पर कोई बड़ी ही गहरी ठेस लगी थी और इस से उन्हें सारी पृथ्वी दुर्जनों से ही भरी हुई दिखलाई देती थी। लोगों की इस दुर्जनता का और संसार की नीरसता का उन्होंने अपने ग्रन्थों की उत्थानिकाओं में बार बार और बहुत अधिक वर्णन किया है। अपने समय को भी उन्होंने खूब ही कोसा है, उसे कलिमलमलिन, निर्दय, निर्गुण, दुर्नीतिपूर्ण और विपरीत विशेषण दिये हैं और कहा है कि "जो जो दीसइ सो सो दुज्जणु, णिप्फलु नीरसु णं सुक्कड वणु।" अर्थात् जो जो दिखते हैं वे सब दुर्जन हैं, सूखे हुए वन के समान निष्फल और नीरस हैं।

ऐसा जान पड़ता है कि वे किसी राजा के द्वारा सताये हुए थे और उसी के कारण उन्हें अपनी जन्मभूमि छोड़नी पड़ी थी। इसी कारण उन्होंने कई जगह राजाओं पर गहरे कटाक्ष किये हैं। उनके भ्रकुटित नेत्रों और प्रभुवचनों को देखने सुनने की अपेक्षा मर जाना अच्छा बतलाया है। वे भरत मंत्री से कहते हैं कि—"वह लक्ष्मी किस काम की जिसने ढुरते हुए चँवरों की हवा से सारे गुणों को उड़ा दिया है, अभिषेक के जल से सुजनता को धो डाला है, और जो विद्वानों से विरक्त रहती है। ×× इस समय लोग नीरस और निर्विशेष हो गये हैं, वे गुणीजनों से द्वेष करते हैं, इसी लिए मुझे इस वन की शरण लेनी पड़ी है।"

---

* गंधव्वेकण्हडणं दणेण आयइं भवाइं किय थिर मणेण।—यशोधरचरित्र।

जिस राजासे संत्रस्त होकर पुष्पदन्तकवि. मान्यखेट में आये वह शायद वीरराव था। आदिपुराण के प्रभाचन्द्रकृत टिप्पण में इस शब्द पर 'शूद्रक' और 'कावीपति' टिप्पण दिया है और हमारी समझ में 'कांची' की जगह कावी लिपिकर्त्ता के दोष से लिख गया है ×। इस से मालूम होता है कि वीरराव कांची (काञ्जीवरम्) का राजा होगा और शूद्रक उसका नामान्तर होगा। यह संभवतः पल्लववंशका था। आदिपुराणकी उत्थानिका के 'णिय सिरि विसेस' और 'पइमएणइ' आदि दो पद्यों का अभिप्राय अच्छी तरह स्पष्ट नहीं होता है, फिर भी ऐसा भास होता है कि पुष्पदन्त का उक्त वीरराव से पहले सम्बन्ध था और उस के सम्बन्ध में उस ने कुछ काव्य रचना भी की थी। शायद इसी कारण भरतमंत्री ने पुष्पदन्त से कहा है कि वीरराव का वर्णन करने से जो मिथ्यात्व भाव उत्पन्न हुआ है, उस के प्रायश्चित्तस्वरूप यदि तुम आदिनाथ के चरित की रचना करो तो तुम्हारा परलोक सुधर जाय *। जान पड़ता है कि वीरराव कोई दुष्ट और जैनधर्म का द्वेषी राजा था।

पुष्पदन्त भ्रमण करते करते मान्यखेट के बाहर किसी उद्यान में पड़े हुए थे। वहां अम्मइया और इन्द्रराज नामक दो पुरुषों ने आकर उनसे कहा कि आप इस निर्जन स्थान में क्यों पड़े हुए हैं, पास ही यह बड़ा नगर है वहां चलिए। वहां शुभतुंगराजा के महामात्य भरत बड़े विद्याप्रेमी और कवियों के लिए कामधेनु हैं। भरत की लोकोत्तर प्रशंसा सुन कर पुष्पदन्त नगर में गये। वहां भरतमंत्री ने उनका बहुत ही सत्कार किया और उन्हें अपने पास रक्खा। कुछ दिनों के बाद भरत ने उन से काव्यरचना करने के लिए कहा। इस पर कवि ने कहा कि यह समय बहुत बुरा है। संसार दुर्जनों से भरा हुआ है। जहां तहां छिद्रान्वेषी ही दिखलाई देते हैं। प्रवरसेन के सेतुबन्ध जैसे उत्कृष्ट काव्य की भी जब लोग निन्दा करते हैं, तब मुझे इस कार्य में कीर्ति कैसे मिलेगी? इस पर भरत ने कहा कि दुर्जनों का तो यह स्वभाव ही है, उल्लू को सूर्य भी अच्छा नहीं लगता। उनकी आप को परवा न करनी चाहिए। इस के उत्तर में कवि ने अपनी लघुता प्रकट की और कहा कि मैं दर्शन, व्याकरण, काव्य, छन्दशास्त्र आदि के ज्ञान से कोरा हूं, ऐसी दशा में मुझ से महापुराण की रचना कैसे होगी, यह तो समुद्र को एक कूंडे में भरने जैसा अशक्य कार्य है, फिर भी आप के आग्रह से और जिन भक्ति वश मैं इस की रचना में प्रवृत्त होता हूं, मधुकर जैसा क्षुद्र प्राणी भी विशाल आकाश में भ्रमण कर सकता है।

उक्त सब बातें आदिपुराण की उत्थानिका से ली गई हैं। इस के बाद उत्तरपुराण का प्रारंभ होता है। उस समय कविराज का चित्त उद्विग्न हो उठा। रचना से उन का जी उचट गया। तब एक दिन सरस्वती देवी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिया और कहा कि अरिहंत भगवान् को नमस्कार करो। यह सुनते ही कविराज जाग उठे। उन्हों ने चारों और देखा; परन्तु कहीं कोई भी दिखलाई न दिया। बड़ा आश्चर्य हुआ। इस के बाद भरतमंत्री उन से मिले। उन्हों ने कहा कि, क्या आप सचमुच ही पागल हो गये हैं? आप का मुख उतरा हुआ है, चित्त ठिकाने नहीं है। ग्रन्थरचना क्यों नहीं करते? क्या मुझसे आप का कोई अपराध बन पड़ा? क्या बात है। मैं हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ। मैं आपका चाहा हुआ सब कुछ देने के लिए तैयार हूँ। यह जीवन अस्थिर और असार है। जब आप को सरस्वती कामधेनु सिद्ध है, तब आप उसका नवरसरूप दूध क्यों नहीं दोहते? इस पर कविराज ने फिर वही समय

× पुरानी लिपि में 'व' और 'च' लगभग एक से लिखे जाते हैं और इस कारण पीछे के लेखकों ने इन दोनों के भेद को अच्छी तरह न समझने के कारण अकसर 'च' को 'व' लिखा है।

* पइं मण्णिउं वण्णिउं वीर राउ, उप्पण्णउं जो मिच्छत्त भाउ।
पच्छित्तु तासु जइ करहि अज्ज, ता घडइ तुज्झ परलोयकज्जु॥

की और दुर्जनों की शिकायत की और कहा कि इस कारण मुझ से एक पद भी नहीं लिखा जाता है। अन्त में उन्हों ने कहा कि फिर भी मैं तुम्हारी प्रार्थना को नहीं टाल सकता। तुम मेरे मित्र हो और शालिवाहन तथा श्रीहर्ष से भी बढ़कर विद्वानों का आदर करनेवाले हो। तुमने मुझे सदा प्रसन्न रक्खा है। परन्तु जो यह कहा कि मैं सब कुछ देने के लिए तैयार हूँ, सो मैं तुम से अकृत्रिम धर्मानुराग के सिवाय और कुछ भी नहीं चाहता हूँ। धन को मैं तिनके के समान गिनता हूँ। मेरा कवित्व केवल जिनचरणों की भक्ति से ही प्रस्फुटित होता है—जीविका की मुझे जरा भी परवा नहीं है। ये सब बातें कविने उत्तरपुराणकी उत्थानिका में प्रकट की हैं।

पुष्पदन्त दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के अनुयायी थे; परन्तु वे अपने किसी गुरु का कहीं कोई उल्लेख नहीं करते हैं। इसका कारण यही हो सकता है कि वे गृहत्यागी साधु नहीं थे। यह भी संभव है कि पहले वे वेदानुयायी रहे हों और पीछे किसी कारण से जैनधर्म पर उनकी श्रद्धा हो गई हो, अथवा भरतमंत्री के संसर्गसे ही वे जैनधर्म के उपासक बन गये हों, किसी जैन साधु या मुनिसे उनका परिचय न हुआ हो। उन्होंने अपने को जगह जगह जिनपदभक्त, धर्मासक्त, व्रतसंयुक्त (व्रतीश्रावक) और विगलितशंक (शंका रहित सम्यग्दृष्टी) आदि विशेषण दिये हैं, इस लिए उनके दृढ़ जैन होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता। अपने ग्रन्थों में जैनधर्म के तत्त्वों का भी उन्होंने बड़ी योग्यतासे प्रतिपादन किया है।

पुष्पदन्त का स्वभाव एक विचित्र ही प्रकार का मालूम होता है। उनका 'अभिमानमेरु' नाम उनके स्वभाव को और भी विशेषता से स्पष्ट करता है। 'मान' के सिवाय वे और किसी चीज के भूखे नहीं जान पड़ते। एक बड़े भारी राजा के वैभवशाली मन्त्री का आश्रय पाकर भी वे धन वैभव से अलिप्त ही रहे जान पड़ते हैं। महापुराण के अन्त में उन्होंने अपने लिये जो विशेषण दिये हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं—शून्यभवन और देवकुलिकाओं में रहनेवाले, बिना घर-द्वार के, स्त्री-पुत्र रहित, नदी वापी और तालावों में स्नान करनेवाले, फटे कपड़े और वल्कल पहिननेवाले, धूलिधूसरित, जमीन पर सोनेवाले तथा अपने हाथों को ही ओढ़ना बनानेवाले, और समाधि मरण की आकांक्षा रखनेवाले। ये विशेषण इस अकिञ्चन महाकवि के चित्र को आँखों के सामने खड़ा कर देते हैं।

सचमुच ही पुष्पदन्त अद्भुत कवि थे। वे अपने हृदय के आवेगों को रोक नहीं सकते हैं। वे जिसे हृदय से चाहते हैं उसकी प्रशंसा के पुल बांध देते हैं और जिससे घृणा करते हैं उस की निन्दा करने में भी कुछ उठा नहीं रखते। अपनी प्रशंसा करने में भी उनकी कविता का प्रवाह स्वच्छन्द गति से प्रवाहित हुआ है। इस प्रशंसा के औचित्य अनौचित्य का विचार भी उनका स्वेच्छाचारी कविहृदय नहीं कर सका है। जी खोलकर उन्होंने अपनी प्रशंसा की है। संभव है, इस समय की दृष्टि से वह ठीक मालूम न हो; परन्तु उन की सरस और सुन्दर रचना को देखते हुए तो उस में कोई अत्युक्ति नहीं जान पड़ती।

पुष्पदन्तने अपना आदिपुराण सिद्धार्थसंवत्सर में लिखना शुरू किया था जिस समय तुडिगु नाम के राजा राज्य करते थे और उन्होंने किसी चोल राजा का मस्तक काटा था। इस 'तुडिगु' शब्द पर इस ग्रन्थ की प्रायः सभी प्रतियों में 'कृष्णराजः' टिप्पणी दी हुई है। इसी ग्रन्थ में उक्त राजा का एक जगह 'शुभतुंगदेव' और दूसरी जगह 'भैरवनरेन्द्र' नाम से उल्लेख किया गया है और दोनों जगह उक्त नामों पर टिप्पणी दे कर 'कृष्णराजः' लिखा है। इसी तरह यशोधर चरित्र में 'वल्लभनरेन्द्र' नाम से उल्लेख किया है और वहां भी टिप्पणी में 'कृष्णराजः' लिखा है। अर्थात् तुडिगु, शुभतुंगदेव, भैरवनरेन्द्र, वल्लभनरेन्द्र और कृष्णराज ये पाँचों एक ही

राजा के नाम हैं और इन्हीं के समय में पुष्पदन्तने अपने ग्रन्थों की रचना की है। एक जगह तुडिग को 'भुवनैकराम' विशेषण दिया है, जो कि उसकी एक विरुद थी। इसके सिवाय उसे 'राजाधिराज' लिखा है। आदिपुराण के २७ वें परिच्छेद के प्रारंभ में भरतमन्त्री की प्रशंसा करते हुए उसे 'भारत' (महाभारत) की उपमा दी है:—"गुरु धर्मोद्भवपावनमभिनन्दित-कृष्णार्जुनगुणोपेतं। भीमपराक्रमसारं भारतमिव भरत तव चरितम्॥" इसका 'अभिनन्दित कृष्णार्जुनगुणोपेतम्' विशेषण निश्चय से कृष्णराज को लक्ष्य करके ही लिखा गया है।

उत्तरपुराण के अन्त में ग्रन्थ के समाप्त होने का समय संवत् ६०६, आसाढ़ सुदी १०, क्रोधनसंवत्सर लिखा है। क्रोधनसंवत्सर से ६ वर्ष पहले सिद्धार्थसंवत्सर आता है, अतः आदिपुराण की रचना का समय संवत् ६०० होना चाहिए। दक्षिण में शक संवत् का ही प्रचार अधिक रहा है, अतएव उक्त ६०० और ६०६ को शक संवत् ही मानना चाहिए।

उत्तरपुराण की प्रशस्ति से मालूम होता है कि उक्त ग्रन्थ मान्यखेट नगर में बनाया गया था, जो इस समय मालखेड नाम से प्रसिद्ध है और निजाम के राज्य में है। उत्तरपुराण के ५० वें परिच्छेद के प्रारंभ में लिखा है:—

> दीनानाथधनं सदाबहुजनं प्रोत्फुल्लवल्लीवनम्,
> मान्याखेटपुरं पुरंदरपुरीलीलाहरं सुन्दरम्।
> धारानाथनरेन्द्रकोपशिखिना दग्धं विदग्धप्रियम्,
> क्वेदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्री पुष्पदन्तः कविः॥

इससे मालूम होता है, शक संवत् ६०० और ६०६ के बीच में किसी समय धारानगरी के किसी राजा ने इस बड़े भारी वैभवशाली नगर को बरबाद किया था।

पुष्पदन्तने अपना महापुराण पूर्वोक्त शुभतुंग या कृष्णराज के महामात्य भरत के आग्रह से और यशोधर चरित भरतमंत्री के पुत्र णण्ण या णण्णराज के लिए कर्णाभरणस्वरूप बनाया है। णण्ण भी अपने पिता के सदृश वल्लभनरेन्द्र या कृष्णराज का महामात्य हो गया था। भरत और णण्ण की पुष्पदन्तने बहुत ही प्रशंसा की है और उन के लोकोत्तर गुणों का वर्णन किया है। महापुराण के सब मिलाकर १०२ परिच्छेद हैं, जिन में से कोई ४० परिच्छेदों के प्रारंभ में पुष्पदन्त ने भरतमंत्री की प्रशंसा के सूचक सुन्दर संस्कृत पद्य दिये हैं जिन्हें हमने इस लेख के अन्त में उद्धृत कर दिया है। उन्हें पढ़ने से पाठकों को भरत की महिमा का बहुत कुछ परिचय हो जायगा। इसी तरह यशोधर चरित के चार परिच्छेदों में णण्णराज की प्रशंसा के जो पद्य हैं, वे भी उद्धृत कर दिये गये हैं।

उक्त प्रशस्ति-पद्यों के सिवाय पुष्पदन्तने आदि और उत्तरपुराण की उत्थानिकाओं में भरत-मंत्री को निःशेष कलाविज्ञानकुशल, प्राकृतकविकाव्यरसावलुब्ध, अमत्सर, सत्यप्रतिज्ञ, योद्धा परस्त्रीपराङ्मुख, त्यागभोगभावोद्गमशक्तियुक्त, कविकल्पवृक्ष आदि अनेक विशेषण दिये हैं।

यशोधरचरित में भरत के पुत्र नन्न का गोत्र कौण्डिण्य बतलाया है। अतः संभवतः ये ब्राह्मण ही होंगे; परन्तु जैनधर्म के प्रगाढ़ भक्त थे। भरत के पिता का नाम ऐयण या अण्णया और माता का श्रीदेवी था। उन के सात पुत्र थे—१ देवल्ल, २ भोगल्ल, ३ णण्ण, ४ सोहण, ५ गुणवर्म, ६ दंगइया, और ७ संतइया। इन में तीसरा पुत्र णण्ण था, और भरत के बाद, इसी ने महामात्य या प्रधान-मंत्री के पद को सुशोभित किया था। आदिपुराण के ३४ वें परिच्छेद के प्रारंभ में नीचे लिखा हुआ एक संस्कृत पद्य दिया है:—

तीव्रापद्दिवसेषु वन्धुरहितेनैकेन तेजस्विना
सन्तानक्रमतो गतापि हि रमाऽऽकृष्टा प्रभोः सेवया ।
यस्याचारपदं वदन्ति कवयः सौजन्यसत्यास्पदं
सोऽयं श्रीभरतो जयत्यनुपमः काले कलौ साम्प्रतम् ॥

अर्थात् बड़ी ही विपत्ति के दिनों में जिस अकेले और वन्धुरहित तेजस्वी ने सन्तानक्रम से चली गई हुई भी लक्ष्मी को अपने प्रभु की सेवा से फिर आकृष्ट कर ली और कविगण जिस के चरित्र को सौजन्य और सत्य का स्थान बतलाते हैं, वह भरत इस कलिकाल में अपनी जोड़ नहीं रखता।

इससे जान पड़ता है कि भरत के पूर्वजों के हाथ से उक्त मंत्रीपद चला गया था और उसे भरत ने ही अपनी योग्यता से फिर से प्राप्त किया था। अपनी पूर्वावस्था में उन्होंने बड़ी विपत्ति भोगी थी और उस समय उन का कोई वन्धु या सहायक नहीं था।

यशोधरचरित की रचना महापुराण के कितने समय वाद हुई, इस के जानने का कोई साधन नहीं है। यशोधरचरित में समय सम्बन्धी कोई उल्लेख नहीं है; परन्तु यह निश्चय है कि उस समय राजसिंहासन को वल्लभनरेन्द्र या कृष्णराज ही सुशोभित करते थे। हाँ, मंत्री का पद भरत के पुत्र णण्ण को मिल गया था। णण्ण के उस समय कई पुत्र भी मौजूद थे जिन को यशोधरचरित्र के दूसरे परिच्छेद के प्रारंभ में आशीर्वाद दिया गया है। मालूम नहीं उस समय भरत जीते थे या नहीं। महापुराण जिस समय बनाया गया है उस समय पुष्पदन्त—भरत के ही घर रहते थे—" देवीसुअ सुदणिहि तेण हउं णिलए तुहारए अच्छमि।" ६७ वें परिच्छेद के प्रारंभ में कहा है:—

इह पठितमुदारं वाचकैर्गीयमानं इह लिखितमजस्रं लेखकैश्चारुकाव्यम् ।
गतवति कविमित्रे मित्रतां पुष्पदन्ते भरत तव गृहेऽस्मिन्माति विद्याविनोदः ॥

इस से भी आभास मिलता है कि कविराज भरत के ही गृह में रहते थे और उन का काव्य वहीं पढ़ा, गाया और लिखा जाता था।

इस के वाद यशोधरचरित जब लिखा गया है, तब वे णण्ण के ही घर रहते थे—" णण्णहु मंदिरणिवसंतु संतु, अहिमाणमेरु कविपुप्फयंतु।" परन्तु इसी ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि गन्धर्व (नगर?) में कन्हड़ (केशव) के पुत्र ने पूर्वभवों का वर्णन स्थिर मन होकर किया—" गंधव्वे कण्हडणंदणेण " इत्यादि। तब क्या यह गन्धर्व नगर कोई दूसरा स्थान है? संभव है, यह मान्यखेटका ही दूसरा नाम हो अथवा कोई दूसरा स्थान हो जहाँ कुछ समय टिककर कविने ग्रन्थ का उक्त अंश लिखा हो। यह भी संभव है कि णण्ण के महल का ही नाम गन्धर्व या गन्धर्वभवन हो।

यशोधरचरित जिस समय समाप्त हुआ है उस समय कोई बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा था जिस का वर्णन कविने इन शब्दों में किया है—' जगह जगह मनुष्यों की खोपड़ियां और ठठरियां पड़ी थीं, रंक ही रंक दिखलाई पड़ते थे। बड़ा भारी दुष्काल था। ऐसे समय में भी णण्णने मुझे रहने को अच्छा स्थान, खाने को सरस आहार, पहिनने को स्वच्छ वस्त्र देकर उपकृत किया।" जान पड़ता है यह घटना उस समय की होगी; जब धारानरेशने मान्यखेट को लूट कर वरबाद कर दिया था। ऐसी सैनिक लूटों के वाद अक्सर दुर्भिक्ष पड़ा करते हैं।

महापुराण में कविने नीचे लिखे ग्रन्थकारों और ग्रन्थों का उल्लेख किया है। कवि के समय निरूपण में इन नामों से बहुत सहायता मिल सकती है—

१ अकलंक, २ कपिल, ३ कण्णचर या कणाद, ४ द्विज (ब्राह्मण), ५ सुगत (बौद्ध), ६ पुरन्दर (चार्वाक), ७ दन्तिल, ८ विशाख, ९ लुद्धाचार्य, १० भरत (नाट्य शास्त्र कर्त्ता), ११ पतंजलि (व्याकरण भाष्यकार), १२ इतिहासपुराण, १३ व्यास, १४ कालिदास, १५ चतुर्मुख स्वयंभू, १६ श्रीहर्ष, १७ द्रोण, १८ कवि ईशान बाण, १९ धवल जय धवल सिद्धान्त, २० रुद्रट, २१ न्यासकार, और २२ जसचिन्ह (प्राकृत लक्षण कर्त्ता), २३ जिनसेन, २४ वीरसेन।

यशोधर चरित के अन्त में केवल एक ही ग्रन्थकार कवि 'वच्छराय' (वत्सराज) का उल्लेख किया गया है जिस के कथासूत्र के आधार पर उक्त चरित की रचना की गई है—"महु दोसु ण दिज्जइ पुव्वें कइइ कइवच्छराय तं सुत्तु लइइ।" यह तो कहने की आवश्यकता नहीं कि ये वच्छराय कोई जैनकवि ही थे। क्योंकि यशोधर की कथा जैनसाहित्य की ही चीज है।

उत्तरपुराण के अन्त में महावीर भगवान् के निर्वाण के बाद की गुरुपरम्परा दी गई है। उसमें लोहाचार्य तक की परम्परा त्रिलोकप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार के ही समान है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में जहां जसबाहु नाम है, वहां इसमें भद्रबाहु है। एक बडा भारी अन्तर यह है कि इसमें गोवर्धन के बाद भद्रबाहु का नाम ही नहीं है, साथ उसके बदले कोई दूसरा नाम भी नहीं दिया है। इतिहासज्ञों के लिए यह बात खास ध्यान देने योग्य है। सब के बाद इसमें जिनसेन और वीरसेन का नाम दिया हुआ है, जो आचारांग के एकदेश के ज्ञाता थे। जान पड़ता है ये जिनसेन संस्कृत आदिपुराण के कर्त्ता से भिन्न हैं।

आदिपुराण (पुष्पदन्तकृत) के पांचवे परिच्छेद में नीचे लिखे देशों के नाम दिये हैं जिन्हें भगवान् ऋषभदेव ने बसाया था—

पल्लव, सैन्धव (सिन्ध), कोंकण, कौशल, टक्क, आभीर, कीर, खस, केरल, अंग, कालिंग, बंग, जालंधर, वत्स, यवन, कुरु, गुर्जर, बर्बर, द्रविड, गौड, कर्णाट, वराडिव (वैराट?), पारस, पारियात्र, पुन्नाट, सूर, सोरठ, विदेह, लाड, कोंग, वेंगि, मालव, पांचाल, मगध, भट्ट, भोट (भूटान), नेपाल, ओण्ड्र, पौण्ड्र, हरि, कुरु, भंगाल।

पुष्पदन्त के बनाये हुए दो ग्रन्थ हमें प्राप्त हुए हैं, एक तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार जिस का दूसरा नाम महापुराण है और जिसके आदिपुराण और उत्तरपुराण ये दो भाग हैं। इसकी श्लोकसंख्या १३ हजार के लगभग है और इसमें सब मिलाकर १०२ परिच्छेद हैं। आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का और उत्तरपुराण में शेष २३ तीर्थंकरों का और अन्य शलाकापुरुषों का चरित्र है। उत्तरपुराण में पद्मपुराण और हरिवंशपुराण भी शामिल हैं और ये पृथक् रूप में भी अनेक पुस्तकभण्डारों में मिलते हैं। पुष्पदन्त का दूसरा ग्रन्थ यशोधर चरित है जिस के चार परिच्छेद हैं और छोटा है। इसमें यशोधर नामक राजा का चरित्र वर्णित है जो कोई पुराण पुरुष था।

उक्त दो ग्रन्थों के सिवाय नागकुमार चरित नाम का एक ग्रन्थ है जो कारंजा (बरार) के पुस्तकभण्डार में है और जिस के प्राप्त करने के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं।

---

१ यह एक जैन कवि है। इस के बनाये हुए दो ग्रन्थ हमें प्राप्त हुए हैं—'पउमचरिय' या रामायण जिसके पिछले कुछ सर्ग उस के पुत्र त्रिभुवन स्वयंभुदेवने पूर्ण किए हैं और दूसरा हरिवंशपुराण जिस का उद्धार विक्रम की १६ वीं शताब्दि के एक दूसरे विद्वान्ने किया है। शायद इसका अधिकांश नष्ट हो गया था। ये दोनों ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में ही हैं। इनका विस्तृत परिचय शीघ्र ही दिया जायगा।

हमें सब से पहले बंबई के सुप्रसिद्ध सेठ सुखानन्दजी की कृपा से पुष्पदन्त का आदिपुराण देखने को मिला और उसी को देखकर हमें इस कवि का परिचय लिखने का उत्साह हुआ। सेठजी इस ग्रन्थ को फतेहपुर (जयपुर) के सरस्वतीभण्डार से लाये थे। उक्त सरस्वतीभण्डार का यह ८६ वें नम्बर का ग्रन्थ है और बहुत ही शुद्ध है। उसमें कहीं कहीं टिप्पणी भी दी है, वि० संवत् १५२८ का लिखा हुआ है उसमें प्रति करानेवाले की एक विस्तृत प्रशस्ति दी हुई है जो उपयोगी समझ कर इस लेख के परिशिष्ट में दे दी गई है।

इस ग्रन्थ की दो प्रतियां हमें पूने के भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट में मिलीं जिनमें से एक वि० सं० १६२५ की लिखी हुई है* और दूसरी वि० सं० १८८३ की लिखी हुई है×। इस ग्रन्थ का एक टिप्पण भी हमें उक्त संस्था में मिला जो प्रभाचन्द्र कृत है और जिसकी श्लोकसंख्या १६५० है*। इसमें प्रति लिखने का और टिप्पणकार का समय आदि नहीं दिया है।

इसके बाद उक्त इन्स्टि० में हमें उत्तरपुराण की भी एक शुद्धप्रति मिल गई जो बहुत ही शुद्ध है और सं० १६३० की लिखी हुई है। इस पर यत्र तत्र टिप्पणियां भी दी हुई हैं× ।

यशोधर चरित की एक प्रति हमें बंबई के तेरहपन्थी मन्दिर के पुस्तकभण्डार से प्राप्त हुई जो बहुत ही पुरानी है अर्थात् १३९० की लिखी हुई है और प्रायः शुद्ध है, और दूसरी भाण्डारकर इन्स्टि० से, जो वि० संवत् १६१५ की लिखी हुई है†।

इस इन्स्टिट्यूट में हरिवंशपुराण की भी एक बहुत ही शुद्ध, टिप्पणयुक्त, और प्राचीन प्रति है, मिलान करने से मालूम हुआ कि यह उत्तरपुराण का ही एक अंश है। ÷

पुष्पदन्त के ग्रन्थ पूर्वकाल में बहुत प्रसिद्ध रहे हैं और इस कारण उनकी प्रतियां अनेक भण्डारों में मिलती हैं। उन पर टिप्पणपंजिकायें और टिप्पणग्रन्थ भी लिखे गये हैं और तलाश करने से अब भी प्राप्त हो सकते हैं। जयपुर के पाटोदी के मन्दिर में उत्तरपुराण का एक टिप्पण ग्रन्थ है जिसके कर्त्ता श्रीचन्द्र (?) मुनि मालूम होते हैं और जो विक्रम संवत् १०८०में भोजदेव के राज्य में बनाया गया है।० जयपुर के बाबा दुलीचन्दजी के भण्डार में पुष्पदन्त के प्रायः सभी ग्रन्थों की पंजिकायें हैं; आगरे के मोतीकटरे के मन्दिर में उत्तरपुराण की पंजिका है। प्रयत्न करने पर भी हम इन्हें प्राप्त नहीं कर सके।

इस समय हम पुष्पदन्त के नागकुमार चरित और उनके ग्रन्थों की पंजिकाओं को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके मिल जाने पर आगामी अंक में पुष्पदन्त का समय निर्णय किया जायगा और उनके ग्रन्थों में जिन जिन व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है उन सब के समय पर विचार करके निश्चित किया जायगा कि वास्तव में पुष्पदन्त के ग्रन्थ कब बने हैं।

आगामी अंक में पुष्पदन्त की भाषा और उनके कवित्व की भी आलोचना करने का विचार है।

परिशिष्ट में पुष्पदन्त के ग्रन्थों के वे सब अंश दे दिये गये हैं जो महत्वपूर्ण हैं और जिनके आधार से यह लेख लिखा गया है। अधिक प्रयोजनीय अंशों का अनुवाद भी टिप्पणी में दे दिया है।

इस लेख के तैयार करने में श्रीमान् मुनिमहोदय जिनविजयजी से बहुत अधिक सहायता मिली है। इसकी बहुत कुछ सामग्री भी उन्हीं की कृपा से प्राप्त हुई है, अतएव मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ हूं।

---

* नं. ११३९ आफ १८९१–९५। × नं. १०५० आफ १८८७–९१।

* नं. ५६३ आफ १८७५–७६। × नं ११०६ आफ १८८४–८७। † नं. ११६३ आफ १८९१–९५। ÷ ११२५ आफ १८८४-८७। ० देखो जैनमित्र, गुरुवार, आश्विन सुदी ५ वीर सं. २४४७ में श्रीयुत पं. पन्नालालजी वाकलीवाल का "सं. वि. १०८० के प्रभाचन्द्र" शीर्षक लेख।

परिशिष्ट नं० १

(आदिपुराण के प्रारंभ का कुछ अंश ।)

ओं नमो वीतरागाय ।

सिद्धिवहूमणरंजणु परमणिरंजणु भुअणकमलसरणेसरु ।
पणवेवि विग्घविणासणु णिरुवमसासणु रिसहणाहपरमेसरु ॥ ध्रुवकम् ॥

× × ×

तं कहमि पुराणु पसिद्धणामु, सिद्धत्थवरिसे भुवणाहिरामु ।
उवद्धज्जूडु भूभंगभीसु, तोडेप्पिणु चोडहो तणउं सीसु ॥ १ ॥
भुवणेकरामु रायाहिराउ, जहिं अच्छइ तुडिगुं महाणुभाउ ।
तं (वं?) दीण दिण्ण घणकणयपयरु, महिपरिभमंत मेवाडिणयरु ॥ २ ॥
अवहेरिय खलयणु गुणमहंतु, दियहेहिं पराइउ पुप्फयंतु ।
दुग्गमदीहरपंथेणरीणुं, णव इंदु जेम देहेण खीणु ॥ ३ ॥
तरुकुसुमरेणुरंजियसमीर, मायंदगुंछ गुंदलियकीर ।
णंदणवणे किर वीसमइ जाम, तहिं विण्णि पुरिस संपत्त ताम ॥ ४ ॥
पणवेप्पिणु तेहिं पवुत्त एव, भो खण्डइँ गलिय पावावलेव ।
परिभमिरभमररवगुमुगुमंत, किं किर णिवसहि णिज्जणवणंत ॥ ५ ॥
करिसरवहिरिय दिचकवाले, पइसरहि ण किं पुरवरविसाले ।
तं सुणेवि भणइ अहिमाणमेरु, वरि खज्जउ गिरकंदरकसेरु ॥ ६ ॥
णउ दुज्जणभउंहा वंकियाइं, दीसंतु कलुसभावंकियाइं ॥

घत्ता ।

वरु णरवरु धवलाच्छिहि, होउ मकुच्छिहि, मरउ सोणिमुहणिग्गमे ।
खलकुच्छियपहुवयणइं, भिउडियणयणइं, म णिहालउ सूरुग्गमे ॥ ७ ॥
चमराणिलउड्डावियगुणाएं, अहिसेयधोयसुयणत्तणाएं ।

भावार्थ—इस प्रसिद्ध पुराणको मैं सिद्धार्थ संवत्सर में कहता हूं जब राजाधिराज भुवनैकराम तुडिगुने चोड राजा का सुन्दर जटायुक्त और भ्रकुटि भंगिसे भीषण मस्तक काटा ॥ १ ॥ उन्हों ने दीन दुखियों को प्रचुर धन दिया । इसी समय पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए और खलजनों द्वारा अपमानित हुए पुष्पदन्त कवि मेवाडि या मेलाटी नगरी में आये । दुर्गम और लम्बा रास्ता तय करते करते उनका शरीर नवीन चन्द्रमा के समान क्षीण हो गया था । २–३ ॥ वे नन्दन वन नामक उद्यान में विश्राम ले रहे थे जहां का वायु पुष्पों के पराग से महक रहा था और आम्रवृक्षों पर शुकों के झुण्ड क्रीड़ा कर रहे थे । इतने में ही वहां दो पुरुष पहुंचे ॥ ४ ॥ उन्होंने प्रणाम करके कहा कि हे निष्पाप खंडकवि, आप इस निर्जन वन में जो भ्रमरों के गुंजार से गूंज रहा है क्यों ठहरे हैं ? हाथियों के शब्दों से दिशाओं को बधिर करनेवाले इस विशाल नगर में क्यों नहीं चलते ? यह सुन कर अभिमानमेरु पुष्पदन्तने कहा कि गिरिकन्दराओं के जंगली फल खा लेना अच्छा, परन्तु दुर्जनों की कलुषित टेढी भौंहें देखना अच्छा नहीं ॥ ५–६ ॥ उज्ज्वल नेत्रोंवाली माता की कूंख से जन्म लेते ही मर जाना अच्छा परन्तु प्रभु के दुष्ट वचन और भ्रकुटित नयन सवेरे सवेरे देखना अच्छा नहीं ॥ ७ ॥
वह लक्ष्मी किस मतलब की जिसने ढुरते हुए चँवरों की हवा से सारे गुणों को उड़ा दिया हो, अभिषेक के जल

---

१ सिद्धार्थ संवत्सरे । २ विरुदः । ३ कृष्णराजः । ४ दुर्गमदीर्घतराकाशमार्गेणागतः । ५ मन्दतेजः । ६ मिलित ७ पुष्पदन्तः । ८ हस्तिशब्दात् । ९ दिक्चक्रवलये ।

अविवेयपं दप्पुत्तालियापं, मोहंधयापं मारणसीलयापं ॥ ८ ॥
सत्तंगरज्जभरभारियापं, पिउपुत्तरमणरसयारियापं ।
विससहजम्मपं जडरत्तियापं, किं लच्छिए विउसविरत्तियापं ॥ ९ ॥
संपइ जणु णीरसु णिव्विसेसु, गुणवंतउ जहिं सुरगुरुवि देसु ।
तहिं अम्हहं लइ काणणु जे सरणु, अहिमाणें सहुं वरि होउ मरणु ॥ १० ॥
अम्मइय इंदरापहिं तेहिं, आयरिणय तं पहसिय मुहेहिं ।
गुरुविणयपणयपणवियसिरेहिं, पडिवयणु दिण्णु णायरणरेहिं ॥ ११ ॥

घत्ता ।

जणमणतिमिरोसारण, मयतरुवारण, णियकुलगयणदिवायर ।
भो भो केसवतणुरुह, णवसररुहमुह, कव्वरयणरयणायर ॥ १२ ॥
बंभंडमंडवारूढकित्ति, अणवरय रइय जिणणाहभत्ति ।
सुहतुंगदेवकमकमलभसलु, णीसेसकलाविण्णाणकुसलु ॥ १३ ॥
पाययकइकव्व रसावलुद्धु, संपीय सरासइसुरहिदुद्धु ।
कमलच्छु अमच्छरु सच्चसंधु, रणभरधुरधरणुग्घिट्ठखंधु ॥ १४ ॥
सविलासविलासिणिहियय थेणु, सुपसिद्ध महाकइकामधेणु ।
काणीणदीणपरिपूरियासु, जसपसरपसाहियदसदिसासु ॥ १५ ॥
पररमणिपरम्मुह सुद्धसीलु, उण्णयमइ सुयणुद्धरणलीलु ।
गुरुयणपयपणवियउत्तमंगु, सिरिदेविअंबगब्भुब्भवंगु ॥ १६ ॥
अणइयतणउं तणुरुहु पसत्थु, हत्थियवदाणोल्लियदीहहत्थु ।
महमत्तवंसधयवडु गहीरु, लक्खणलक्खंकिय वरसरीरु ॥ १७ ॥

से सुजनता को धो डाला हो, अविवेक से दर्प को बढ़ाया हो, जो मोहसे अन्धी हो, मारणशील हो, सप्तांग राज्य के भार से लदी हुई हो, पिता और पुत्र दोनों में रमण करनेवाली (घृणितव्याभिचारिणी) हो, विषके साथ जिसका जन्म हुआ हो, जो जड़ (या जल) में रक्त हो, और जो विद्वानों से विरक्त रहती हो ॥ ८-९ ॥

इस समय लोग नीरस और विशेषतारहित हो गये हैं। अव तो गुणवन्त बृहस्पति का भी द्वेष किया जाता है। इसी लिए मैंने इस वन का शरण लिया है। मैंने सोचा है कि इस तरह अभिमान के साथ मर जाना भी अच्छा है ॥१०॥

कवि के ये वचन सुनकर उन दो आगत नागरिकोंने—अम्मइय (?) और इन्द्रराजने—प्रसन्न मुख से और बड़े विनय से मस्तक झुकाकर कहा—" हे मनुष्यों के हृदयान्धकार को दूर करनेवाले, नवीन कमलसदृश मुखवाले, मद-रहित, अपने कुलरूपी आकाश के चन्द्रमा, काव्यरत्नरत्नाकर, और केशव के पुत्र पुष्पदन्तजी, क्या आपने भरत (मंत्री) का नाम नहीं सुना ? जिस की कीर्ति ब्रम्हाण्डरूपमण्डपपर आरुढ हो रही है, जो निरन्तर जिन भगवान की भक्ति में अनुरक्त रहता है, शुभतुंगदेव (राजा और इस नाम का मन्दिर) के चरणकमलों का भ्रमर है, सारी कला और विद्याओं में कुशल है, प्राकृत कवियों के काव्यरसपर लुब्ध रहता है और जिसने सरस्वतीरूप सुरभि का खूब दूध पिया है, लक्ष्मी जिसे चाहती है, जो मत्सर रहित है, सत्यप्रतिज्ञ है, युद्धों के बोझे को ढोते ढोते जिस के कन्धे घिस गये हैं, जो विला-सवती सुन्दरियों के हृदय का चुरानेवाला है, बड़े बड़ प्रसिद्ध महाकवियों के लिए कामधेनु है, दीन दुखियाओं की आशाओं को पूरा करनेवाला है, जिस के यश ने दशों दिशाओं को जीत लिया है, जो परस्त्रियों की ओर कभी नजर नहीं उठाता, शुद्ध शीलयुक्त है, जिस की मति उन्नत है, लीला मात्र से जो सुजनों का उद्धार कर देता है, गुरुजनों के चरणोंपर जिस का मस्तक सदैव झुका रहता है, जो श्रीदेवी माता और अण्णय पिता का पुत्र है, जिस के हाथ हाथी के समान दान (या मदजल) से आर्द्र रहते हैं, जो महामात्यवंशका ध्वजपट है, गंभीर है, जिस का शरीर शुभ लक्षणों से युक्त है और जो दुर्व्यसनरूपी सिंहों के लिए जो अष्टापद के समान है ॥ ११-१७ ॥ आइए, उसके नेत्रों

दुव्वसण सीहसंघायसरहु, णवि याणहि किं णामेण भरहु ।

घत्ता ।

आउ जाहुं तहो मंदिरु णयणाणंदिरु सुकइकइत्तणु जाणइं ।
सो गुणगणतत्तिल्लउ तिहुअणिभल्लउ णिच्छउ पइं सम्माणइं ॥ १८ ॥
जो विहिणा णिम्मिउं कव्वपिंडु, तं णिसुणेवि सो संचालिउ खंडु ।
आवंतु दिट्ठु भरहेण केम, वाईसरिसरिकल्लोलु जेम ॥ १९ ॥
पुणु तासु तेण विरइउ पहाणु, घरु आयहो अब्भागयविहाणु ।
संभासणु पियवयणेहिं रम्मु, णिम्मुक्कडंभु णं परमधम्मु ॥ २० ॥
तुहुं आयउ णं गुणमणि णिहाणु, तुहुं आयउ णं पंकयहो भाणु ।
पुणु एम भणेप्पिणु मणहराइं, पहखीणरीणतणु सुहयराइं ॥ २१ ॥
वर एहाणविलेवणभूसणाइं, दिण्णइं देवंगइणिवसणाइं ।
अच्चंत रसालइं भोयणाइं, गलियाइं जाम कइवय दिणाइं ॥ २२ ॥
देवीसुएण कइ भणिउं ताम, भो पुप्फयंत ससिलिहियणाम ।
णियसिरिविसेसणिज्जियसुरिंदु, गिरिधीरु वीरु भइरव[1] णरिंदु ॥ २३ ॥
पइं मण्णिउं वण्णिउं वीरराउ, उप्पण्णउं जो मिच्छत्तभाउ ।
पच्छित्तु तासु जइ करहि अज्ज, ता घडइ तुज्झु परलोयकज्जु ॥ २४ ॥
तुहुं देउ कोवि भव्वयणबंधु, पुरुएवचरियभारस्स खंधु ।
अब्भत्थिओसि देवेहि तेम, णिव्विग्घें लहु णिव्वहइ जेम ॥ २५ ॥

घत्ता ।

अइललियएं गंभीरएं सालंकारएं वायएं ता किं किज्जइ ।
जइ कुसुमसरवियारउ अरुहु भडारउ सब्भावें ण थुणिज्जइ ॥ २६ ॥

को आनन्द देनेवाले मन्दिर में चालिए। वह सुकवियों के कवित्वका मर्मज्ञ है, गुणगणों से तृप्त है और तीनों भुवनों के लिए भला है, वह निश्चय से आप का सम्मान करेगा ॥ १८ ॥

यह सुन कर वह खण्ड कवि—जिस के शरीर को मानों विधाताने काव्य का मूर्तिमान पिण्ड ही बनाया है—उस ओर को चल दिया। उस समय भरत मंत्रीने उस को इस तरह आते देखा जिस तरह सरस्वतीरूपी सरिता की एक तरंग ही आ रही है ॥ १९ ॥ तब उस ने अभ्यागत विधान के अनुसार उस का सब प्रकार से अतिथिसत्कार किया और बहुत ही प्रिय, दंभरहित धर्मवचनों से संभाषण किया ॥ २० ॥ कहा—हे गुणमणिनिधान, आप भले पधारे, कमल के लिए जैसे सूर्य प्रसन्नताका कारण है, उसी तरह आप मेरे लिए हैं। ऐसा कहकर उस के मार्ग श्रम से क्षीण हुए शरीर को सुख देनेवाले मनोहर स्नान, विलेपन और आभूषणों से उस का सत्कार किया और देवों के निवास करने योग्य स्थान में ठहराया। इसके बाद अत्यन्त रसाल भोजन से उसे तृप्त किया। इस तरह कुछ दिन बीत गये ॥ २१–२२ ॥ देवी सुत (भरत) ने कहा—हे श्लाघनीय नामधारी पुष्पदन्त, भैरव नरेन्द्र (कृष्णराज) अपने वैभव से सुरेन्द्र को भी जीतनेवाले और पर्वत के समान धीर वीर हैं ॥ २३ ॥ तुमने कांची नरेश वीरराज शूद्रक (?) का वर्णन किया है, और उसे माना है अतः इस से जो मिथ्यात्वभाव उत्पन्न हुआ है उस का यदि तुम आज प्रायश्चित्त कर डालो तो इस से तुम्हारा परलोक का कार्य बन जाय ॥ २४ ॥ भव्यजनों के लिए बन्धुतुल्य तुम्हें पुरुदेव (आदिनाथ) चरित्र की रचना करनी चाहिए। मैं तुम्हारी अभ्यर्थना करता हूं। इस काव्यरचना से तुम निर्विघ्नता पूर्वक निर्वृति प्राप्त करोगे ॥ २५ ॥ वह अतिशय ललित, गंभीर और अलंकारयुक्त रचना भी किस काम की जिस में कामबाणों को व्यर्थ करनेवाले अर्हत भट्टारक की सद्भावपूर्वक स्तुति न की गई हो? ॥ २६ ॥

१ भइरव—कृष्णराजः ।

सियदंतपंतिधवलीकयासु, ता जंपइ वरवायाविलासु ।
भो देवीणंदण जयसिरीह, किं किज्जइ कव्वु सुपुरिससीह ॥ २७ ॥
गोवज्जिएहिं णं घणदिणेहिं, सुरवरचावेहिं वणिग्गुणेहिं ।
मइलियचित्तहिं णं जरघरेहिं, छिद्दण्णेसिहिं णं विसहरेहिं ॥ २८ ॥
जडवाइएहिं णं गयरसेहिं, दोसायरेहिं णं रक्खसेहिं ।
आचक्खिय परपुट्ठीपलेहिं, वर कइ णिंदिज्जइ हयखलेहिं ॥ २९ ॥
जो बाल वुड्ढ संतोसहेउ, रामाहिरामु लक्खणसमेउ ।
जो सुम्मइ कइवइ विहियसेउ, तासु वि दुज्जणु किं परे म होउ ॥ ३० ॥

घत्ता ।

णउ महु बुद्धिपरिग्गहु, णउ सुयसंगहु, णउ कासुवि केरउ बलु ।
भणु किह करमि कइत्तणु, ण लहमि कित्तणु, जगु जे पिसुणसयसंकुलु ॥ ३१ ॥
तं णिसुणेवि भरहें वुत्तु ताव, भो कइकुलतिलय विमुक्तताव ।
सिमिसिमिसिमंतकिमि भरियरंधु, मेल्लेवि कलेवरु कुणिमगंधु ॥ ३२ ॥
ववगयविवेउ मसिकसणकाउ, सुंदरपएसे किं रमइ काउ ।
णिक्कारणु दारुणु बद्धरोसु, दुज्जणु ससहावें लेइ दोसु ॥ ३३ ॥
हयतिमिरणियरु वरकरणिहाणु, ण सुहाइ उलूयहो उइउ भाणु ।
जइ ता किं सो मंडियसराहं, णउ रुच्चइ वियसियसिरिहराहं ॥ ३४ ॥
को गणइ पिसुणु अविसाहियतेउ, भुक्कउ छणयंदहो सारमेउ ।
जिण चलणकमल भत्तिल्लएण, ता जंपिउ कव्वपिसल्लएण ॥ ३५ ॥

घत्ता ।

णउ हउं होमि वियक्खणु, ण मुणमि लक्खणु, छंदु देसि णवि याणमि ।

तब उस वाणी विलास कवि ने अपनी श्वेत दन्तावली से दिशाओं को उज्ज्वल करते कहा—हे देवीनन्दन (भरत) हे सुपुरुषसिंह, मैं काव्य क्या करूं ? श्रेष्ठ कवियों की खलजन निन्दा करते हैं । वे मेघों से घिरे हुए दिन के समान गोवर्जित (प्रकाशरहित और वाणीरहित), इन्द्रधनुष के समान निर्गुण, जीर्ण गृह के समान मालिनचित्त (चित्र), सर्प के समान छिद्रान्वेषी, गत रस के समान जड़वादी, राक्षसों के समान दोषायर (दोषाचर और दोषाकर) और पीठ पीछे निन्दा करनेवाले होते हैं । कविपति प्रवरसेन के सेतुबन्ध (काव्य) की भी जब इन दुर्जनों ने निन्दा की तब फिर औरों की तो बातही क्या है ? ॥ २९–३० ॥

फिर न तो मुझ में बुद्धि है, न शास्त्रज्ञान है और न और किसी का बल है, तब बतलाइए कि मैं कैसे काव्य-रचना करूं ? मुझे इस कार्य में यश कैसे मिलेगा ? यह संसार दुर्जनों से भरा हुआ है ॥ ३१ ॥

यह सुनकर भरत ने कहा—हे कविकुलतिलक और हे विमुक्तताप, जिस में कीड़े बिलबिला रहे हैं और बहुत ही घृणित दुर्गन्ध निकल रही है, ऐसी लाशको छोड़ कर विवेकरहित काले कौए क्या और किसी सुन्दर स्थान में क्रीड़ा कर सकते हैं । अकारण ही अतिशय रुष्ट रहनेवाले दुर्जन स्वभाव से ही दोषों को ग्रहण करते हैं ॥ ३२–३३ ॥ उल्लुओं को यदि अन्धकार का नाश करनेवाला और तेजस्वी किरणोंवाला ऊगा हुआ सूर्य नहीं सुहाता तो क्या सरोवरों की शोभा बढानेवाले विकसित कमलों को भी न सुहायेगा ? ॥ ३४ ॥ इन खलजनों की परवा कौन करता है ? हाथी के पीछे कुत्ते भौंकते ही रहते हैं ।

यह सुनकर जिन भगवान के चरणकमलों की भक्ति में लीन रहनेवाले काव्यराक्षस (पुष्पदन्त) ने कहा ॥ ३५ ॥ आप का यह कथन ठीक है, परन्तु न तो मैं विचक्षण हूं और न व्याकरण, छन्द आदि जानता

---

१ परपृष्ठिमांसैः परोक्षवादैश्च । २ बाला अंगदादयः; वृद्धा जांबवदादयः अन्यत्र श्रुतहीनाः श्रुताढ्याश्च । ३ हनुमान । ४ कृतसमुद्रबंधः अन्यत्र कृतसेतुबंध नाम काव्यं । ५ पद्मानां । ६ काव्यराक्षसेन । ७ कुक्कुरः ।

जा विरइय जयवंदहिं आसिमुणिंदहिं सा कह केम समाणमि ॥ ३६ ॥
अकलंक कविल कणयर मयाइं, दिय सुगय पुरंदर णय सयाइं ।
दन्तिलविसाहि लुद्धारियाइं, णउ णायइं भरह वियारियाइं ॥ ३७ ॥
णउ पीयइ पायंजलिजलाइं, अइहास पुराणइं णिम्मलाइं ।
भावाहिउ भारह-भासि वासु, कोहलु कोमलगिरु कालिदासु ॥ ३८ ॥
चउमुहुं सयंभु सिरिहरिसु दोणु, णालोइउ कइ ईसाणु वाणु ।
णउ धाउ ण लिंगु ण गुणसमासु, णउ कम्मु करणु किरिया विसेसु ॥ ३९ ॥
णउ संधि ण कारउ पयसमत्ति, णउ जाणिय मइं एक्कवि विहत्ति ।
णउ वुज्झिउ आयम सद्दधामु, सिद्धंतु धवल जयधवल णामु ॥ ४० ॥
पडुरुद्दडु जड णिण्णासयारु, परियंच्छिउ णालंकारसारु ।
पिंगल पत्थारु समुद्दे पडिउ, ण कयाइ महारइ चित्ते चाडिउ ॥ ४१ ॥
जैसइंधु सिंधु कल्लोलसित्तु, ण कलाकोसले हियवउ णिहित्तु ।
हउं वप्प णिरक्खरु कुक्खिमुक्खु, णरवेसें हिंडमि चम्मरुक्खु ॥ ४२ ॥
अइ दुग्गमु होइ महापुराणु, कुंडएण मवइं को जलविहाणु ।
अमरासुरगुरुयणमणहरोहिं, जं आसि कयउ मुणिगणहरोहिं ॥ ४३ ॥
तं हउं कहमि भत्तीभरेण, किं णहे ण ममिज्जइ महुअरेण ।
एहु विणउ पयासिउ सज्जणाहं, मुहे मसि कुच्चउ कउ दुज्जणाहं ॥ ४४ ॥

हूं, ऐसी दशा में जिस चारित को बड़े बड़े जगद्वन्द्य मुनियों ने रचा है उसे मैं कैसे बना सकूंगा ? ॥ ३६ ॥ मैं अकलंक (जैन दार्शनिक), कपिल (सांख्यकार), कणचर (कणाद) के मतों का ज्ञाता नहीं हूं, दिय (ब्राह्मण), सुगत (बौद्ध), पुरन्दर (चार्वाक), आदि सैंकड़ों नयों को, दन्तिल, विशाख, लुब्ध (प्राकृतलक्षणकर्ता) आदि को नहीं जानता । भरत के नाट्यशास्त्र से मैं परिचित नहीं ॥ ३७ ॥ पतंजलि (भाष्यकार) के और इतिहास पुराणों के निर्मल जल को मैंने पिया नहीं, भावों के अधिकारी भारतभाषी व्यास, कोमलवाणीवाले कालिदास, चतुर्मुख स्वयंभु कवि, श्रीहर्ष, द्रोण, कवीश्वर वाण का अवलोकन नहीं किया । धातु, लिंग, गुण, समास, कर्म, करण, क्रिया-विशेषण, सन्धि, पदसमास, विभक्ति इन सब में से मैं कुछ भी नहीं जानता । आगम शब्दों के स्थानभूत धवल और जयधवल सिद्धान्त भी मैंनें नहीं पढ़े ॥ ३८-४० ॥ चतुर रुद्रट का अलंकार शास्त्र भी मुझे परिज्ञात नहीं, पिंगल प्रस्तार आदि भी कभी मेरे चित्तपर नहीं चढ़े ॥ ४१ ॥ यशः चिन्हकवि के काव्यसिन्धु की कल्लोलों से मैं कभी सिक्त नहीं हुआ । कलाकौशल से भी मैं कोरा हूं । इस तरह मैं बेचारा निरक्षर मूर्ख हूं, मनुष्य के वेष में पशु के तुल्य घूमता फिरता हूं ॥ ४२ ॥ महापुराण बहुत ही दुर्गम है । समुद्र कहीं एक कूंडे में भरा जा सकता है ? फिर भी जिसे सुर असुरों के मनको हरनेवाले मुनि गणधरों ने कहा था, उसे अब मैं भक्ति भाववश करता हूं । भौंरा छोटा होनेपर भी क्या विशाल आकाश में भ्रमण नहीं करता है ? अब मैं सज्जनों से यही विनती करता हूं कि आप दुर्जनों के मुँह पर स्याही की कूँची फेर दें ॥ ४४ ॥

---

८ सांख्यमते मूलकारः ।९ वैशेषिकमते मूलकारः । १० चार्वाकमते ग्रन्थकारः । ११ पाणिनिव्याकरणभाष्यं (पतंजलि) । १२ एकपुरुषाश्रित कथा । १३ भारतभाषी व्यास । १४ श्रीहर्ष । १५ कवि ईशानः वाणः । १६ परिज्ञातः । १७ प्राकृत लक्षण कर्ता ।

परिशिष्ट नं० २

(उत्तर पुराण के मंगलाचरण के बाद का अंश ।)

मणे जाएण किं पि अमणोज्जे, कइवयइ दिअहें केण विकज्जें ।
णिव्विण्णउ ठिउ जाम महाकइ, ता सिविणंतरि पत्त सरासइ[1] ॥ १ ॥
भणइ भडारी सुहयरुओहं[2], पणवह अरुहं सुहयरुमेहं[3] ।
इय णिसुणेवि विउद्धउ[4] कइवरु, सयलकलायरु[5] ण छुण ससहरु ॥ २ ॥
दिसउ णिहालइ[6] किं पि ण पेच्छइ, जा विंभियमइ णियघरे अच्छइ ।
ताम पराइयएण[7] णयवंतें, मउलिय, करयलेण पणवंतें ॥ ३ ॥
दस दिस पसरिय जसतरुकंदें[8], वरमहमत्तवंसणहचंदें[9][10] ।
छुणससिमंडल सण्णिह वयणें, णव कुवलयदलदीहरणयणें ॥ ४ ॥

घत्ता ।

खल संकुले काले कुसीलमइ विणउ करेप्पिणु संवरिय[11] ।
वच्चंति विसुण्णसुण्णवहे जेणसरासइ उद्धरिय ॥ ५ ॥
ऐयणु[12] देवियव्वतणुजाएं, जयदुंदुहिसरगहिरणिणाएं ।
जिणवरसमयणिहेलणखंभें[13], दुत्थियमित्तें ववगयडंभें ॥ ६ ॥
परउवयारहारणिव्वहणें[14], विउसविहुर सयभय णिम्महणें[15] ।
ते ओहामिय पवरक्खरहें[16], तेण विगव्वें[17] भव्वें भरहें ॥ ७ ॥
वोल्लाविउ कइ कव्वपिसल्लउ, किं तुहुं सच्चउ वप्पगहिल्लउ[18] ।
किं दीसहि विच्छायउ दुम्मणु, गंथकरणें किं ण करहि णियमणु ॥ ८ ॥
किं किउ काइं वि मइं अवराहउ[19], अवरु कोवि किं वि रसुम्माहउ[20] ।

कुछ दिनों के बाद मन में कुछ बुरा मालूम हुआ । जब महाकवि निर्विण्ण हो उठा तब सरस्वती देवी ने स्वप्न में दर्शन दिया ॥ १ ॥ भट्टरिका सरस्वती बोली कि पुण्यवृक्ष के लिए मेघतुल्य और जन्ममरणरूप रोगों के नाशक अरहंत भगवान को प्रणाम करो । यह सुनकर तत्काल ही सकलकलाओं के आकर कविवर जाग उठे और चारों ओर देखने लगे परन्तु कुछ भी दिखलाई नहीं दिया । उन्हें बडा विस्मय हुआ । वे अपने घर ही थे कि इतने में नयवन्त भरत मंत्री प्रणाम करते हुए वहां आये, जिन का यश दशोंदिशाओं में फैल रहा है, जो श्रेष्ठ महामात्यवंशरूप आकाश के चन्द्रमा है, जिन का मुख चन्द्रमण्डल के समान और नेत्र नवीन कमलदलों के समान हैं, ॥ २–४ ॥ जिन्हों ने इस खलजन संकुल काल में विनय करके शून्यपथ में जाती हुई सरस्वती को रोक रक्खा और उस का उद्धार किया ॥ ५ ॥ जो ऐयण पिता और देवी माता के पुत्र हैं, जो जिनशासनरूप महल के खंभ हैं, दुस्थितों के मित्र हैं, दंभरहित हैं, परोपकार के भार को उठानेवाले हैं, विद्वानों को कष्ट पहुँचानेवाले सैकडों भयों को दूर करनेवाले हैं, तेज के धाम हैं, गर्वरहित हैं और भव्य हैं ॥ ६–७ ॥ उन्हों ने काव्यराक्षस पुष्पदन्त से कहा कि भैया, क्या तुम सचमुच ही पागल हो गये हो ? तुम उन्मना और छायाहीनसे क्यों दिखते हो ? ग्रन्थरचना करने में तुम्हारा मन क्यों नहीं लगता ? ॥ ८ ॥ क्या मुझ से तुम्हारा

---

१ सरस्वती । २ सुष्टु हतो रुजां रोगाणामोघः संघातो येन स तं । ३ पुण्यतरुमेघं । ४ गतनिद्रो जागरितः । ५आकार । ६ पश्यति । ७ भरतमंत्रिणेति सम्बन्धः श्रीपुष्पदन्तः आलापितः । ८ कन्दो मेघः । ९ महामात्र–महत्तर । १० चन्द्रेण ११ संवृता रक्षिताः सरस्वती । १२ एयण पिता देवी माता तयोः पुत्रेण भरतेन । १३ प्रासाद । १४ मयि पुष्पदन्ते उपकार-भावनिर्वाहकेन । १५ निर्मथकेन । १६ रयेन विमानेन । १७ गर्व रहितेन । १८ कोमलालापे । १९ अपराधः । २० अन्यकाव्यकरणवांछः किं स्वं ।

भणु भणु भणियउं सयलु पडिच्छमि, हउ कयपंजलियरु ओहच्छमि[22] ॥ ९ ॥

घत्ता ।

अथिरेण असारें जीविएण, किं अप्पउ सम्मोहहिँ ।
तुहु सिद्धहे[23] वाणीधेणुअहे, णवरसखीरु ण दोहहिँ ॥ १० ॥
तं णिसुणेप्पिणु दर विहसंतें मित्तमुहारविंदु जोयंतें ।
कसणसरीरें सुद्धकुरूवें, मुद्धापविगब्भि संभूवें ॥ ११ ॥
कासव गोत्ते केसव पुत्ते, कइकुलतिलएं सरसयणिलएं ।
उत्तमसत्तें, जिणपयभत्तें ॥ १२ ॥ (?)
पुप्फयंत कइणा पडिउत्तउ, भो भो भरह णिसुणि णिक्खुत्त ।
कलिमलमलिणु कालु विवरेरउँ, णिग्घिणु णिग्गुणु दुण्णयगारउ ॥ १३ ॥
जो जो दीसइ सो सो दुज्जणु, णिप्फलु णीरसु णं सुक्कउ वणु ।
राउ राउ णं संझहे केरउ, अंतथे पयट्टइ मणु ण महार उ ।
उव्वेउ जे वित्थरइ णिरारिउ, एकु वि पउ विरयवउ भारिउ ॥ १४ ॥

घत्ता ।

दोसेणँ होउ तं णउ भणमि चोज्ज अवरुमणे यक्कउ ।
जगुएउ चडाविउ चाउजिह तिह गुणेण सहवंकउ ॥
जयवि तो वि जिणगुणगणु वण्णमि, किं हं पइं अब्भत्थिउ अवगण्णमि ।

कोई अपराध बन पड़ा है अथवा और किसी रस का उमाह हुआ है अर्थात् कोई दूसरा काव्य बनाने की इच्छा हुई है ? बोलो, बोलो, मैं हाथ जोड़ कर तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, तुम जो कुछ कहोगे मैं सब कुछ देने के लिए तैयार हूं ॥ ९ ॥

इस अस्थिर और असार जीवन से तुम क्यों आप को सम्मोहित कर रहे हो ? तुम्हें वाणीरूप कामधेनु सिद्ध हो गई है, उस से तुम नवरसरूप दूध क्यों नहीं दोहते ? ॥ १० ॥

यह सुनकर मुसकराते हुए और अपने मित्र के मुखकमल की, ओर निहारते हुए कृशशरीर, अतिशय कुरूप, मुग्धादेवी और केशव ब्राह्मण के पुत्र, काश्यपगोत्रीय, कविकुलतिलक, सरस्वतीनिलय, दृढव्रत और जिनपदभक्त पुष्पदन्त कवि ने प्रत्युत्तर दिया कि, हे भरत, यह निश्चय है कि इस कलिमलमालिन, निर्दय, निर्गुण और दुर्नीतिपूर्ण विपरीत काल में जो जो दिखते हैं सो सब दुर्जन हैं, सब सूखे हुए वन के समान निष्फल और नीरस हैं। राजा लोग सन्ध्याकाल की लालिमा के सदृश हैं । इस लिए मेरा मन अर्थ में अर्थात् काव्य रचना में प्रवृत्त नहीं होता है। इस समय मुझे जो उद्वेग हो गया है, उस से एक पद बनाना भी मेरे लिए भारी हो गया है ॥ ११–१४ ॥

यह जगत यदि दोष से वक्र होता तो मेरे मन में आश्चर्य नहीं होता किन्तु यह तो चढ़ाये हुए चाप (धनुष) सदृश गुण से भी वक्र होता है (धनुष की डोरी ' गुण ' कहलाती है। धनुष गुण या डोरी चढ़ा ने से टेढा होता है) ॥ १५ ॥

यद्यपि जगत की यह दशा है तो भी मैं जिन गुणवर्णन करूंगा । तुम मेरी अभ्यर्थना करते हो, तब मैं तुम्हारी अवगणना कैसे कर सकता हूं ? तुम त्याग भोग और भावोद्गम शक्ति से और निरन्तर की जानेवाली कविमैत्री से

---

२१ सर्वे प्रतीच्छामि । २२ एष तिष्ठामि । २३ तव सिद्धायाः ।

१ भरतस्य । २ सुष्ठु कुरूपेण । ३ मुग्धादेवी । ४ वाणीनिलयेन मन्दिरेण । ५ सत्वेन दृढव्रतेन । ६ निश्चितं । ७ विपरीतः । ८ शुष्कवनमिव जनः । ९ राजा सन्ध्यारागसदृशः । १० शब्दार्थे न प्रवर्तते । ११ एकमपि पदं रचितुं भारो महान् । १२ दोषेण सह जगत् चेत् वक्रं भवति तदाश्चर्यं न, किन्तु गुणेनापि सह वक्रं तदाश्चर्यमाचित्ते । १३ चापः ।

चायें भोयं भाउग्गमसात्तिए, पइं अणवरय रइय कइमित्तिए ॥ १६ ॥
राउ सालिवाहणु वि विसेसिउ, पइं णियजसु भुवणयले पयासिउ ।
कालिदासु जें खंधें णीयउ, तहो सिरिहरिसहो तुहुं जगि बीयउं ॥ १७ ॥
तुहुं कइकामधेणु कइवच्छलु, तुहुं कइकप्परुक्खु ढोइयफलु ।
तुहु कइ सुरवरकीलागिरिवरु, तुहुं कइ रायहंससमाणससरु ॥ १८ ॥
मंदुं मयालसु मयणुम्मत्तउ, लोउ असेसुवि तिठ्ठए भुत्तउ ।
केण वि कव्वपिसल्लउ मणिओ, केण वि थट्ठु भणेवि अवगणिणउ ॥
णिच्चमेव सब्भाव पउंजिउं, पइं पुणु विणउ करे वि हउं रंजिउं ॥ १९ ॥

घत्ता ।

धणु तणुसमु मज्झु ण तं गहणु णेहु णिकारिमु इच्छमि ।
देवीसुअ सुदणिहि तेण हउं णिलए तुहारए अच्छमि ॥ २० ॥
महु समयागमे जायहे ललियहे, वोल्लइ कोइल अंबयकलियहे ।
काणणे चंचरीउ रुणुरुंटइ, कीरु किणण हरिसेण विसट्टइ ॥ २१ ॥
मज्झु कइत्तणु जिणपयभत्तिहे, पसरइ णउ णियजीवियवित्तिहे ।
विमलगुणाहरणंकियदेहउ, पह भरह णिसुणइ पइं जेहउं ॥ २२ ॥
कमलगंधु घिप्पइ सारंगें, णउ सालूरें णीसारंगें ।
गमणलील जा कयसारंगें सा किं णासिज्जइ सारंगे ॥ २३ ॥
वड्ढियसज्जण दूसणवसणें, सुकइ कित्ति किं हम्मइ पिसुणें ।
कहमि कव्वु वम्महसंहारणु, अजियपुराणु भवण्णवतारणु ॥ २४ ॥

शालिवाहन राजा से भी बढ़ गये हो और अपने यश को तुमने पृथ्वीतलपर प्रकाशित कर दिया है । इस समय जगत में तुम दूसरे श्रीहर्ष हो जिसने कविकालिदास को अपने कन्धे पर चढ़ा लिया था । ६- ७ ॥ तुम कविकामधेनु, कविवत्सल, कविकल्पवृक्ष, कविनन्दनवन और कविराजहंस समान सरोवर हो ॥१८॥ ये सारे लोग मूर्ख, मदालस, और मदोन्मत्त बनें रहें, (इन से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं) । किसी ने मुझे काव्यराक्षस कह कर माना और किसी ने ठूँठ कह कर मेरी अवमानना की । परन्तु तुमने सदा ही सद्भावों का प्रयोग करके और विनय करके मुझे प्रसन्न रक्खा है ॥ १९ ॥

मैं धन को तिन के के समान गिनता हूं और उसे नहीं चाहता हूं । हे देवीसुत श्रुतनिधि भरत, मैं अकारण प्रेम का भूखा हूं और इसी से तुम्हारे महल में रहता हूं ॥ २० ॥

वसन्त का आगमन होनेपर जब आमों में सुन्दर मौर आते हैं तब कोयल बोलती है और बगीचों में भौंरें गुंजारव करते हैं, ऐसे समय में क्या तोते भी हर्ष से नहीं बोलने लगते हैं ? ॥ २१ ॥ जिन भगवान के चरणों की भक्ति से ही मेरी कविता स्फुरायमान होती है अपने जीवित की वृत्ति से या जीविकानिर्वाह के खयाल से नहीं । हे विमलगुणाभरणांकित हे भरत, अब मेरी यह रचना सुन ॥ २२ ॥ कमलों की सुगन्ध भ्रमरगण ग्रहण करते हैं, निःसार शरीर मेंढ़क नहीं । हाथी या हंस जिस चाल से चलते हैं, उस से क्या हरिण चल सकते हैं? इसी तरह से जिन्हें सज्जनों को दोष लगाने की आदत पड गई है, ऐसे दुर्जन क्या सुकवियों की कीर्ति को मिटा सकते हैं ? अब मैं मन्मथसंहारक और भवसमुद्रतारक अजितपुराण नामक काव्य को कहता हूं ।

---

१४ त्यागः । १५ स्कन्धे धृतो येन श्रीहर्षेण । १६ तेन सदृशो महान् त्वं । १७ मूर्खो लोकः । १८ सद्भाव । १९ अकृत्रिम धर्मोनुरागं ।

१ वसन्तसमागमे । २ जातायाः सहकारकलिकायाः । ३ आम्र कलिकानिमित्तं । ४ गृह्यते । ५ भ्रमरेण । ६ भेकेन । ७ निःसारांगेण निकृष्ट शरीरेण । ८ हस्तिना हंसेन वा । ९ मृगेण । १० हन्यते । ११ कथयामि । १२ मन्मथ ।

परिशिष्ट नं० ३

(उत्तरपुराण के अन्त का कुछ अंश ।)

णिव्वुए वीरे गलियमयरायउ इंदभूइ गणि केवलि जायउ ।
सो विउलइरिहे गउ णिव्वाणहो कम्मविमुक्कओ सासयठाणहो ॥ १ ॥
तहिं वासरे उप्पण्णउ केवलु मुणि हे सुधम्महो पक्खालियमलु ।
तं णिव्वाणए जंबू णामहो पंचमु दिव्वणाणु हयकामहो ॥ २ ॥
णंदि सुणंदिमित्तु अवरुवि मुणि, गोवद्धणु चउत्थु जलहरझुणि ।
ए पच्छए समत्थ सुयपारय णिरसियमिच्छामयभवणीरय ॥ ३ ॥
पुणु वि विसहु जइ पोट्ठिलु खत्तिउ जयणाउ वि सिद्धत्थुह यत्तिउ ।
दिहिसेणंकउ विजउ बुद्धिल्लउ, गंगु धम्मसेणु वि णीसल्लउ ॥ ४ ॥
पुणु णक्खत्तउ पुणु जसवालउ, पंडु णामु धुवसेणु गुणालउ ।

घत्ता ।

अणु कंसउ अप्पउ जिणे वि थिउ पुणु सुहद्दु जणसुहयरु ।
जसभद्दु अखुद्दु अमंदमइ णाणें णावइ गणहरु ॥ ५ ॥
भद्दबाहु लोहंकु भडारउ आयारंगधारि जससारउ ।
एयहिं सव्वु सत्थु मणे माणिउ, सेसहिं एक्कु देसु परियाणिउ ॥ ६ ॥
जिणसेणेण वीरसेणेण वि जिणसासणु सेविउ मयगिरिपवि ।
पुव्वयाले णिसुणिउं सइं भरहें, राएं रिवु-वहुदावियविरहें ॥ ७ ॥

× × ×

एवं रायपरिवाडिए णिसुणिउं, धम्मु महामुणिणाहहिं पिसुणिउ ।
सेणियराउ धम्म सोयारहं, पच्छिल्लउ वज्जियभयभारहं ॥ ८ ॥
ताहमि पच्छए वहुरसणडिए, भरहे काराविउ पद्धडियए ।
पढेवि सुणेवि आयण्णेवि हयकले, पयडिउ मम्मइएं इय माहियले ॥ ९ ॥
कम्मक्खयकारणु गणे दिट्ठउं, एम महापुराणु मइं सिट्ठउं ।
एत्थु जिणिंद मग्गे ओणाहिउ, बुद्धिविहीणें जं मइं साहिउ ॥ १० ॥
तं महो खमहो तिलोयहो सारी, अरुहुग्गय सुअएवि भडारी ।
चउवीस वि महुं कलुस खयंकर, देंतु समाहि वोहि तित्थंकर ॥ ११ ॥

घत्ता ।

दुहुं छिंदउ णंदउ भुयणयले णिरुवम कण्णरसायणु ।
आयण्णउ मण्णउ ताम जणु जाम चंदु तारायणु ॥ १२ ॥
वरिसउ मेहजालु वसुहाराहि, महि पिच्चउ वहु धण्णपयारहिं ।
णंदउ सासणु वीर जिणेसहो, सेणिउ णिग्गउ णरयणिवासहो ॥ १३ ॥
लग्गउ ण्हवणारंभहो सुरवइ, णंदउ पय सुहुं णंदउ णरवइ ।
णंदउ देसु सुहिक्खु वियंभउ, जणु मिच्छत्तु दुचित्तु णिसुंभउ ॥ १४ ॥

दुःखों का नाश हो और यह कर्णरसायन काव्य पृथ्वीतल पर विस्तार लाभ करे । जब तक चन्द्रमा और तारे हैं, तब तक लोग इसे सुनें और इसका आदर करें ॥ १२ ॥

पृथ्वी पर मेघ खूब बरसें और तरह तरह के धान्य पकें, वीरभगवान का शासन बढ़े, राजा श्रेणिक नरक निवास से बाहर निकले और (तीर्थंकर होने पर) इन्द्र उस का जन्माभिषेक करें । प्रजा का सुख बढ़े और राजा आनन्दित हो । देश में सुभिक्ष (सुकाल) हो और लोगों का मिथ्यात्व भाव नष्ट हो ॥ १३–१४ ॥ अंगीकृत

पडिवरणए पडिपालण सूरहो, होउ संति भरहहो गिरिधीरहो ।
होउ संति बहु गुणगुणवंतहं, संतहं दयवंतहं भयवंतहं ॥ १५ ॥
होउ संति बहु गुणहि महल्लहो, तासु जे पुत्तहो सिरि देवल्लहो ।
एउं महापुराणु रयणुज्जले, जे पयडेवउ सयले धरायले ॥ १६ ॥
चउविह दाणुज्जय कयचित्तहो, भरह परमसब्भाव सुमित्तहो ।
भोगल्लहो जयजसविच्छुरियहो, होउ संति णिरु णिरुवमचरियहो ॥ १७ ॥
होउ संति णण्णहो गुणवंतहो, कुलवच्छल सामत्य महंतहो ।
णिच्चमेव पालियजिणधम्महं, होउ संति सोहण गुणवम्महं ॥ १८ ॥
होउ संति सुअणहो दंगइयहो, होउ संति संतहो संतइयहो ।
जिणपयपणमण वियलियगव्वहं, होउ संति णीसेसहं भव्वहं ॥ १९ ॥

घत्ता ।

इय दिव्वहो कव्वहो तणउं फलु लहुं जिणणाहु-पयच्छउ ।
सिरि भरहहो अरुहहो जहिं गमणु पुप्फयंतु तहिं गच्छउ ॥ २० ॥
सिद्धिविलासिणि मणहरदूयं, मुद्धाएवी तणुसंभूयं ।
णिद्धणसधणलोयसमचित्तें, सव्वजीवणिक्कारणमित्तें ॥ २१ ॥
सद्दसलिल परिवड्ढियसोत्तें, केसवपुत्तें कासवगुत्तें ।
विमल सरासइ जणियविलासें, सुण्णभवण-देवउलणिवासें ॥ २२ ॥
कलिमल पवल पडल परिचत्तें, णिग्घरेण णिप्पुत्तकलत्तें ।
णइवावीतलाय सरण्हाणें, जर चीवरवक्कल परिहाणें ॥ २३ ॥
धीरें धूलीधूसरियंगें, दूरयरुज्झिय दुज्जणसंगें ।
महि सयणयलें करपंगुरणें, मग्गिय पंडियपंडियमरणें ॥ २४ ॥
मण्णखेडपुरवरे णिवसंतें, मणे अरहंतु देउ झायंतें ।
भरहमणणिज्जें णयणिलएं, कव्वपबंधजणियजणपुलएं ॥ २५ ॥
पुप्फयंतकयणा धुयपंकें, जइ अहिमाणमेरुणामंकें ।

पालन में शूर और पर्वत के समान धीर भरत (मंत्री) को शान्ति प्राप्त हो। गुणवन्त, दयावन्त, ज्ञानवन्त सज्जनों को शान्ति प्राप्त हो ॥ १५ ॥ उस के (भरत के ?) पुत्र अतिशय गुणवन्त श्री देवल्ल को शान्ति मिले जिस ने कि इस महापुराण को रत्नोज्ज्वल धरातल पर फैलाया और जिस का चित्त चारों प्रकार के दान करने में उद्यत रहता है तथा जो भरत के लिए परम सद्भावयुक्त मित्र के तुल्य है। जिस का यश संसार में फैल रहा है और जिस का चरित्र उपमा-रहित है, उस भोगल्ल को शान्ति प्राप्त हो ॥ १६–१७ ॥ कुलवत्सल, समर्थ, गुणवन्त और महन्त णण्ण को शान्ति प्राप्त हो। निरन्तर जैन धर्म का पालन करनेवाले सोहण और गुणवर्म को शान्ति मिले ॥ १८ ॥ सुजन दंगइय और सन्त संतइय को शान्ति प्राप्त हो। जिनभगवान के चरणों में मस्तक झुकानेवाले और गर्वरहित अन्य सब भव्यजनों को भी शान्ति मिले ॥ १९ ॥

इस दिव्य काव्य की रचना का फल जिननाथ की कृपा से मैं यह चाहता हूं कि श्री भरत और अर्हंत का गमन जहां हो पुष्पदन्त भी वहीं जावे ॥ २० ॥ सिद्धिरूपी विलासिनी के मनोहर दूत, मुग्धादेवी के पुत्र, निर्धनों और सधनों को बराबर समझनेवाले, सर्वजीवों के निष्कारण मित्र, शब्द सलिल से बंढा है काव्य स्रोत जिन का, केशवके पुत्र, काश्यप गोत्रीय, विमल सरस्वती से उत्पन्न विलासोंवाले, शून्य भवन और देव कुलों में रहनेवाले, कलिकाल के मल के प्रबल पटलों से रहित, विना घरद्वार के, पुत्रकलत्रहीन, नदी, वापिका और सरोवर में स्नान करनेवाले, फटे कपड़े और वल्कल पहननेवाले, धूलिधूसरित अंग, दुर्जनों के संग से दूर रहनेवाले, जमीन पर सोनेवाले, अपने हाथों को ही ओढनेवाले, पण्डितपण्डितमरण की प्रतीक्षा करनेवाले, मान्यखेट पुर में निवास करनेवाले, मन में अरहन्त देवका ध्यान करनेवाले, भरतमंत्रीद्वारा सम्मानित, नीति के निलय, अपने काव्यरचनासे लोगों को पुलकित करनेवाले, पापरूप कीचड़ जिन क

कयउं कव्वु भत्तिए परमत्थें, छसय छडोत्तर कयसामत्थें ॥ २६ ॥
कोहण संवच्छरे आसाढए, दहमए दियहे चंदरुइरूढए ॥

घत्ता ।

सिरि अरुहहो भरहहो बहुगुणहो कइकुलतिलएं भासिउ ।
सुपहाणु पुराणु तिसट्ठिहिमि पुरिसहं चरिउ समासिउ ॥ २७ ॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकइपुप्फयंत विरइए महाकव्वे दुइत्तरसइमो परिच्छेओ समत्तो ॥ १०२ ॥

(प्राचीन पत्र) संवत् १६३० वर्षे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे पूर्णिमातिथौ कविवासरे उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रे नेमिनाथचैत्यालये श्रीमूलसंघे वलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भ० श्रीपद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीशु [भचन्द्रदेवास्त] त्पट्टे भ० श्रीजिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीप्रभाचन्द्रदेवास्तात्सिष्य मं० श्रीध...............स्तत्सिष्य मं० श्री ललितकीर्ति देवास्तत्शिष्य मं० श्री चंद्रकीर्ति देवास्तद............(खंडेल) वालान्वये सावडा गोत्रे सा० धेल्हा तद्भार्या धिल्हसरिस्तत्पुत्रौ द्वौ प्र० सा..............छायलदे तत्पुत्रः सा० वीरम तद्भार्या वीरमदे तत्पुत्रः सा० नाथू तद्भार्या..............तीय जिनपूजापुरंदर सा० श्री धणराज तद्भार्ये द्वे प्र० सती सीताक..............

परिशिष्ट नं० ४

(महापुराण के परिच्छेदों के प्रारंभिक पद्य)

१ आदित्योदयपर्वतादुरुतराच्चन्द्रार्कचूडामणे-
राहेमाचलतः कुशेशनिलयादासेतुबन्धाद्दृढात् ।
आपातालतलादहीन्द्रभवनादास्वर्गमार्गे गता
कीर्तिर्यस्य न वेत्ति भद्र भरतस्याभाति खण्डस्य च ॥

३ बलिजीमूतदधीचिषु सर्वेषु स्वर्गतामुपगतेषु ।
संप्रत्यनन्यगतिकस्त्यागगुणो भरतमावसति ॥

४ आश्रयवसेन भवति प्रायः सर्वस्य वस्तुनोऽतिशयः ।
भरताश्रयेण संप्रति पश्य गुणा मुख्यतां प्राप्ताः ॥

५ भ्रूलीलां त्यज मुंच संगतकुचद्वंद्वादिगर्वोत्तमा,
मा त्वं दर्शय चारुमध्यलतिकां तन्वंगि कामाहता ।
मुग्धे श्रीमदनिंद्यखंडसुकवेर्बंधुर्गुणैरुन्नतः
स्वप्नेप्येष परांगनां न भरतः शौचांबुधेर्वांछति ॥

६ श्रीर्वाग्देव्यै कुप्यति वाग्देवी द्वेष्टि संततं लक्ष्म्यै ।
भरतमनुगम्य सांप्रतमनयोरात्यांतिकं प्रेम ॥

७ हंहो भद्र प्रचंडावनिपतिभवने त्यागसंख्यातकर्त्ता
कोयं श्यामप्रधानं प्रवरकरिकराकारबाहुः प्रसन्नः ।
धन्यः प्रालेयपिण्डोपमधवलयशो धौतधात्रीतलांतः-
ख्यातो बन्धुः कवीनां भरत इति कथं पांथ जानासि नो त्वं ॥

धो गया है और अभिमानमेरु जिन का चिन्ह या उपनाम है, उन 'पुष्पदन्त कवि' ने यह काव्य भक्ति के वश हो कर ६०६ के क्रोधन नामक संवत्सर में आसाढ के दशवें दिन सोमवार को बनाया ॥ २५-२६ ॥ कविकुलतिलक ने पुराणप्रसिद्ध त्रेसठ पुरुषों का चरित संक्षेप से वर्णन किया ॥ २७ ॥

८ मातर्वसुंधरि कुतूहलिनो ममैतदापृच्छतः कथय सत्यमपास्य साम्यं ।
त्यागी गुणी प्रियतमः सुभगोऽभिमानी किं वास्ति नास्ति सदृशो भरतार्यतुल्यः ॥

९ एको दिव्यकथाविचारचतुरः श्रोता बुधोऽन्यः प्रिय
एकः काव्यपदार्थसंगतमतिश्चान्यः परार्थोद्यतः ।
एकः सत्कविरन्य एक महतामाधारभूतो बुधा
द्वावेतौ सखि पुष्पदन्त-भरतौ भद्रे भुवो भूषणौ ॥

१० जेणं हम्मं रम्मं दीवओ चंदबिंबं घरत्ती पल्लंको दो वि सत्था सुवत्थं ।
पिया णिद्दा णिच्चं कव्वकीलाविणोओ अदीणत्तं वित्तं ईसरो पुप्फयंतो ॥

१३ सूर्यात्तेज गभीरिमा जलनिधेः स्थैर्यं सुराद्रेर्विधोः
सौम्यत्वं कुसुमायुधात्तु सुभगं त्यागं बलेः संभ्रमाद् ।
एकीकृत्य विनिर्मितोऽतिचतुरो धात्रा सखे सांप्रतं
भरतार्यो गुणवान् सुलब्धयशसः खण्डः कवेर्वल्लभः ॥

१४ केलासुम्भासिकंदा धवलदिसिगओगिण्णदंतांकुरोहा,
सेलाही बद्धमूला जलहिजलसमुब्भूयडिंडीरपत्ता ।
बंभंडे वित्थरंती अमयरसमयं चंदबिंबं फलंती,
फुल्लंती तारओहं जयइ णवलया तुज्झ भरहेसकित्ती ॥

१५ त्यागो यस्य करोति याचकमनस्तृष्णांकुरोच्छेदनं,
कीर्तिर्यस्य मनीषिणां वितनुते रोमांचचर्चं वपुः ।
सौजन्यं सुजनेषु यस्य कुरुते प्रेमांतरं निर्वृतिं,
श्लाघ्योऽसौ भरतः प्रभुर्वत भवेऽत्कार्भिर्गिरां सूक्तिभिः ॥

१६ प्रतिगृहमटति यथेष्टं बंदिजनैः स्वैरसंगमावसति ।
भरतस्य वल्लभाऽसौ कीर्तिस्तदपीह चित्रतरं ॥

१७ बलिभंगकंपिततनु भरतयशः सकलपाण्डुरितकेशम् ।
अत्यंतवृद्धिगतमपि भुवनं बंभ्रमति तच्चित्रम् ॥

१८ शशधरबिम्बात्कान्तिस्तेजस्तपनाद्गभीरतामुदधेः ।
इति गुणसमुच्चयेन प्रायो भरतः कृतो विधिना ॥

१९ श्यामरुचिनयनसुभगं लावण्यप्रायमंगमादाय ।
भरतच्छलेन संप्रति कामः कामाकृतिमुपेतः ॥

२१ यस्य जनप्रसिद्धमत्सरभञ्जनवमपास्य चारुणि,
प्रविहतपक्षपातदानश्रीरुरसि सदा विराजते ।
वसति सरस्वती च सानन्दमनाविलवदनपंकजे,
स जयति जयतु जगति भरतेश्वर सुखमयममलमंगलः ॥

२२ मदकरदलितकुम्भमुक्ताफलकरभरभासुराननना,
मृगपतिनादरेण यस्योऽद्भूतमनघमनर्घमासनम् ।
निर्मलतरपवित्रभूषणगणभूषितवपुरुदारुणा,
भारतमल्ल सास्तु देवी तव बहुविधमंबिका मुदे ॥

२३ अंगुलिदलकलापमसमद्युति नखनिकुरंबकर्णिकं

१ यही पद्य ५० वें परिच्छेद के प्रारंभ में भी दिया है। २ यह पद्य ६५ वें परिच्छेद के प्रारंभ में भी है। ३ यह १०२ वें परिच्छेद में भी है। ४ यह ३९ वें परि० में भी है

सुरपतिमुकुटकोटिमाणिक्यमधुव्रतचक्रचुंबितम् ।
विलसदग्रप्रतापनिर्मलजलजन्माविलासकोमलं
घटयतु मंगलानि भरतेश्वर तव जिनपादपंकजम् ॥

२४ हिमगिरिशिखरनिकरपरिपंडुरधवलियगगनमण्डलं
पुलकमिवातनोति केतकतरुवरतरुकुसमसंकटे ।
विकसितपणिफणासु सुरसरितामणिरुचिगतमधः-
क्षितेरिदमतिचित्रकारि भरतेश्वर जगतस्तावकं यशः ॥

२५ उन्नतातिमनुमात्रपात्रता भाति भद्र भरतस्य भूतले ।
काव्यकीर्तिघटारवो गृहे यस्य पुष्पदंतो दिशागजः ॥

२६ घनधवलताश्रयाणामचलास्थितिकराणां मुहुर्भ्रमताम् ।
गणनैव नास्ति लोके भरतगुणानामरीणां च ॥

२७ गुरुधर्मोद्भवपावनमभिनंदितकृष्णार्जुनगुणोपेतम् ।
भीमपराक्रमसारं भारतमिव भरत तव चरितं ॥

२८ मुखमलिनोदरसद्मानि गुणहृतहृदये सदैव यद्वसति ।
चित्रमिदमत्र भरते शुक्लापि सरस्वती रक्ता ॥

२९ तंत्रीवाद्यैरनिद्यैर्वरकविरचितैर्गद्यपद्यैरनेकैः,
कांतं कुंदावदातं दिशि दिशि च यशो यस्य गीतं सुरौघैः ।
काले तृष्णाकरालं कलिमलकलितेप्यद्य विद्याविनोदो
सोयं संसारसारः प्रियसखि भरतो भाति भूमण्डलेऽस्मिन् ॥

३ वंभंडाहंडलखोणिमंडलुच्छलियकित्तिपसरस्स ।
खंडस्स समं समसीसियाए कइणो ण लज्जंति ॥

३३ विनयांकुरसातवाहनादौ नृपचक्रे दिवमीयुषि क्रमेण ।
भरत तव योग्यसज्जनानामुपकारो भवति प्रसक्त एवं ॥

३४ तीव्रापद्दिवसेपु वन्धुरहितेनैकेन तेजस्विना
सन्तानक्रमतो गतापि हि रमाकृष्टा प्रभोः सेवया ।
यस्याचारपदं वदंति कवयः सौजन्यसत्यास्पदं
सोऽयं श्रीभरतो जयत्यनुपमः काले कलौ सांप्रतम् ॥

३५ इति भरतस्य जिनेश्वरसामायिकशिरोमणेर्गुणान्वक्तुम् ।
मातुं च वार्द्धितोयं चुलुकैः कस्यास्ति सामर्थ्यम् ॥

५६ अत्र प्राकृतलक्षणानि सकला नीतिः स्थितिश्छन्दसा-
मर्थालंकृतयो रसाश्च विविधास्तत्त्वार्थनिर्णीतयः ।
किंचान्यद्यदिहास्ति जैनचरिते नान्यत्र तद्विद्यते
द्वेवे तौ भरतेश-पुष्पदसनौ सिद्धं ययोरीदृशम् ॥

६३ वन्धुः सौजन्यवार्द्धेः कविखलधिषणाध्वांतविध्वंसभानुः
प्रौढालंकारसारामलतनुविभवा भारती यस्य नित्यम् ।
वक्त्रांभोजानुरागक्रमनिहितपदा राजहंसीव भाति
प्रोद्यद्गंभीरभावा स जयति भरते धार्मिके पुष्पदन्तः ॥

६४ आखंडोड्डुमराच्चंडमरुकं चंडीशमाश्रित्य यः
कुर्वन्काममकांडतांडवविधिं डिंडीरपिंडच्छविः ।
हंसाडंवरमुंडमंडललसद्भागीरथीनायकं

---

१ यही पद्य २७ वें परिच्छेद में भी दिया है। २ यही पद्य ८८ वें परिच्छेद में भी है। ३ यही पद्य ४० वें परिच्छेद में भी है। ४ पूने की प्रति में यह पद्य तेरहवें परिच्छेद में भी लिखा है।

वांछन्नित्यमहं कुतूहलवती खंडस्य कीर्तिः कृतेः।

६५ आजन्मं कवितारसैकधिषणा सौभाग्यभाजो गिरां
दृश्यन्ते कवयो विशालसकलग्रन्थानुगा बोधतः।
किंतु प्रौढनिरूढगूढमतिना श्रीपुष्पदंतेन भोः
साम्यं बिभ्रति नैव जातु कविना शीघ्रं त्वतः प्राकृतैः॥

६६ यस्येह कुंदामलचन्द्ररोचिः समानकीर्तिः ककुभां मुखानि।
प्रसाधयंती ननु बंभ्रमीति जयत्वसौ श्रीभरतो नितान्तम्॥
पीयूषसूतिकिरणा हरहासहारकुंदप्रसूनसुरतीरिरिपुशङ्खनागाः।
क्षीरोदशेषधवलसत्तमहंस चैव किं खंडकाव्यधवला भरतस्तु यूयम्॥

६७ इह पठितमुदारं वाचकैर्गीयमानं इह लिखितमजस्रं लेखकैश्चारुकाव्यम्।
गतवति कविमित्रे मित्रतां पुष्पदन्ते भरत तव गृहेस्मिन्भाति विद्याविनोदः॥

६८ चंचच्चंद्रमरीचिचंचुरुचुरोचातुर्यचक्रोचिंता
चंचंती विचटच्चमत्कृतिकविः प्रोद्दामकाव्यक्रियाम्।
अर्चंती त्रिजगत्सुकोमलतया बांधुर्यधुर्या रसैः
खण्डस्यैव महाकवेः सभरतान्नित्यं कृतिः शोभते॥

८० लोके दुर्जनसंकुले हतकुले तृष्णावसे नीरसे
सालंकारवचोविचारचतुरे लालित्यलीलाधरे।
भद्रे देवि सरस्वति प्रियतमे काले कलौ सांप्रतं
कं यास्यस्यभिमानरत्ननिलयं श्रीपुष्पदंतं विना॥

परिशिष्ट नं० ५

(यशोधरचरित के कुछ अंश ।)

तिहुयणसिरिकंतहो अइसयवंतहो अरहंतो वम्महहो।
पणविवि परमेट्ठिहिं पविमलदिट्ठिहिं चरणजुयलु णायसयमहहो॥ ध्रुवकम्।
कुंडिल्लगुत्तणहदिणयरासु, वल्लहनरिंदघरमहयरासु।
णण्णहु मंदिरणिवसंतु संतु, अहिमाणमेरु कइ पुप्फयंतु॥
चिंतइ हो वण नारीकहाए, पज्जत्तउ कय दुक्खयपहाए।
कय धम्मणिबद्धी कावि कहावि, कहियाइं जाइ सिव सोक्खलच्छिमि॥

× × ×

अग्गइ कइराउ पुप्फयंत सरसइणिलओ।
देवियहं सरूओ वण्णइ कइयणकुलतिलओ॥[९]

× × ×

इय जसहरमहारायचरिए महामहल्ल णण्णकण्णाहरणे महाकइ पुप्फयंतविरइए महाकव्वे जसहररायपहबंधो नाम पढमो परिच्छेओ सम्मत्तो॥ १॥

नित्यं यो हि पदारविन्दयुगलं भक्त्या नमत्यर्हता-
मर्थं चिंतयति त्रिवर्गकुशलो जैनश्रुतानां भृशम्।
साधुभ्यश्च चतुर्विधं चतुरधीर्दानं ददाति त्रिधा
स श्रीमानिह भूतले सह सुतैर्नन्नाभिधो नंदतात्॥

× × ×

---

१ शोभमान। २ चपल। ३ चौर्य। ४ समूह। ५ शोभमाना। ६ विद्युतत् चमत्कृत्या कवयो यया। ७ अच्छंती ८ मनोहरता। ९ यह पद्य बम्बई की प्रति में नहीं है।

नक्षत्राधीशरोचिःप्रचयशुचितरोद्दामकीर्त्यां निकेतो,
निर्णीताशेषशास्त्रस्त्रिदशपतिनुताशेषवित्पादभक्तः।
भ्राता भव्यप्रजानां सततमिह भवाम्भोधिसंसारभीरु-
र्नीतिज्ञो निर्जिताक्षः प्रणयविनयतान्नंदतान्नन्ननामा ॥[1]

× × ×

आश्रान्तदानपरितोषितवन्यवृन्दो दारिद्र्यरौद्रकरिकुंभविभेददक्षः।
श्रीपुष्पदन्तकविकाव्यरसाभितृप्तः श्रीमान्सदा जगति नंदतु नन्ननामा ॥[2]

× ×

गंधव्वें कण्हडणंदणेण आयइं भवाइं किय थिरमणेण।
महु दोसु ण दिज्जइ पुव्वें कइउ कइवच्छराय तं सुत्तु लहइ ॥[3]

× ×

पावनिसुंभणि मुद्दावंभणि, उअरुप्पणिंण सामलवण्णि।
कासवगुत्ति केसवपुत्ति, जिणपयभत्ति धम्मासत्ति ॥
वयसंजुत्तं उत्तमसत्तं, वियलियसंकं अहिमाणंकं।
पहसियतुंडं कमणा खंडं, रंजियबुहसह कयजसहरकह ॥
जो आयणणइ चंगउ मणणइ, लिहइ लिहावइ पढइ पढावइ।
जो मणसावइ सो नर पावइ, विहुणियघणरय सासयसंपय ॥
जणवयनीरसि दुरियमलीमसि, कयनिंदायरि दूसहि दुहयरि।
पडियकवालए नरकंकालए, बहुरंकालए अइदुक्कालए ॥
पवरागारिं सरसाहारिं, सन्हइ चेलइ वरतंबोलइ।
महु उवयारिउ पुण्णिप्पेरिउ, गुणभत्तिल्लउ णण्णमहल्लउ ॥
होउ चिराउसु वरिसउ पाउसु, तिप्पउ मेइणि धणकणदाइणि।
विलसउ गोविणि णच्चउ कामिणि, घुम्मउ मद्दलु पसरउ मंगलु ॥
सन्ति वियंभउ दुक्ख निसुंभउ, धम्मुच्छाहिं सहुनरनाहिं।
सुह नंदउ पय जय परमप्पय, जय जय जिणवर जय भवभयहर ॥
विमलु सुकेवलणाणसमुज्जलु, मइ उप्पज्जउ इच्छिउ दिज्जउ।
मइ अमुणंतइ कव्वु कुणंतइ, जं हीणाहिउ काइवि साहिउ ॥

घत्ता—तं माइ महासइ देवि सरासइ निहयसयलसंदेह दुह।
महु खमहु भडारी तिहुयणसारी पुप्फयंत जिणवयणरुह ॥ २३ ॥

इयजसहरमहारायचरिए..............चउत्थो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ छ ॥ मंगलमस्तु। संवत् १३६० वर्षे आषाढ सुदि १३ शनौ अद्येह श्रीमहाराजाधिराज श्रीसुरत्राण महमदराज्ये दुर्गमंडप पडिगनायागे वगडी नामनि प्राग्वाटवंशीय सा० भावडसंताने सा० मल्हौ पुत्र रामा भ्रातृ देल्हाकेन ह्याभ्यां जसोधरपुस्तिका लेखिता। सा चिरं नंदतु ॥ छ ॥ शुभमस्तु ॥

परिशिष्ट नं० ६

(आदिपुराण की प्रति लिखानेवाले की प्रशस्ति।)

पणविवि रिसहेसरु विणिहयपणसरु लोयालोय पयासणु।
वरमुत्तिरमणवरु जम्ममरणहरु कम्ममहारि विणासणु ॥
मयनयणवाणससहरमिएसु संवच्छरेसु पच्छइ गएसु।
विक्कमरायहो सुइसेयपक्ख णवमी बुहवारे सचित्तरिक्ख ॥
गोवंगिरीणयरि णिउ डुंगरिंदु, हुउ पयपाडियसामंतविंदु।

---

१ यह पद्य तीसरे परिच्छेद के प्रारंभ में है। २ यह पद्य चौथे परिच्छेद के प्रारंभ का है, परन्तु बम्बई और पूने की दोनों प्रतियों में नहीं है। छपी हुई भाषावली प्रति में है। ३ यह पद्य बम्बई की प्रति में नहीं है।
४ मद–नयन–वाण–शशधर मितेसु, अर्थात् वि० संवत् १५२१। ५ ग्वालियर–गोपाचल। ६ डूंगर सिंहराजा।

तहो सुउ सकित्तिधवलियदियंतु सिरिकित्ति सिंहु णिवलच्छिकंतु ॥
सिरिकट्ठसंगमंडणु मुणिंदु, गुणकित्ति जईसरु जए आणिंदु ।
जसकित्ति कित्ति मंडिय तिलोउ तहो सीसु मलयकित्ति जिअसोउ ॥
गुणभद्दु भद्दु तहो पट्टि सूरि जें जिणवयणामिउ रसिउ भूरि ।
सिरि जइसवाल-कुलणह ससंकु, सिरि उल्हासाहु सया असंकु ॥
तहो जाया गयसिरि णामधेय, तहि सुअ हंसराजु दया अमेय ।
उल्हा चउधरियहु णारि अण्ण, भावसिरि णाम णियगुणपसण्ण ॥
तहे पुत्त चयारि हयारिमल्ल, सिरि पउमसिंहु जिट्ठु अतुल्ल ।
लच्छीहरुमाणिकु मणिसमाणु, घेना रायालयदीवमाणु ॥

घत्ता—सिरि हंसराय चउधरिय घरे विजसिरि भज्जा मह्हिया ।
तहे सुय गुणसायर सुहपउरेसर परिमियमयगणरहिया ॥

तहिं ल्हला रयणु सुबुद्धिधामु, मयणुजि वीरु मंडेहिहाणु ।
सिरि पउमसिंह भज्जा सुपुज्ज, वीराणामें वरगुणसमुज्ज ॥
तहे सुउ सोनिग णामेण धीरु, सूआ घरिणि पसहु जणि अभीरु ।
वीई वल्लहलडहंगवग्ग, वीधो हिहाण सयदलकरग्ग ।
अण्णजि घरिणी मीया अहिक्ख, सिरि पउमसिंह घरे लीलसिक्ख ।
तहे चारिपुत्त हियपियरचित्त सिरि चित्त वाल्ह डाल्ह विचित्त ॥
तीयउ कुलदीवउ सो पयच्छु, तह मयणवालु चउथउ पसत्थु ।
माणिक माणिणिणं कामभल्लि, लखणसिरि णाम णारी मतल्लि ॥
घेणा घरिणिउ णं कामअत्थु, संगहिउ जाहिं जिणधम्मवत्थु ।
मयणाभज्जो यति माह भीय णामेण सया सीलेण सीय ॥
ल्हला पिय मणसिरि पढम अण्ण, पट्टो मंगाभिक्खो सुवण्ण ।
सुअ रामचंद्र कुलकमलनंदु, नंदउ चिरु इह णं वीयचंदु ।
नंदा पूना वे भज्जजुत्तु, चिरु जीवउ वीरु कमलवत्तु ॥
एयाहं मज्झि सिरि पोमसिंह, जिण सासणणंदणवणसुसिंहु ।
विज्जुलचंचलु लच्छी सहाउ, आलोइवि हुउ जिणधम्मभाउ ॥
जिण गंथु लिहाविउ लक्खु एक्कु, सावयलक्खाहारातिरिक्कु ।
मुणि भोयणु भुंजाविय सहासु, चउवीस जिणालउ किउ सुभासु ॥
घना चउधरेय निमित्तु दव्वु, तेणज्जिउ लाइविजं अउव्व ।
पुरुएवजिणायदणु जि विचित्तु, ससिहरु सुपाडिहेरहुजुत्तु ॥
णिम्मविउ भवंबुहि जाणवत्तु, रयणत्तयजुयजुयपासजुत्त ।
कारिय पइट्ठ जिणसमइ दिट्ठ, अवलोइवि सयल सचित्तिदिट्ठ ॥

घत्ता—णंदउ सिरिहंसराउ सुहउ, णंदउ पउमसिंहु ससुउ ।
णंदउ परिवारु लच्छिकलिउ, णंदउ लोउ गुणोह जुउ ॥

आयासस्स जिणस्स य जिह अंतं कोवि लहइ न गुणस्स ।
सिरि पोमसिंह तिह ते को पारइ गुणणिहाणस्स ॥ १
सिरि पउमसिंह पउमं इह लोए जइ ण होंतु ता पउमा ।
कीला कत्थ करंती सुदाणपूया विणोएहिं ॥ २ ॥

---

४ कीर्तिसिंह, डूंगरसिंह का पुत्र । ५ गुणकीर्ति यतीश्वर । ६ यशः कीर्ति । ७ मलयकीर्ति—यशः कीर्ति के शिष्य । ८ जिनवचनामृतरसिक । ९ गयसिरि जाया—गजश्री नामकी भार्या । १० ज्येष्ठ—जेठा ।

प्रो. ल्युमन अने आवश्यक सूत्र



जर्मनीना प्रसिद्ध प्रोफेसर ल्युमन जैन आगमोना घणा ऊंडा अभ्यासी छे. लगभग अर्धा सैका जेटला लांबा समयथी तेओ जैन साहित्यनुं अवगाहन करता आव्या छे अने अनेक जैन सूत्रो-ग्रन्थोना मूळ, निर्युक्ति, भाष्य, टीका, टिप्पणी आदिने अर्वाचीन शास्त्रीय पद्धतिए संशोधित-अनुवादित करी तेमणे प्रकाशमां आण्या छे.ए बधामां आवश्यकसूत्र अने तेने लगता साहित्य उपर जे तेमणे अथाग परिश्रम उठाव्यो छे अने ते विषयमां जे निबन्धो आदि लख्या छे ते तो खरेखर तेमनी जैन साहित्य विषयक सूक्ष्म-प्रवीणतानी आश्चर्य-कारक साक्षी आपे छे.

जर्मनीना लीप्झीक शहेरमांथी प्रकट थती ओरिएन्टल सोसायटीनी ग्रन्थमाळा (Abhandlungen fur die Kunde des Morgenlandes) मां आवश्यक-कथा (Die Avashyaka Erzahlungen) नामे एक ग्रन्थ छपाववानी तेमणे सुरुआत करी हती,जेमां आवश्यक सूत्रनी चूर्णि अने टीकामां आवती बधी कथाओ मूळ रूपे आपी, जुदी जुदी प्रतोमां मळी आवतां तेमनां पाठान्तरो तथा बीजा बीजा ग्रन्थोमां मळी आवतां रूपान्तरोनी घणी विस्तृत रूपरेखा आलेखवानी तेमनी इच्छा हती. परंतु, ते माटे जोइतां बधां साधनो-भाष्य, चूर्णि, टीका आदिनी जुदी जुदी प्रतो विगेरे-न मळी शकवाथी, पचासेक पानां छापी तेमने ए कार्य बन्ध करवुं पड्युं हतुं. ते दरम्यान सने १८९४ मां जिनेवा (Geneve) मां भराएली इन्टर नेशनल ओरिएन्टल कोंग्रेसमां वांचवा माटे आवश्यकसूत्र साहित्य उपर जर्मन भाषामां एक विस्तृत निबंध तेमणे तैयार कर्यो हतो जेमां आवश्यक सूत्रने लगतुं जेटलुं साहित्य मळी आवे छे तेनुं अतिसूक्ष्मरीते विवेचन कर्युं हतुं.ए निबन्ध (Uebersicht uber die Avashyaka-Litteratur) ना नामे तेमणे स्वतंत्ररीते प्रकट कर्यो छे; जेना डेमी साइझना आखा कागळ जेवडा ५० उपर पानां छे. एमां प्रथम श्वेतांबर अने दिगंबर बंने जैन संप्रदायोमां आवश्यकने शुं स्थान छे ते बताव्युं छे; अने पछी आवश्यक सूत्रनी भद्रबाहुकृत निर्युक्तिमां आवता बधा विषयोनो बहु खूबी भरेलो सार आप्यो छे. ए सारमां साथे साथे निर्युक्तिमां आवता विषयोने बीजां बीजां सूत्रो अने भाष्यो विगेरेमां आवता तेज विषयो साथे, कोष्टको करी करी गाथाओवार सरखाव्या छे. आवश्यकचूर्णि अने हरिभद्रकृत टीकामां परस्पर जे जे विशेष छे ते सघळा मूळ पाठो साथे समजाव्या छे. पछी जिनभद्र क्षमाश्रमणकृत विशेषावश्यक भाष्यनुं लंबाणथी विवेचन कर्युं छे. एमां पण पहेलां, विशेषावश्यक ए शुं छे, तेनी टीका विगेरे कोणे करेली छे, ए बताव्युं छे; अने त्यार बाद निर्युक्तिनी गाथाओने भाष्यना विवरण साथे विषयवार समजावी छे. अने ए उपरांत पछी आखा भाष्यनो सार आप्यो छे. एटलुं करीने पण ए जर्मनदेशीय गीतार्थने संतोष न थयो तेथी ए निबन्धनी एक जूदी पूर्ति करी छे, जेमां विशेषावश्यक भाष्यनी शीलांकाचार्यकृत प्राचीन अने दुर्लभ्य टीकामां जे जे विशेष विशेष उल्लेखो छे ते बधा मूळरूपे गाथावार छपावी दीधा छे अने छेवटे ए टीकानी सौथी जूनी ताडपत्रनी प्रति जे हालमां पूनाना भांडारकर

ओरिएन्टल रीसर्च इन्स्टीट्युटमां सुरक्षित छे, तेना अतिजीर्ण शीर्णथएलां केटलांए पानाना फोटोग्राफस् आप्या छे.[1]

प्रो० ल्युमनना अथाग परिश्रम भरेला ए आखा निबन्धनो अविकल गुजराती अनुवाद करावबानो अमारो विचार चाली रह्यो छे पण कमनसीबे हजी असने ए निबन्धनी पूरी नकल मळी नथी. पूनाना भांडारकर ओ० री० इन्स्टीट्यूटमांना सर भांडारकरना पुस्तकसंग्रहमांथी फक्त एना कटेलाक प्रुफसीटस् ज असने जोवा मळ्या छे, जे प्रो०ल्यूमने डॉ०भांडारकरने, ए निबन्ध छपाती वखते, पूनानी प्रतो साथे सरखावी जोवा माटे मोकल्या होय एम देखाय छे. ए संबन्धमां खुद प्रो० ल्युमनसाथे ज अमारो पत्रव्यवहार चाले छे जेनो सविस्तर खुलासो मळतां भाषांतरनी व्यवस्था करवामां आवशे. ते दरम्यान, जैन साहित्य संशोधकना वाचकोने ए अमूल्य निबन्धनो कांइक परिचय थाय तेटला माटे मजकुर प्रोफेसरे ए निबन्धमां आवश्यक निर्युक्ति अने विशेषावश्यक भाष्यमां आवता गणधरवाद नामे विषयना उपर जे एक प्रकरण लख्यूं छे तेनो अनुवाद आपीए छीए. ए अनुवाद कार्यमां , मि. आर. डी. वाडेकर, बी. ए. नामना सज्जने जर्मन भाषा समजाववा माटे जे सहायता अपी छे तेनी आभार साथे अमारे अहीं खास नोंध लेवी जोईए.

भारत जैन विद्यालय; पूना } —मुनि जिन विजय
वैशाख; संवत् १९७९ } —केशवलाल, प्र. मोदी.

विशेषावश्यकभाष्य अने तेनी टीकामां मळी आवतां वैदिक अने दार्शनिक अवतरणो.

आवश्यक निर्युक्तिना छठ्ठा भागनी १ थी ६४ मी सुधीनी गाथाओमां गणधरवाद नामे विषय आवेलो छे. एमां केवी रीते महावीरे ११ ब्राह्मणोना तत्त्वज्ञान विषयक संशयो दूर करी, शिष्यो साथे तेमने पोताना शिष्यो बनाव्या एनुं टूंकुं अने एक ज प्रकारनुं वर्णन आपेलुं छे. ए अग्यारे ब्राह्मणो महावीरना मुख्य शिष्य होई गणधरो कहेवाय छे. शरुआतनां २ थी ७ सुधी गाथामां संक्षेपमां गणधरोनो टूंक परिचय अने संशयात्मक विषयनी नोंध आपी छे अने पछी ८ थी ६४ सुधी गाथामां तेनो ज विस्तार आपेलो छे. गाथावार हकीकत आ प्रमाणे:—

२. उन्नत अने विशालकुळमां उत्पन्न थएला अग्यारे ब्राह्मण पावानामक स्थानमां सोमिल ब्राह्मणे आरंभेला यज्ञपाटकमां आवेला हता.

३—४. तेमनां नाम—

१ इन्दभूइ
२ अग्गिभूइ
३ वाउभूइ
४ वियत्त
५ सुहम्म
६ मण्डिय
७ मोरियपुत्त
८ अकंपिय
९ अचलभाय
१० मेयज्ज
११ पहास

५. आ अग्यारेमांथी फक्त एक सुधर्म (५मा गणधर) नीज शिष्य परंपरा आगळ चाली. बाकीना कोईनो शिष्य समुदाय रह्यो नहीं.

---

[1] ए आखा पुस्तकना अमे पण फोटोग्राफस् पडाव्या छे. खरेखर ए प्रति एक दर्शनीय प्रति छे अने एना ए फोटोग्राफसूनी नकल दरेक पुस्तक भंडारमां मुकवामां आवे एवी अमारी खास भलामण छे.

६ ठ्ठी गाथामां क्रमथी ए अग्यारेना मनमां जे जे बाबतनो संशय हतो तेनी नोंध छे अने ते आ प्रमाणे छे—

जीवे[1] कम्मे[2] तज्जीव[3] भूय[4] तारिसय[5] बंन्ध-मोक्खे[6] य।
देवा[7] नेरइया[8] वा पुण्णे[9] परलोग[10] निव्वाणे[11] ॥ ६ (५९६)

७. पहेला पांचे गणधरोने ५००-५०० शिष्यो हता; ६-७ ने ३५०-३५० अने छेल्ला ४ ने ३००-३०० शिष्यो हता.

महावीर दरेकने नाम गोत्र पूर्वक बोलावे छे अने पछी तेना मनना संशयनुं नाम लई, 'तुं वेदना पदोनो अर्थ जाणतो नथी, तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे' एम एक ज प्रकारनो जवाब आपे छे. गाथावार गणधरोनो उल्लेख आ प्रमाणे—

१७.	पहेलो	गणधर,	जीव विषयक	संशय.
२५.	बीजो	,,	कर्म विषयक	,,
३१.	त्रीजो	,,	तज्जीव तच्छरीर वि०	,,
३५.	चोथो	,,	पञ्च भूत वि०	,,
३९.	पांचमो	,,	सद्दशोत्पत्ति वि०	,,
४३.	छठ्ठो	,,	बन्ध मोक्ष वि०	,,
४७.	सातमो	,,	देवसृष्टि वि०	,,
५१.	आठमो	,,	नरकसृष्टि वि०	,,
५५.	नवमो	,,	पुण्य विषयक	,,
५९.	दशमो	,,	परलोक वि०	,,
६३.	अग्यारमो	,,	निर्वाण वि०	,,

आ अग्यारे गणधरोना मनना संशयनो महावीरे जे खुलासो कर्यो हतो तेनो उल्लेख मूळ निर्युक्तिमां करवामां आव्यो नथी. निन्हवोनी हकीकतनी पेठे ज ए हकीकत पण निर्णय वगर ज आपवामां आवेली छे. चूर्णिमां फक्त पहेला गणधरना संशयनो खुलासो करवानो थोडोक प्रयत्न करवामां आव्यो छे. पण जिनभद्र आ बाबतनो घणो उत्तम विस्तार करे छे. ए विषय माटे तेमणे ४०० उपरांत गाथाओ लखी छे अने तेना विवरणमां घणी विशेष वातो आपी छे. हरिभद्रसूरि आ विवरणमांथी घणांक अवतरणो पोतानी टीकामां ले छे अने ए ज अवतरणो विशेषावश्यक भाष्यमांना गणधरवादनी टीकाओना आधारभूत बने छे. वळी हरिभद्रनी टीका उपरथी किञ्चिद्गणधरवाद नामनो पण एक ग्रन्थ लखायो छे, जेमां केटलोक वधारे विस्तार करवामां आवेलो होई वेदनां घणां खरां अवतरणो उपरांत छठ्ठी अने ते पछी आवती गाथामांनी हकीकतनुं पण निरूपण करेलुं छे. आनी श्लोक संख्या लगभग २५० जेटली छे अने पूनाना पुस्तकभंडारमां नं० १६; २९१ वाळी प्रतना २० थी २३ मा सुधीना पानाओमां ए लखेलो छे. दशवैकालिकनी लघुवृत्तिमां पण संक्षेपथी आ विषय चर्चेलो छे.

आ विषयने लगता जे केटलांक वैदिक अने दार्शनिक अवतरणो जिनभद्र आपे छे अने तेमनो जे अर्थ जैन मतानुसार करे छे ते जाणवां जेवां छे. आमांनां घणां खरां अवतरणो तो तेमणे फक्त

पोतानी टीकामां ज आपेलां छे; पण ते स्वोपज्ञ टीका उपलब्ध नथी। तेथी हरिभद्र, शीलांक अने हेमचन्द्र–के जेमणे ए स्वोपज्ञ टीकानो पोतानी टीकाओमां उपयोग कर्यो छे–तेमणे ए अवतरणो लीधेलां होवाथी आपणे ए टीकाओमांथी ज ते लेवानां छे. भाष्यना मूळमां ज जे अवतरणो आपेलां छे ते खास काळा अक्षरोमां आपवामां आव्यां छे. बाकीनां कया टीकाकारे कयां अवतरणो लीधां छे ते जुदी जुदी रीते बतावबामां आव्यां छे. ए अवतरणो कया ग्रन्थोमांथी लेवामां आवेलां छे तेनो कांई उल्लेख टीकाकारो करता नथी. तेथी जेकबना उपनिषद्वाक्यकोष अने बीजां तेवां वेदसंबंधी पुस्तको उपरथी घणांकनां स्थळो खोळी काढवानो प्रयत्न कर्यो छे. ए तो चोक्स छे के जे अवतरणो जिनभद्रे लीधां छे ते घणां प्रमाणभूत छे अने तेमना वखतना ब्राह्मणो वादविवादमां ए वाक्योनी खूब चर्चा करता होवा जोईए. ब्राह्मणोनां दर्शनशास्त्रोमां परस्पर विरुद्ध विचार दर्शावनारां ए वाक्यो उपरथी दरेक गणधरनो संशय उभो करवामां आव्यो छे. प्रसिद्ध उपनिषदोना मूळ पाठो साथे सरखावतां ए वाक्योमां जे केटलीक भूलो नजरे पडे छे तेनुं कारण बिनकाळजीपूर्वक एओनो उपयोग करवामां आवेलो होवुं जोईए.

×२, ५ (१५५३). ※(यदाहुर्नास्तिकाः)[४]

†१[३] एतावानेव पुरुषो[५]ऽयं यावानिन्द्रियगोचरः ।
भद्रे, वृकपदं पश्य यद् वदन्ति बहुश्रुताः[६] ॥ *

I पिब खाद च साधु शोभने यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ।
न हि भीरु गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ॥ *
(भट्टोऽप्याह)

× आ अंक ते प्रो० ल्युमने पोताना मूळ निबन्धमां विशेषावश्यकभाष्यना जे ५ विभागो पाडया छे तेना सूचक छे. एमां पहलो अंक प्रकरणने अने बीजो गाथानंबरने सूचवे छे. आ पछी जे कौंसमां आंकडा आपेल छे ते काशीनी यशोविजय जैनग्रन्थमाळामां प्रकट थएल सटीक विशेषावश्यकभाष्यमांनी चालू गाथासंख्या सूचवे छे. मुद्रित ग्रंथमां १५४८ मी गाथा ज्यां पूरी थाय छे त्यां उक्त प्रो० ना वर्गीकरण प्रमाणे प्रथम विभाग पूरो थाय छे अने १५४९ मी गाथाथी बीजो विभाग शरू थाय छे ते २०२४ मी गाथाए पूरो थाय छे . ए विभागमां गणधरवाद नामनो विषय आवे छे अने तेनी कुल ४७६ गाथा छे.

※–( ) आवा गोळ कौंसमां आपेला पाठो आवश्यकसूत्रनी हारिभद्री टीकामां आपवामां आवेला नथी; तेम ज [ ] आवा चौखुणा कौंसमां आपेला पाठो विशेषावश्यक भाष्यनी शीलांकाचार्यकृत टीकामां आपेला नथी; एम समजवुं.

† आ अंको आवश्यकनी हारिभद्री टीकामां दरेक गणधरना माटे जे शंका-समाधानात्मक अवतरणो आपवामां आवेलां छे तेनो क्रमनिर्देश सूचवे छे. एमांनो मोटो अक्षर ए गणधरनी संख्या बतावे छे अने तेनी आगळ जे नानो अक्षर छे ते अवतरणनी संख्या जणावे छे.

I आ चिन्हवाळां अवतरणो फक्त आवश्यक चूर्णिमां ज मळी आवे छे.

* आ बन्ने श्लोको हरिभद्रकृत षड्दर्शनसमुच्चयना छेवटना लोकायत प्रकरणमां, श्लोक ८१–८२, छे (मुद्रित पृ० ३०१, ३०४, कलकत्ता) त्यां बीजा श्लोकनो प्रथम पाद ' पिब खाद च चारुलोचने ' आ प्रमाणे छे.

२. शीलांकाचार्यनी टीकामां 'यथाहुः' पाठ छे. ३. शी. टी. 'एके.' ४. चूर्णिमां 'एके आहुः' एटलो ज पाठ छे.

५. विशेषावश्यकनी हेमचंद्रकृत टीकानी केटलीक प्रतोमां आना ठेकाणे ' लोकोऽयं ' पाठ छे. ६. चू० शी० ह. हे० नी केटलीक प्रतोमां ' वदन्त्यबहुश्रुताः ' पण पाठ छे.

१[१]३[१]१०[१] विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति, न प्रेत्य सञ्ज्ञास्ति ।

— बृहदारण्यकोपनिषद् २, ४, १२.—आगळ गाथा ३९अने १३७, नी टीकामां, (मुद्रित पृष्ठ ६८० तथा ७२० मां) पण आ अवतरण आवे छे. तथा भाष्यना मूळमां, गाथा ४०[२], ४१[४], ४२[१] (मु॰ पृ॰ ६८१) मां आ अवतरण अनुवादित छे.

१४ (सुगतस्त्वाह)[७]

न रूपं भिक्षवः पुद्गल इति [आदि]ॐ

अन्ये त्वाहुः

[वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराण्यपराणि जहाति गृह्णाति च पार्थ जीवः ॥[८]

[(तथा च वेदः)]

६[२] न ह वै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति, अशरीरं वाव सन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः ।

—छान्दोग्योपनिषद् ८,१२,१.—आगळ (गाथा) ४३.१०३. २५६. ३१२ नी टीकामां (मुद्रित पृष्ठ ६८२. ७०६. ७५९. ७७७.मां) पण आ अवतरण उध्धृत छे. तथा भाष्य–मूळ गाथा ३१३१=४६७१ (मु. पृ. ७७७. ८३१) मां आ अवतरण अनुवादित छे.

([तथाः] अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः)

मैत्र्युपनिषद् ६,३६.–आगळ गाथा ४३.९५. २५२. ३३४. (मु. पृ. ६८२. ७०२. ७५८. ७८४) नी टीकामां पुनः उध्धृत. मूळ गाथा ९२[२]= १३६[२]= ३९९[२] =४२२[२]; (मु. पृ. ७००. ७२०. ८०७. ८१४) मां अनुवादित. गाथा ३३४. (मु. पृ. ७८४) मां सूचित । सरखावो–हरिभद्रनी आवश्यकवृत्तिमां चैत्यवन्दनवृत्ति आव०५.११; तथा शास्त्रवार्तासमुच्चय ६०५, वळी ए छेल्ला ग्रन्थना १५७ मा श्लोकमां आना जेवुं ज एक अवतरण छे जे तैत्तिरीयसंहिताना २ जानी आदिमां छे.

([कपिलागमे तु प्रतिपाद्यते]

१५ अस्ति पुरुषः) अकर्ता निर्गुणो भोक्ता[९] (चिद्रूपः)

---

७. आना ठेकाणे ह॰ मां 'तथा' पाठ छे. ८. भगवद्गीता २, २२ (महाभारत ६, ९००) मां उत्तरार्द्ध आ प्रमाणे छेः—

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

– चूर्णिमां एक बीजुं वधारे नीचे प्रमाणेनुं अवतरण छेः—

काया अन्नो मुत्तो निच्चो कत्ता तहेव मोत्ता य ।

तणुमेत्तो गुणवन्तो उड्ढ–गई वण्णिओ जीवो ॥

सरखावो–दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा २२७ अने ते पछीनी. (मु. पृ॰ १२१)

९ सूत्रकृतांग १, १,१–१४ नी टीकामां शीलांकाचार्य 'तथा चोक्तं' करीने आ अवतरण नीचे प्रमाणे आपे छेः—

१[७] [नीलविज्ञानं मे उत्पन्नमाभात्] सरखावो—सर्वदर्शनसंग्रह पृ. १९,७-१०

२,३३(१५८०). (एक एव हि भूतात्मा भूते भूते प्रतिष्ठितः ।
एकधा वहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥[१०]

—ब्रह्मविन्दु-उपनिषद् १२. यशस्तिलक चम्पू, आश्वास ६, कल्प १. (पृ.२७३ निर्णयसागर)

यथाविशुद्धमाकाशं तिमिरोपप्लुतो जनः ।
सङ्कीर्णमिव मात्राभिर्भिन्नाभिरभिमन्यते ॥
तथेदममलं ब्रह्म निर्विकल्पमविद्यया ।
कलुषत्वमिवापन्नं भेदरूपं प्रकाशते ॥
"ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥"

—भगवद्गीता १५–१; (महाभारत ६–१३८३.)

२[१]९[१] पुरुष एवेदं ग्निं ‡ सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यं ।[११]
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

—वाजसनेयी संहिता ३१, २.; श्वेताश्वतरोपनिषद् ३–१५.

अकर्ता निर्गुणो भोक्ता आत्मा सांख्यनिदर्शने ।

स्याद्वादमञ्जरी, श्लोक १५ मां मल्लिषेण आवो श्लोक आ प्रमाणे आपे छेः—

अमूर्तश्चेतनो भोगी नित्यः सर्वगतोऽक्रियः ।
अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्म आत्मा कापिलदर्शने ॥ (बनारस, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, पृ. ११३

षड्दर्शनसमुच्चयनी टीकामां गुणरत्न पण आ श्लोक उध्धृत करे छे. (जुओ कलकत्ता आवृत्ति, पृ. १०५) वळी सरखावो—षड्दर्शनसमुच्चय, मूळ श्लोक ४१.

१० ब्रह्मविन्दूपनिषद् (आनन्दाश्रम मुद्रित, पृ. ३३८) मां बीजो पाद 'भूते भूते व्यवस्थितः' आ प्रमाणे छे, अने यशस्तिलक चम्पू (निर्णयसागर–मुद्रित, पृ. २७३–उत्तर भाग) मां बीजा अने त्रीजा पादनो पाठ–'देहे देहे व्यवस्थितः । एकधानेकधा चापि—' आ प्रमाणे छे. वळी, शीलांकाचार्यनी आचारांगसूत्र टीका (आगमोदय समिति मुद्रित, पृ. १८) अने सूत्रकृतांग सूत्र टीका (आ. स. मु. पृ. १९) मां पण आ श्लोक उध्धृत छे.

११. उपनिषद्मां 'भव्यं' पाठ उपलब्ध थाय छे.

‡ प्रो. ल्युमन आ शब्द उपर एक नीचे प्रमाणेनी खास नोंध करे छेः "केटलाक प्रसिद्ध उपनिषदोमांथी जैन विद्वानोए लीधेलां आ अवतरणो सैकाओ सुधी बहु ध्यान खेंचाया वगर ज लखातां आवतां हतां अने तेथी जैनोए करेली तेमनी नोंधमां स्वभाविकरीते ज केटलीक भूलो थएली छे. उदाहरण तरीके–२[१] मानुं ग्निं तथा ७[२] नुं अवतरण."—आमांना प्रथम ग्निं शब्द उपरनी नोटमां ते लखे छे के—"वर्तमानमां वैदिक वाङ्मयना हस्तलिखित ग्रन्थोमां अनुस्वार माटे जे चिन्ह वपराय छे, ते ८ मा सैका अगर तेनी पहेलां ग्निं अक्षर जेवुं देखातुं हशे अने तेथी वैदिक चिन्हथी अजाण एवा जैन ग्रन्थकारोए तेने एक खास शब्द मानी लीधेलो लागे छे. अने तेथी तेमने 'पुरुष एवेदं सर्वं' ए असल वाक्यमां ग्निं शब्द वधारी 'इद' ना 'द' उपर बीजो अनुस्वार चढावी दीधो होय एम जणाय छे." —प्रो. ल्युमननी आ नोंध अमने जरा विचारणीय लागे छे. लिपिभेदना ज्ञानना अभावे एवी भूलो थवी जो के घणी संभवित मात्र ज नथी पण सुज्ञात छे. दाखला तरीके जैन लिपिमां 'ग्ग' अक्षरने

२[२] यदेजति यन्नैजति यद्दूरे यद्वान्तिके।
यदन्तरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य वाह्यतः ॥[१२]
—वाजसनेयी संहिता ४०, ५.

२,५० (१५९८). १[६] [तथा] श्रुतौ [अपि] उक्तं—

अस्तमिते आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्तामिते शान्तेऽग्नौ शान्तायां वाचि किंज्योतिरेवायं पुरुषः? 'आत्मज्योतिः सम्राडि'ति होवाच।

—वृ. आ. उप. ४, ३, ६; आमांना केटलांक वाक्यो ए ज उपनिषद्ना ४, ३, २ मां पण आवे छे. भाष्यनी मूळ गाथा २, ५० मां पण आ अवतरण अनुवादित छे.

२,९५ (१६४३). (स सर्वविद् यस्यैषा महिमा भुवि दिव्ये।
ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा सुप्रतिष्ठितः ॥[१]
—मुण्डकोपनिषद्, २, २, ७. पूर्वार्ध.

तमक्षरं वेदयतेऽथ यस्तु स सर्वज्ञः सर्ववित् सर्वमेवाविवेश ॥ [१४]
—प्रश्नोपनिषद्, ४, ११. उत्तरार्ध.

एकया पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति। [१५]
—सरखावो, तै० ब्रा० ३, ८, १०, ५.

बदले घणा भागे जूना लहिआओ 'म्र' आवा रूपमां लखता. ए रूपने बराबर न समजवाथी प्रो. वेबरे बर्लिन लाई-ब्रेरीना म्येनुस्क्रिप्टस् केटलॉगमां 'समुग्गय' जेवी शब्दोनी रोमन जोडणी 'Samugrya' आवी खोटी करी घणो घोटाळो उभो कर्यो छे. एवी ज रीते बीजा विद्वानोना हाथे पण भ्रम थई शके ते स्पष्ट छे. पण अमने अहिं बीजी रीते ए नोंध विचारणीय लागे छे; अने ते ए छे के आवश्यकटीका कर्ता हरिभद्रसूरिने वैदिक साहित्य के तेना संकेतथी अपरिचित मानी शकाय तेम नथी. कारण के ते पोते जैन दीक्षा लीधा पहेलां जातिए ब्राह्मण अने विद्याए सर्वशास्त्र निष्णात हता, ए सुविश्रुत छे. अने जो ते वात बाजुए मूकिए तो पण तेमणे जुदा जुदा दर्शनो अने मतोना विषयमां जे अनेकानेक अपूर्व अने गहन ग्रन्थो लख्या छे; तेम ज सांख्य, वेदांत, न्याय, मीमांसा आदि वैदिक संप्रदायोनी जे खूब सूक्ष्म रीते आलोचना–प्रत्यालोचना करी छे ते जोतां स्पष्ट जणाय छे के तेओ वेद, ब्राह्मण, सूत्र, स्मृति अने उपनिषदोना घणा ऊंडा अभ्यासी अने ज्ञाता हता. तेथी तेमना जेवा विद्वान् आवा आबाल–प्रसिद्ध अनुस्वारना चिन्हने न समजी शके अने तेने कांई बीजुं ज कल्पी ले, ए मानवुं बिल्कुल अशक्य छे. हरिभद्रसूरि आ शब्दने 'मिं' कहे छे अने एने वाक्यालंकार रूपे उक्त वाक्यमां वपराएलो लखे छे.—(मिमिति वाक्यालंकारे —आवश्यकसूत्र, आ. स. पु. २४४) वर्तमान उपनिषदोमां पण पाठ–भेद अने पाठ–फेर क्यां ओछ थएला छे जेथी आपणे जैन विद्वानोना आवा पाठान्तरोने एकदम भ्रमोत्पन्न कही शकिए.

१२. ईशावास्योपनिषद्मां पण आ श्रुति आवेली छे अने त्यां 'यद्' ना ठेकाणे सर्वत्र 'तद्' पाठ मळे छे.

१३. उपलब्ध उपनिषद्मां वर्तमान पाठ आ प्रमाणे छेः—

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि। दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥

१४. वर्तमान पाठ आ प्रमाणे—

तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ।

—हरिभद्रसूरिए शास्त्रवार्तासमुच्चय, ६२४, मां पण आ अवतरणो सूचवेल छे (मुद्रित पृ० ३८५).

१५. हरिभद्रसूरिए पोतानी ललितविस्तरा नामे चैत्यवन्दनवृत्ति ५–११ (मुद्रित पृ० १११) मां पण आ अवतरण उद्धरेल छे, —तैत्तिरीय ब्राह्मण ३, ८, १०, ५, मां आने मळती हकीकतनो आ प्रमाणे उल्लेख आवेलो छेः—

एष वः प्रथमो यज्ञो योऽग्निष्टोमः, योऽनेनानिष्ट्वाऽन्येन यजते, स गर्तमभ्यपतत् ।

—ताण्ड्यमहाब्राह्मण १६, १, २.

द्वादश मासाः संवत्सरो—[१६]

—तै० सं० ५, २, ५. ५.

अग्निरुष्णो—

अग्निर्हिमस्य भेषजं—[१७]

—वा० सं० सं० २३, १०=तै० सं० ७,४,१८,२.

२,१०१ (१६४९). ३२ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष
ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
ज्योतिर्मयो हि शुद्धो
यं पश्यन्ति धीरा यतयः संयतात्मानः ॥ [१८]

—मुण्ड० उ० ३, १, ५. हेमचन्द्र वळी २, १३७ मी गाथानी टीकामां पण आ अवतरण टांके छे.

२, १२६ (१६७४). (एक विज्ञानसन्ततयः सत्त्वाः ।
[यद् सत् तद् सर्वं क्षणिकम्])[१९]
([क्षणिकाः सर्वसंस्काराः])[२०]—आ वाक्य अभयदेवसूरिए भगवती सूत्रनी टीका ३०, १ मां तथा मलयगिरिए नन्दिसूत्रनी टीकामां पण टांकेलुं छे. वळी जुओ षड्दर्शनसमुच्चयनी गुणरत्नकृत टीका १.

२, १४१ (१६८९). ४१ स्वप्नोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरञ्जसा विज्ञेयः ।
४२ द्यावा पृथिवी ।
४३ पृथिवी देवता [आपो देवता]—शीलांकाचार्य आ अवतरण आ पछीनी गाथामां आपे छे.

२,२२४ (१७७२). ५१ पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते, पशवः पशुत्वम् । —हेमचंद्र आ अवतरण

यो दीक्षामतिरेचयति । सताहं प्रचरन्ति । सप्त वैशीर्षण्याः प्राणाः । प्राणा दीक्षा । प्राणैरेव प्राणां दीक्षामवरुन्धे । पूर्णाहुतिमुत्तमां जुहोति । सर्वं वै पूर्णाहुतिः । सर्वमेवाप्नोति । अथो इयं वै पूर्णाहुतिः । अस्यामेव प्रतितिष्ठति ।

१६. आखुं वाक्य आ प्रमाणे छेः—' द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरेणैवास्मा अन्नं पचति यदग्निचित् । '

१७. पूरुं अवतरण आ प्रमाणे—' सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥

१८. उपनिषद्नो उपलब्ध पाठ आ प्रमाणे छे—
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥

१९. द्रष्टव्य—चन्द्रप्रभसूरिकृत प्रमेयरत्नकोष ८, पृ. ३० ।—महापण्डित रत्नकीर्तिकृत क्षणभङ्गसिद्धिप्रकरण (बिब्लिओथिका इण्डिका) पृ० ५४, मां आ वाक्य 'यद् सद् तद् क्षणिकम्' आ प्रमाणे छे. वळी, जुओ रत्नप्रभकृत रत्नाकरावतारिका परिच्छेद ५.(यशोविजय जैनग्रन्थमाला मुद्रित, पृ० ७६)

२०. ए आखो श्लोक आ प्रमाणे छे–
क्षणिकाः सर्वे संस्कारा अस्थितानां कुतः क्रिया । भूतिर्यैषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते ॥

५[२] २, २५२—चालु गाथा १८००—मां पण आपे छे.

शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते ।

आ अवतरण वळी आगळ २, २५२—चालु गाथा १८००—नी टीकामां आवे छे; तथा मूळ भाष्य २, २५२ मां पण सूचित छे.

२, २५२ (१८००). [(अग्निष्टोमेन यमराज्यमभिजयति ।)]

—मैत्र्युपनि० ६, ३६.

२, २५६ (१८०४). ६[१] स एष विगुणो विभुर्न बद्धयते संसरति वा,

न मुच्यते मोचयति वा । —सरखावो सांख्यकारिका ६२.

न वा एष बाह्यमभ्यन्तरं वा वेद ।

—सरखावो, बृहदारण्यकोपनिषद् ४, ३, २१.

२, ३१८ (१८६६). ७[१] स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छति ।

—शतपथ ब्राह्मण १२, ५, २, ८. वळी शीलांकाचार्य आगळ २,४०३—चालु गाथा१९५१—नी टीकामां पण आ अवतरण ले छे.

अपाम सोमास्,. अमृता अभूम,

अगमन् ज्योतिः, अविदाम देवान् ।

किं नूनमस्मान् तृणवदरातिः,

किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥

ऋग्वेद संहिता ८, ४८, ३; तथा अथर्वशिरा उपनि० ३.[२१]

[को जानाति मायोपमान्, गीर्वाणान् इन्द्र–यम–वरुण–कुबेरा-दीन् ?]—वळी २, ३३४—चालु गाथा १८८२–नी टीकामां पण आ अवतरण छे.

२, ३३५ (१८८३). (उक्थ–षोडशी–प्रभृति–क्रतुभिः यथाश्रुति यम–सोम–सूर्य–सुर-गुरुस्वाराज्यानि जयति ।

—सरखावो, मैत्र्युपनिषद्, ६, ३६. अहीं मूळ भाष्यमां ज आ अवतरण अनुवादित छे.[२२]

[(इन्द्र आगच्छ मेधातिथे मेषवृषण)]

—तैत्तिरीय आरण्यक १, १२,३; शतपथ ब्राह्मण ३,३, ४, १८. (आखुं वाक्य आ प्रमाणे—'इन्द्रागच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथेः । मेष वृषणस्य मेने ।')

२, ३३९ (१८८७). ८[१] [नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति ।

---

२१. उपनिषद्मां वर्तमान पाठ नीचे प्रमाणे छे—

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।

किमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतं मर्त्यं च ॥(--आनन्दाश्रममुद्रित, पृ० १०)

२२. उपनिषद्मां आ बाबतनो नीचे प्रमाणे उल्लेख मळे छे—'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामो यमराज्यमग्निष्टोमेनाभि-यजति सोमराज्यमुक्थेन, सूर्यराज्यं षोडशिना, स्वाराज्यमतिरात्रेण, प्राजापत्यमासहस्रसंवत्सरान्तक्रतुनेति । ' आनन्दाश्रम मुद्रित, पृ० ४५७.

८[२] न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः सन्ति ॥]

२, ३६० (१९०८). (केनाञ्जितानि नयनानि मृगाङ्गनानां
को वा करोति विविधाङ्गरुहान् मयूरान् ।
कश्चोत्पलेषु दलसन्निचयं करोति
को वा दधाति विनयं कुलजेषु पुंस्सु ॥) [२३]
सरखावो, अश्वघोषकृत बुद्ध चरित, कॉवेलसंपादित पृ. ७७.[२४]

२[३] पुण्यः पुण्येन [(कर्मणा) पापः पापेन कर्मणा]
—बृह ० आ०उप०४, ४, ५.हेमचंद्रसूरि आ अवतरण २,९५—चालु गाथा १६४३—नी टीकामां ले छे.

२, ४०३ (१९५१). ९[२]१०[२] स वै अयमात्मा ज्ञानमयः ।—बृ० आ० उ० ४, ४, ५.

२, ४२६ (१९७४) ११[१] जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्निहोत्रम् ।
तै० आ० १०,६४.महा. ना. उप० २५.वळी हेमचन्द्र गाथा २,४७५—चालू गा० २०२३—नी टीकामां पण आ अवतरण ले छे.

११[२] द्वे ब्रह्मणी [वेदितव्ये] परमपरं च [तत्र परं सत्यम्; ज्ञानमनन्तरं ब्रह्म] —सरखावो, मैत्र्युपनिषद् ६, २२;=ब्रह्मबिन्दूपनिषद् १७.
(सैषा गुहा दुरवगाहा)

२, ४२७ (१९७५). (यथाहुः [सौगतविशेषाः केचित् तद् यथा]
दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।

---

२३. हेमचन्द्रसूरि,गाथा१६४३नी टीकामां, आ पद्यगत भावने जणावनारा नीचे प्रमाणेना त्रण श्लोको आपे छे—

सर्वहेतुनिराशंसं भावानां जन्म वर्ण्यते । स्वभावादिभिस्ते हि नाहुः स्वमपि कारणम् ॥
राजीवकण्टकादीनां वैचित्र्यं कः करोति हि । मयूरचन्द्रिकादिर्वा विचित्रः केन निर्मितः ॥
कादाचित्कं यदत्रास्ति निःशेषं तदहेतुकम् । यथा कण्टकतैक्ष्ण्यादि तथा चैते सुखादयः ॥

—सूत्रकृताङ्गसूत्रनी टीकामां शीलांकाचार्य (मुद्रित पृ० २१ आ. स.) आवी ज मतलबवाळो एक अन्य श्लोक आपे छे—

कण्टकस्य च तीक्ष्णत्वं, मयूरस्य विचित्रता । वर्णाश्च ताम्रचूडानां, स्वभावेन भवन्ति हि ॥

२४. आचाराङ्गसूत्रनी टीकामां शीलांकाचार्य (आ. स. मु. पृ. १७) आ उपरना पद्यनी साथे अश्वघोषवाळुं पद्य तथा एक त्रीजुं पण अन्य पद्य आपे छे. यथा—

' कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां च ।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं, न कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः ॥ ' —(बुद्धचरित. ९–५२)

स्वभावतः प्रवृत्तानां निवृत्तानां स्वभावतः । नाहं कर्तेति भूतानां, यः पश्यति स पश्यति ॥

—शान्त्याचार्ये उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन२५ मानी टीकामां आ अने बीजां केटलांक अवतरणो (उदाहरणार्थ भगवद्गीता १८,४२) उध्दृत करेलां छे; तेम ज आवी ज जातनां बीजां पण केटलांक अवतरणो (उदाहरणार्थ—महानारायणोपनिषद् १०, ५;=कैवल्य उ० २; अने वाजसनेयी संहिता ३१, १८=श्वेताश्वतरोपनिषद् ३, ८) तेमणे अध्ययन १२, गाथा ११–१५ नी टीकामां आपेलां छे.

दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चित् स्नेहक्षयात् केवलमेति शांतिम् ।
जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावर्निं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चित् क्लेशक्षयात् केवलमेति शांतिम् ॥
— यशस्तिलक चम्पू ६, १ मां पण आ श्लोको आपेला छे. पण त्यां चरणव्यतिक्रम थएलो नजरे पडे छे.

एक अवतरण वळी आवेलुं छे जे ऊपरना १' वाळा अवतरण साथे संबन्ध धरावतुं होय तेम जणाय छे, अने हेमचन्द्रना लखवा उपरथी ते कोई उपनिषद्नी टीकामांनुं (उदा० बृहदारण्यक उपनिषद्) होय तेम मालुम पडे छे. जिनभद्र मूळमां ते आ प्रमाणे नोंधे छे.

४०. गोयम, वेय-पयाणं इमाणमत्थं च तं न याणासि ।
जं विन्नाणघणो च्चिय भूएहिंतो समुत्थाय ॥
४१. मन्नासि मज्जंगेसु व मयभावो भूय-समुदय-ब्भूओ ।
विन्नाणमेत्तं आया भूए5णु विणस्सइ स भूओ ॥
४२. अत्थि न य पेच्चसन्ना जं पुव्वभवे5भिहाणं ' असुगो' त्ति ।
जं भणियं न भवाओ भवन्तरं जाइ जीवो त्ति ॥

छेवटनी गाथामांना वाक्य उपर हेमचन्द्र आ प्रमाणे टीका करे छे—' किमिह वाक्ये तात्पर्यवृत्त्या प्रोक्तं भवति—इत्याह—सर्वथात्मनः समुत्पद्य विनष्टत्वात् न भवान्तरं को5पि यातीत्युक्तं भवति ।' ज्यारे शीलांक पोतानी हमेशनी विरल–व्याख्यापद्धति प्रमाणे एटलुं ज लखे छे के—' एवं न भवाद् भवान्तरमस्तीत्युक्तं भवति '

विशेषावश्यक २, २२६ मां वनस्पति अने प्राणी विद्या संबंधी अन्धविश्वास सूचवनारां एक—बे अवतरणो आवे छे, ते पण हुं आनी पूरवणी रूपे अहीं नोंधी लेवा इच्छुं छुं. ए अवतरणोनो विषय, सदृशमांथी सदृशनी ज उत्पत्ति थई शके, एवो कोई नियम नथी; ए छे एना उपर टीकाकारे खूब विवेचना करी छे. ए अवतरण वाळी गाथाओ आ प्रमाणे छेः—

२२६. जाइ सरो संगाओ भूतणओ सासवाणुलित्ताओ ।
संजायइ गोलोमाविलोम–संजोगओ दुव्वा ॥
२२७. इति रुक्खाउव्वेदे, जोणिविहाणे य विसरिसेहिंतो ।
दीसइ जम्हा जम्मं, सुधम्म, तं नायमेगन्तो ॥

सरखावो, पंचतन्त्र श्लोक १, १०७. ए ठेकाणे कविसंप्रदायनी पद्धति बाद करतां ऊपरना अन्धविश्वासवाळा अवतरणमांनी त्रीजी हकीकतनो उल्लेख करेलो छे —जेमके 'दुर्वा पि गोलोमतः' । आ अवतरणमांनी पहेली हकीकत के ' शृंगमांथी शर उत्पन्न थाय छे ' तेनो उल्लेख वार्ताना रूपमां एक प्रत्येकबुद्धनी कथामां आवे छे. त्यां जणाव्या प्रमाणे एक शबनी खोपरी, आंख अने मोढामांथी वांसना त्रण फणगा नीकळ्या हता. आ गाथामां जे योनिविधान शब्द आवेलो छे तेनो अर्थ टीकाकारे लख्या प्रमाणे ' योनिप्राभृत ' छे अने ए नाम एक ग्रन्थनुं छे जे पूनाना केटलॉगमां नं० १६; २६६; तथा २१, १२४२ मां नोंधेलो छे.

स्वाध्याय–समालोचन

आगरे के श्रीआत्मानन्द पुस्तक प्रचारक मंडलने एक महत्त्वके ग्रन्थका प्रकाशन किया है। इसका नाम है पातञ्जल योगदर्शन। यों तो पातञ्जल योगदर्शन के अनेक संस्करण, अनेक स्थानोंसे, अनेक रीतिसे और अनेक भाषाओंमें प्रकट हो चुके हैं लेकिन हम जो इस संस्करणको महत्त्वका कहते हैं उसका खास कारण यह है कि इस संस्करणमें जो व्याख्या प्रकट हुई है वह संस्कृतसाहित्यके ज्ञाताओंके लिये एक विशेष वस्तु है। पातञ्जल योगदर्शन एक वैदिक संप्रदाय है। ब्राह्मण संप्रदायके जो छ दर्शन गिने जाते हैं उनमें इसका विशिष्ट स्थान है। सांख्य और योग ये दोनों दर्शन युगलरूपसे व्यवहृत होते हैं और सब दर्शनोंमें प्राचीन हैं। असलमें सांख्य दर्शनका ही एक विशेषरूप योग दर्शन है। सांख्य दर्शनमें ईश्वरस्वरूप किसी व्यक्ति या तत्त्वका अस्तित्व नहीं माना जाता और योगदर्शनमें उसको आश्रय दिया गया है–इतना ही इनमें मुख्य भेद है। जैन और बौद्ध दर्शनमें ऐसे अनेक तत्त्व और सिद्धान्त हैं जो सांख्य और योग दर्शनके तत्त्व और सिद्धान्तोंके साथ समता रखते हैं। इस लिये बहुत प्राचीन कालसे जैन और बौद्ध विद्वानोंको सांख्य और योग दर्शनके अध्ययन और मननका परिचय रहा है। इसी परिचयका उदाहरण स्वरूप यह प्रस्तुत ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें पातञ्जल योगदर्शनके सूत्रों पर जैन धर्मके एक अति प्रसिद्ध और महाविद्वान् पुरुषने व्याख्या लिखी है वह प्रकट की गई है। व्याख्याकार हैं न्यायाचार्य महोपाध्याय श्रीयशोविजय गणी। इस व्याख्यामें महोपाध्यायजीने पातञ्जल योगसूत्रोंका जैन प्रक्रियाके अनुसार अर्थ किया है। व्यासकृत मूळ भाष्यके विचारोंके साथ जहां जहां अपना मतभेद मालूम दिया वहां उपाध्यायजीने बडी गंभीर भाषामें अपने विचारका समर्थन और भाष्यकारके विचारोंका निरसन किया है और यही इस व्याख्याकी खास विशिष्टता है।

इस ग्रन्थका संपादन विद्वद्वर्य पं सुखलालजीने किया है। जहां तक हम जानते हैं, जैन साहित्यमें अभी तक कोई तात्त्विक ग्रंथ ऐसी उत्तम रीतिसे संपादित हो कर प्रकट नहीं हुआ। ग्रन्थके महत्त्व और रहस्यको समझानेके लिये पंडितजीने परिचय, प्रस्तावना और सार इस प्रकारके तीन निबन्ध हिन्दी भाषामें लिखकर इसके साथ लगाये हैं जिनके पढनेसे एक ग्रन्थके पूर्ण अभ्यासके लिये जितने अंतरंग और बाह्य प्रश्नोत्तरोंकी आवश्यकता होती है, उन सबका ज्ञान पूरी तरहसे हो जाता है। परिचय नामक निबन्धमें, पंडितजीने योगसूत्र, योगवृत्ति, योगविंशिका आदिका परिचय कराया है और प्रस्तावनामें जैन और योगदर्शनकी तुलना तथा तद्विषयक साहित्यका विवेचन किया है। यह प्रस्तावना कैसी महत्त्वकी और कितने पांडित्यसे भरी हुई है इसका खयाल तो पाठकोंको इसके पढने ही से आ सकता है और इसी लिये हमने इस सारी प्रस्तावनाको इसी अंककी आदिमें उध्दृत की है।

इस पुस्तकमें योगदर्शनके सिवा एक योगविंशिका नामका ग्रन्थ भी सम्मिलित है जो मूल हरिभद्रसूरिका बनाया हुआ है और उस पर टीका यइन्हीं यशोविजयजीने की है। जैन दर्शनमें 'योग' को क्या स्थान है और उसकी क्या प्रक्रिया है यह जानने के लिये यह योगविंशिका बहुत ही उपयोगी है।

पुस्तके अंतमें योगसूत्रवृत्ति और योग विंशिकावृत्ति का हिन्दी सार दिया है जिससे संस्कृत न जानने वाले भी इन ग्रन्थगत पदार्थोंको सरलतासे समझ सकते हैं। इस पुस्तकका ऐसा उपयुक्त संस्करण निकालनेके लिये संपादक महाशय पं. सुखलालजी तथा मंडलके उत्साही संचालक श्रीयुत बाबू दयालचंदजी–दोनों सज्जन विद्वानोंके विशेष धन्यवादके पात्र हैं।

जैन साहित्य संशोधक ग्रंथमाळा

अध्यापक कॉवेल लिखित

प्राकृत व्याकरण–संक्षिप्त परिचय

संपादक

मुनि जिनविजयजी

एम्. आर्. ए. एम्.

(आचार्य–गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर–अमदावाद)

(जैन साहित्य संशोधक–खण्ड २, अंक १–परिशिष्ट)

प्रकाशक

जैन साहित्य संशोधक कार्यालय

भारत जैन विद्यालय-पूना शहर.

निवेदन

આ પ્રાકૃત વ્યાકરણુ સંક્ષિપ્ત-પરિચય, કેંબ્રીજ યુનિવર્સિટીના એક વખતના સંસ્કૃતના અધ્યાપક અને એડીનબર્ગ યુનિવર્સિટીના ઑનરરી એલ્એલ્. ડી. શ્રી ઈ. બી. કૉવેલે લખેલા A SHORT INTRODUCTION TO THE ORDINARY PRAKARIT OF THE SANSKRIT DRAMAS નામના નિબંધનો અવિકલ ગુજરાતી અનુવાદ છે. જેમને સંસ્કૃત ભાષાનો સાધારણુ અભ્યાસ હોય અને જેઓ પ્રાકૃત ભાષાનો ટુંક પરિચય કરવા માંગતા હોય તેમને આ નિબંધ ઘણો મદદ કર્તા થઈ પડે એવો જણાયાથી, આ રૂપમાં પ્રકટ કરવામાં આવે છે. આ નિબંધ મૂળ સન્ ૧૮૫૪ માં મજકુર પ્રોફેસરે वररुचिकृत प्राकृत प्रकाश ની જ્યારે પ્રથમ આવૃત્તિ બ્હાર પાડી હતી તેની પ્રસ્તાવના રૂપે લખ્યો હતો. અને પછી ૧૮૭૫ માં કેટલાક સુધારા-વધારા સાથે, લંડનની TRUBNER and Co. એ એક પુસ્તિકાના રૂપમાં એને જૂદો છપાવ્યો હતો. એ પુસ્તિકા આજે દુર્લભ્ય હોઈ બુકસેલરો તેની ૩-૪ રૂપિઆ જેટલી કિંમત લે છે. તેથી ગુજરાતી ભાષાભિજ્ઞ વિદ્યાર્થીઓને આ નિબંધ સુલભ થઈ પડે તેવા હેતુથી આ પત્રના પરિશિષ્ટ રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવે છે. આશા છે કે સંશોધકના વાંચનારાઓને તેમજ અન્ય તેવા અભ્યાસિઓને આ પ્રયાસ ઉપયોગી થઈ પડશે.

જ્યેષ્ઠ પૂર્ણિમા, ૧૯૭૯. —સંપાદક

अध्यापक कॉवेल लिखितं

प्राकृत व्याकरण–संक्षिप्त परिचय

ઈ. સ. પૂર્વેના સૈકાઓમાં, ભારતવર્ષમાં સંસ્કૃત ભાષામાંથી અપભ્રષ્ટ થઈને કેટલીક ભાષાઓ (બોલીઓ) ઉત્પન્ન થઈ જેને સાધારણ રીતે પ્રાકૃત કહેવામાં આવે છે. આ ભાષાઓની શોધ ખોળનો વિષય ભાષાશાસ્ત્રીને તેમજ ઈતિહાસ લખકને ઘણો રસ આપી શકે તેમ છે. હાલની પ્રચલિત ભાષાઓ અને મહા સંસ્કૃત વચ્ચે સંબંધ જોડી શૃંખલાનું કામ બનાવનાર આ પ્રાકૃત ભાષાઓનું (અને ખાસકરીને 'પ્રાકૃત' નામક ભાષાનું) જ્ઞાન હાલમાં વપરાતાં કેટલાંક રૂપો સમજવાને ઉપયોગી છે એટલુંજ નહિ, પરંતુ તેઓ ભાષાસંઘની એક ઇંડો–યુરોપીઅન શાખાના ઈતિહાસમાં પ્રકાશ પાડે છે, તથા લૅટીનમાંથી ઉત્પન્ન થએલી આધુનિક ઈટાલીઅન અને ફ્રેંચ ભાષાઓ સરખાવતાં જે સ્વરમાધુર્યનું આપણને ભાન થાય છે તે માધુર્યના નિયમોના અનુપમ દ્રષ્ટાંતો પૂરાં પાડે છે. તદુપરાંત બાજા ઘણા રસોત્પાદક ઐતિહાસિક પ્રશ્નો સાથે પ્રાકૃત ભાષાનો નિકટનો સંબંધ છે. સાલોનના બૌદ્ધોનાં તથા ભારતવર્ષના જૈનોનાં ધર્મપુસ્તકોની ભાષાઓ પ્રાકૃતનાં ભિન્ન ભિન્ન રૂપો છે; અને ખરેખર બ્રાહ્મણોની સંસ્કૃતનો વિરોધ દર્શાવીને જનસમાજના હૃદય ઉપર સચોટ અસર કરવા માટે બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં પાલિ ભાષાનો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે. જ્યારે અલેકઝાન્ડરના આધિપત્ય તળે ગ્રીક લોકો ભારતવર્ષના સંબંધમાં આવ્યા ત્યારે પ્રાકૃત ભાષા જનસમાજમાં પ્રચલિત હશે. જેમાં ઈ. સ. પૂર્વે લગભગ ૨૫૦ વર્ષના ઍન્ટીઑકસ અને બીજા ગ્રીક રાજાઓનાં નામો આવે છે એવા અશોક રાજાના શિલાલેખોની ભાષા પણ એક જાતની પ્રાકૃતજ છે, તે જ પ્રમાણે બૅક્ટ્રીયાના ગ્રીક રાજાના દ્વિભાષિક સિક્કાઓ ઉપર પણ પ્રાકૃત ભાષા લખેલી જોવામા આવે છે. જુના હિંદુ નાટકોમાં પણ આ ભાષાઓનો હિસ્સો ઓછો નથી; કારણ કે તેમાં મુખ્ય નાયકો સંસ્કૃતનો ઉપયોગ કરે છે, પણ સ્ત્રીઓ અને સેવકો જુદી જુદી જાતની પ્રાકૃત ભાષા વાપરે છે, જેમાંના પરસ્પર ફેરફારો બોલનારની કક્ષાપ્રમાણે, સ્વરમાધુર્યના નિયમનું અનુસરણ કરે છે.

વૈય્યાકરણો 'પ્રાકૃત' શબ્દને प्रकृतेः भवं प्राकृतं એમ જણાવી प्रकृति એટલે સંસ્કૃત સાથે સંબંધ જોડે છે. આ વિષયમાં હેમચંદ્રે નીચેપ્રમાણે જણાવ્યું છે: प्रकृति संस्कृतं तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम् । પણ મૂળ તેનો અર્થ 'સાધારણ' અગર 'અસંસ્કારી' એવો હશે, કારણ કે મહાભારતમાં એક સ્થળે બ્રાહ્મણોનો ધિક્કાર કરવો નહિ એમ જણાવી લખ્યું છે કે:—

दुर्वेदा वा सुवेदा वा प्राकृताः संस्कृतास्तथा ॥

લગભગ આધુનિક વૈય્યાકરણો 'પ્રાકૃત' નામ તળે ઘણી ભાષાઓનો સમાવેશ કરે છે, પરંતુ તેમાંની ઘણી ખરી પાછળથી થયેલાં ક્ષુલ્લક રૂપાંતરો માત્ર છે. જેમ જુનો વૈય્યાકરણ તેમ તેના ગ્રંથમાં થોડી પ્રાકૃત ભાષાઓ. તેજ પ્રમાણે ઘણા પુરાણા વૈય્યાકરણ વરરૂચિએ ફક્ત ચાર જ પ્રાકૃત ભાષાઓનું વિવેચન કર્યું છે, જેવી કે મહારાષ્ટ્રી, પૈશાચી,[1] માગધી, અને શૌરસેની. આમાંથી પહેલાં એટલે મહારાષ્ટ્રી ભાષાને તેણે વિશેષ મહત્ત્વની ગણી છે; તથા લૅસન સાહેબે પણ પોતાના

---

૧. પૈશાચી ભાષા ખાસ ઉપયોગી છે કારણકે बृहत्कथा તે ભાષામાં લખાયલી છે.

'ઇન્સ્ટીટ્યુશન્સ' નામના લેખમાં તેને જ મુખ્ય ગણી છે. વરરૂચિના પ્રાકૃત પ્રકાશમાં પ્રથમ નવ પ્રકરણોમાં તેનું વ્યાકરણ આપવામાં આવ્યું છે; અને બાકીનાં ત્રણ પ્રકરણોમાં બાકીની ત્રણ ભાષાઓની વિશિષ્ટતા જણાવી છે.

મૃચ્છકટિક નાટકમાં પ્રાકૃત ભાષાઓનું એક વિચિત્ર ભંડાળ ભેગું કરવામાં આવેલું છે જેથી કરીને તે નાટક ઉપયોગી પ્રાકૃત રૂપોની ખાણ બન્યું છે. વળી, વિક્રમોર્વશીના ચોથા અંકમાં પુરુરવ રાજાના આત્મપ્રલાપની ભાષા તદ્દન ભિન્ન જ છે, અને એક જાતની કાવ્યમાં વપરાતી અપભ્રંશ ભાષા છે, જેને આધુનિક વૈયાકરણો મૂળ પ્રાકૃતથી, ઘણીજ જુદી ગણે છે. આ અપવાદો સિવાય સંસ્કૃત નાટકોમાં—ગદ્યમાં શૌરસેની, અને પદ્યમાં મહારાષ્ટ્રી,—સાધારણ પ્રાકૃત જ વપરાય છે.[1] આ બન્ને માટેના નિયમો સરખાજ છે, પરંતુ ગદ્યમાં વપરાતી ભાષા કેવળ વ્યંજનો ઉડાડી દેવામાં થોડી છૂટ લે છે, તથા ધાતુ અને પ્રાતિપદિકનાં કેટલાંક રૂપો તેનાં પોતાનાં ખાસ હોય છે, જે નીચે જણાવવામાં આવશે. તો પણ નાટકોની ભાષા, ખાસ કરીને ગદ્યમાં, વરરૂચિના નિયમોથી ઘણી વાર વિરૂદ્ધ જાય છે.

આ લઘુ વ્યાકરણ નાટકમાં વપરાતી સાધારણ પ્રાકૃત માટે ખાસ કરીને બનાવવામાં આવ્યું છે. ખરેખર, અત્યાર સુધી પદ્યાત્મક પ્રાકૃતનાં ઘણાં ઉદાહરણો જાણવામાં ન હતાં; ફક્ત નાટકોમાં તથા અલંકારના ગ્રંથોમાં આવેલાં પ્રાકૃત પદ્યોનાં થોડાંક નમુનાઓ જણાયા હતા પણ પ્રો. વેબરે હાલકવિના સપ્તશતકનો કેટલોક ભાગ છપાવ્યો છે જેને લીધે મહારાષ્ટ્રી ભાષાનું મોટું ક્ષેત્ર ખુલ્લું થયું છે. તે કાવ્યમાં પ્રાકૃતના અભ્યાસને માટે ઘણી ઉપયોગી એવી આર્યાઓ છે પરંતુ મારા પ્રસ્તુત કાર્ય માટે તે બહુ ઉપયોગી નહિ હોવાથી મેં આ લેખમાં તેમનો ઉપયોગ બહુજ થોડો કર્યો છે. તો પણ પરિશિષ્ટમાં હાલકવિની દશેક આર્યાઓ મેં આપી છે.

વિભાગ ૧.

લગભગ સર્વથા સંસ્કૃત શબ્દોમાં કેટલાક ફેરફારો કરીને અને કેટલાક અક્ષરો ઉડાડીને પ્રાકૃત રૂપો સિદ્ધ થયાં છે. સંસ્કૃતના અણીશુદ્ધ ઉચ્ચારોને બદલે પ્રાકૃતમાં અસ્પષ્ટ અને અર્ધ-ઉચ્ચાર કરવામાં આવે છે, તથા સંસ્કૃત ભાષાના સ્વભાવની વિરૂદ્ધ જઈને વારંવાર સ્વરસમૂહનો બાધ કરવામાં આવે છે. નીચેના પ્રકરણમાં, પ્રથમ તો શબ્દોના અક્ષરોમાં થતા ફેરફાર વિષે અને, પછીથી, પ્રાતિપદિક અને ધાતુઓનાં રૂપોમાં થતા ફેરફાર વિષે વિવેચન કરીશું.

સ્વર પ્રકરણ.

પ્રાકૃતમાં ऋ, ॠ, ऌ, ऐ, औ સિવાયના બધા સ્વરો સંસ્કૃત પ્રમાણે છે.

કોઈ શબ્દમાં પ્રથમ અક્ષર ऋ હોય તો તેનો रि થાય છે, જેમ કે ऋण ને બદલે रिण; કેટલીક વાર ऋ ની પહેલાં વ્યંજન હોય તો તે વ્યંજનનો લોપ કરવામાં આવે છે, જેમ કે सदृश—सरिस. જો ऋ ની પહેલાં વ્યંજન આવ્યો હોય તો ऋ નો अ અથવા इ થાય છે, અને જો તે વ્યંજન ઓષ્ઠસ્થાનીય હોય તો ऋ નો उ થાય છે, જેમ કે तृण—तण, कृत—कअ, दृष्टि—दिट्ठि, भृंग—भिंग, पृथवी—पुहवी, प्रवृत्ति—पउत्ति. પરંતુ આવા ફેરફાર શબ્દના પ્રથમાક્ષર ऋ માં ભાગ્યે જ થાય છે; તો પણ इसि (ऋषि), उज्जुअ (ऋजु), उदु (ऋतु).

---

૧. शाकुन्तल ના ચોથા અંકમાં ધીવર માગધી ભાષાનો ઉપયોગ કરે છે, તેમજ मुद्राराक्षस માં કેટલાંક પાત્રો નિકૃષ્ટ ભાષા વાપરે છે.

૨. ડૉ૦ પીશ્ચેલે શૌરસેનીવિષે કુન્હના બીટ્રેજ પુ૦ ૮ માં વિવેચન કર્યું છે. પરંતુ તેમના કેટલાક નિર્ણયો અનિશ્ચિત છે.

પ્રાકૃત શબ્દમાં ऋ આવી શકતો નથી; તેથી ऋ અન્તવાળા સંસ્કૃત શબ્દોનું ષષ્ઠી બહુવચનનું રૂપ अकारान्त અથવા उकारान्त શબ્દો પ્રમાણે થાય છે.

क्लृप्त નું किलित्त થાય છે.

ऐ નું ए અગર अइ (કવચિત્ इ અથવા ई) થાય છે, જેમ કે सेल (शैल), दइच्च (दैत्य).

औ નું ओ અગર अउ (કવચિત્ उ) થાય છે, જેમ કે कोमुई (कौमुदी), पउर (पौर), सुंदेर (सौंदर्य).

બાકી રહેલા સ્વરોમાંથી ए અને ओ સંધ્યક્ષર હોતા નથી, અને યથાનિયમાનુસાર હ્રસ્વ યા દીર્ઘ હોઈ શકે.

પ્રાકૃતનો એક મુખ્ય નિયમ નીચે પ્રમાણે છે:—

મૂળ શબ્દમાં જોડાક્ષરની પહેલાં દીર્ઘ સ્વર આવ્યો હોય તો પ્રાકૃતમાં તે સ્વર હ્રસ્વ થાય છે, જેમ કે आ, ई, ऊ નું અનુક્રમે अ, इ, उ થાય છે; (ए અને ओ એમ જ રહી શકે છે), જેમ કે मार्ग—मग्ग, दीर्घ—दिग्घ, पूर्व—पुव्व. તેમાં બે પેટા નિયમો નીચે પ્રમાણે છે: (अ) જો પ્રાકૃતમાં પણ દીર્ઘ સ્વર રાખવામાં આવે તો જોડાક્ષરમાંથી એક વ્યંજનનો લોપ થાય છે, જેમ કે ईश्वर—ईसर અથવા इस्सर, विश्वास—वीसासो અથવા विस्सासो; (ब) જોડાક્ષરની પહેલાં આવેલો હ્રસ્વ સ્વર દીર્ઘ થાય છે અને એક વ્યંજનનો લોપ થાય છે, જેમ કે जिह्वा—जीहा. કોઈકવાર જોડાક્ષરની પહેલાંના इ ને उ ને બદલે ए અને ओ થાય છે, જેમ કે पिण्ड—पेण्ड, तुण्ड—तोण्ड. ઘણી વાર य ની પહેલાંના अ ને બદલે ए થાય છે, જેમ કે पर्यन्त—पेरन्त, सौंदर्य—सुंदेर, आश्चर्य—अच्छेर. કેટલાક શબ્દોમાં પહેલા અક્ષરમાં उ નું अ થાય છે, જેમ કે मुकुट—मउड, पुरुष અને मात्र નું અનિયમિત રૂપ पुरिस અને मेत्त થાય છે.

આ નિયમિત ફેરફારો ઉપરાંત વ્યાકરણોમાં અને પ્રાકૃત લેખોમાં, તથા ખાસ કરીને સત્ત-શતકમાં કેટલાક સ્વરોના ફેરફારો અનિયમિત રીતે થાય છે જેમ કે समृद्धि—समिद्धि અથવા सामिद्धि, उत्खात—उक्खअ અથવા उक्खाअ, पटह—पडह, વિગેરે. સામાસિક શબ્દો કે જેમાં વારંવાર સ્વરો હ્રસ્વ દીર્ઘ થયા કરે છે તથા કેટલીક વાર આખા અક્ષરો લુપ્ત કરવામાં આવે છે તેમાં આવી અનિયમિતતા વારંવાર જોવામાં આવે છે, જેમ કે यमुनातट—जउणअड અને जउणा-अड; सुकुमार—सुउमार અને सोमार; राजकुल—राअउल અને राउल, વિગેરે (સરખાવો-वररु० ४, १; વેબર, सप्तश० પા૦ ૩૨, ૩૩.)

૨. કેવળ વ્યંજન પ્રકરણ.

(अ). સામાન્ય પ્રાકૃતમાં श् અને ष् નથી, અને તેમને બદલે स् વપરાય છે. न् ની પછી દંત્યાક્ષર ન આવ્યો હોય તો સાધારણ રીતે તેનો ण् થાય છે. શબ્દના આરંભમાં આવેલા य् નો ज् થાય છે. સામાન્ય રીતે આટલા નિયમો અપવાદ રૂપે આવે છે [તો પણ, નાટકોમાં કેટલીકવાર उण (पुनः), अ (च) થાય છે, પરંતુ આવા ફેરફારો વરરૂચિએ સ્વીકાર્યા નથી. વળી, वररु० २, ३२-४१ માં આવેલા શબ્દો, જે આ પુસ્તકને અંતે આપવામાં આવ્યા છે તે જુઓ]. सु, अ એવાં શબ્દો જ્યારે કેટલાક શબ્દોના આરંભમાં લગાડવામાં આવે છે ત્યારે તેવા શબ્દોનો પહેલો વ્યંજન લુપ્ત થાય છે, જેમ કે आर्यपुत्र—अज्जउत्त, सुकुमार—सुउमार.

(ब) છેવટના म् અને न् જે અનુસ્વારના રૂપમાં પરિણત થાય છે, તે સિવાયના ખોડા વ્યંજ-નોનો લોપ થાય છે. ઘણી વાર છેવટના અનુસ્વારનો લોપ થાય છે. કેટલાંક નામોના અંત્ય વ્યંજનોને अ અગર आ લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે प्रावृष्—पाउस, सरित्—सरिआ.

(क) વચમાં આવેલા ઓડા અક્ષરો:—

क्, ग्, च्, ज्, त्, द्, प्, व्, य् નો વિકલ્પે લોપ થાય છે; પરંતુ त् અને प् નો જ્યારે લોપ ન થાય ત્યારે તેમને બદલે ઘણી વાર द् અને व्[1] અગર व् થાય છે. આવી રીતે થતો લોપ ગદ્ય કરતાં પદ્યમાં વિશેષ જોવામાં આવે છે. प्रति ઉપસર્ગને બદલે પ્રાકૃતમાં पडि લખવામાં આવે છે.

य् નો ઘણી વાર લોપ થાય છે, જેમ કે वायु—वाउ, नयन—णअण.

न् નો ण् થાય છે; અને ड् નો ड्[2] થાય છે, અને કેટલીક વાર ड् નો ल् થાય છે.

ख्, घ्, थ्, ध्, भ् એમ જ રહે છે, અગર તો તેમનો ह् થાય છે (જ્યારે थ् નો ह् ન થાય ત્યારે, અને ખાસ કરીને ગદ્યમાં, ध् થાય છે.) छ्, झ्, અને ढ् માં ફેરફાર થતો નથી. ठ् નો હંમેશા ढ् થાય છે; फ् સાધારણ રીતે અવિકૃત રહે છે, અને કદાચ તેનો भ् પણ થાય. (वर० ૨, ૨૬, સરખાવો લેસન સાહેબનું વ્યાકરણ, પાન ૨૦૮.)

र ને બદલે ઘણી વાર ल् થાય છે; અને આ પ્રમાણે માગધી અને બીજી કેટલીક હળકી ભાષાઓમાં નિયમિતપણે થાય છે. न्, म्, ल्, स्, ह् અવિકૃત રહે છે. श् અને ष् ને બદલે स् થાય છે, પરંતુ दस અને તેના ઉપરથી થતા શબ્દોમાં તથા दिवस માં, स નો ह् થાય છે, જેમ કે एकादश—एआरह, दिवस—दिअह, તેમજ, ईदश—एद्दह.

શબ્દની મધ્યમાંના ઓડા વ્યંજનોને કેટલીકવાર બેવડાવવામાં આવે છે; જેમ કે एक—एक्क અથવા एअ, अशिव—असिव्व અથવા असिव (वर० ૩, ૫૨, ૫૮).

૩. જોડાક્ષર પ્રકરણ.

પ્રાકૃત ભાષાના ખાસ ફેરફારો જોડાક્ષરોમાં થાય છે. જ્યારે વધારે સંસ્કૃત જોડાક્ષરો મળી જઈને એકાદ પ્રાકૃત રૂપ સિદ્ધ થાય છે ત્યારે તે રૂપ એકાએક ઓળખી શકાતું નથી. પ્રાકૃતમાં જુદા જુદા વર્ગના બે વ્યંજનોનું જોડાણ રહી શકતું નથી, તેથી તે વ્યંજનોમાંથી એકનો લોપ કરી, અને બીજાને બેવડાવી એક વર્ગના કરવા પડે છે. સામાન્ય નિયમ તરીકે, જોડાક્ષરોમાંના પહેલા વ્યંજનનો લોપ થાય છે, પરંતુ न्, म्, य् પહેલા ન હોય તો પણ તેમનો લોપ થાય છે, અને र, ल्, અને व् નો સર્વત્ર લોપ થાય છે. આ ઉપરાંત કેટલાક અપવાદો પણ છે. એક નિયમ ખાસ યાદ રાખવો જોઈએ કે—જ્યારે કોઈ જોડાક્ષરમાં ઊષ્માક્ષર આવ્યો હોય, ત્યારે તેનો લોપ કરી તેને બદલે તેની સાથે જોડાયલા વ્યંજન પછીનો મહાપ્રાણ વ્યંજન મૂકવામાં આવે છે. જેમ કે स्क, ष्क અથવા क्ष ને બદલે क्ख થાય; અગર તો, ઊક્ષ્માક્ષરની સાથે જોડાયલા વ્યંજનની પછીનો મહાપ્રાણ વ્યંજન ન હોય તો ઊષ્માક્ષરને બદલે ह મૂકવામાં આવે છે, જેમ કે स्न અથવા ष्ण ને બદલે ण्ह. પરંતુ જ્યારે આવી પરિસ્થિતિ સામાસિક શબ્દના પદોમાં આવી હોય ત્યારે ઉપર્યુક્ત નિયમ જળવાતો નથી; જેમ કે तिरस्कारो—तिरक्कारो (तिरक्खारो એમ ન થાય.) र् અને ह् કદી પણ બેવડાતા નથી. જોડાક્ષરમાં ह् આવ્યો હોય તો છેવટે લખાય છે, જેમ કે ब्राह्मण—वम्हण. જોડાક્ષરમાં र् આવ્યો હોય તેનું અનુસ્વાર થાય છે; આ નિયમ व् અને ઊષ્માક્ષરમાં પણ કોઈક વખતે લાગુ પડે છે; જેમ કે दर्शन—दंसन, वक्र—वंक, अश्व—अंस, अश्रु—अंसु; (જુઓ वर० ૪, ૧૫). કેટલીક વાર જોડાક્ષરની વચમાં એક નવો સ્વર મૂકવામાં આવે છે;

---

૧. व પ્રાકૃત અક્ષર હશે કે નહિ તે શંકાસ્પદ છે, કારણ કે પ્રતોમાં હંમેશાં व લખેલો હોય છે.

૨. ड् અને र् વારંવાર એક બીજાને બદલે વપરાય છે, જેમકે वेणीसं० પા. ૧૯, ૧-૨, માં पडिहडिस्सामो (परिहरिस्यामः), તથા शाकुं०, પા. ૫૬, ૧-૧૨, (બૅાથલીંગ), मलअतरुम्मूलिआ [मलअतरु-(ड्)]

જેમ કે हर्ष—हरिस (જુઓ वर० ૩, ૫૯-૬૬); ઘણી વાર र्य માં આવેલા य् નો इ થાય છે, જેમ કે चौर्य—चोरिअ.

પ્રાકૃત જોડાક્ષરોની તાલિકા.

નીચેની તાલિકામાં સંસ્કૃત જોડાક્ષરોનાં પ્રાકૃત રૂપો આપ્યાં છે, જેમાંના ફેરફાર શબ્દના મધ્યમાં થાય છે એમ સમજવું; પણ તે પ્રાકૃત જોડાક્ષરોમાંના પહેલા અક્ષરનો લોપ કરવાથી તે રૂપો શબ્દના આરંભમાં પણ ઉપયોગમાં આવે; જેમ કે यक्ष—जक्ख; પણ क्षत—खद; તેજ પ્રમાણે શબ્દની વચમાં હોય તો प्र નો प्प થાય છે, અને આરંભમાં હોય તો प्र નો प થાય છે.

क्क=त्क, क्त (?),[1] क्य, क्र, र्क, ल्क, क्ल, क्व; જેમ કે उत्कण्ठा, मुक्त, चाणक्य, शक्र, अर्क, विक्लव, उल्का, पक्व, ને બદલે અનુક્રમે उक्कण्ठा, मुक्क, चाणक्क, सक्क, अक्क, उक्का, विक्कव, पिक्क થાય છે

क्ख=त्ख, ख्य, क्ष, त्क्ष, (क्ष्य), ष्क, स्क, (ष्ख), स्ख, :ख; જેમ કે उत्खण्डित, आख्या, यक्ष, उत्क्षिप्त, मुष्क, स्कन्ध, स्खलित, दुःख ને બદલે उक्खण्डित, अक्खा, जक्ख, उक्खित्त, मुक्ख, खन्द, खलिअ, दुक्ख થાય છે.

ग्ग=ड्ग, द्ग, ग्न, ग्म, ग्य, ग्र, र्ग, ल्ग; જેમ કે खड्ग, मुद्ग, नग्न, युग्म, योग्य, समग्र, वर्ग, वल्गित ને બદલે खग्ग, मुग्ग, णग्ग, जुग्ग, जोग्ग, समग्ग, वग्ग, वग्गिद थाय છે.

ग्घ=(ड्घ), द्घ, घ्न, घ्र, र्घ; જેમ કે उद्घाटित, विघ्न, शीघ्र, निर्घृण ને બદલે उग्घाडिद, विग्घ, सिग्घ, णिग्घिण થાય છે.

ङ्ख=ङ्क्ष; જેમ કે सङ्क्षोभ—सङ्खोह (અથવા सङ्क्खोह ?).

च्च=च्य, त्य, र्च; अच्युत, नित्य, चर्चरिका ને બદલે अच्चुद, णिच्च, चच्चरिआ થાય છે.[3]

च्छ=थ्य, र्छ, क्ष, क्ष, त्क्ष, क्ष्म, त्स, त्स्य, प्स, श्च; જેમ કે मिथ्या, मूर्च्छा, कुक्षाणक, अक्षि, उत्क्षिप्त, लक्ष्मी, वत्स, मत्स्य, लिप्सा, आश्चर्य ને બદલે मिच्छा, मुच्छा, कुच्छाणअ, अच्छि, उच्छित्त, लच्छी, वच्छ, मच्छ, लिच्छा, अच्छेर થાય છે.

ज्ज=ब्ज, ज्ञ (કોઈક વખત) ज्र, र्ज, ज्व, द्य; र्य, य्य. (ભાગ્યેજ); જેમ કે कुब्ज, सर्वज्ञ, वज्र, गर्जित, प्रज्वलित, विद्या, कार्य, शय्या ને બદલે खुज्ज, सव्वज्ज, वज्ज, गज्जिद, पज्जलिद, विज्जा, कज्ज, सेज्जा થાય છે.

ज्झ=ध्य, ह्य; જેમ કે मध्य, वाह्यक, ને બદલે मज्झ, वज्झअ થાય છે.

ट्ट=र्त; જેમ કે नर्तकी નું णट्टई થાય છે.

ट्ठ=ष्ट, ष्ठ;[4] જેમ કે दृष्टि, गोष्ठी નું दिट्ठि, गोट्ठी થાય છે.

ड्ड=र्त, र्द (ભાગ્યેજ); જેમ કે गर्त, गर्दभ નું गड्ड, गड्डह થાય છે.

---

૧. क्क=क्त ઘણાં નાટકોમાં જોવામાં આવેછે, જુઓ मृच्छ०, પા. ૨૯ ૧-૨૦ ઉપર સ્ટેન્ઝરની નોટ.

૨. ખાસકરીને સમાસમાં क्क=ष्क, स्क વપરાય છે, જેમકે निक्कम्प=निष्कम्प બાકી અન્ય સ્થળે क्ख થાય છે. તેજ પ્રમાણે च्च=श्च અને प्प=स्प, અગર ष्प.

૩. કવચિત् श्च ને બદલે च्च જોવામાં આવે છે, પણ ખાસ કરીને निच्चअ (निश्चय) જેવા શબ્દોમાં જ જેમાં निस् ઉપસર્ગ च થી શરૂથતા શબ્દ સાથે જોડાએલો છે.

૪. अट्ठि (अस्थि=હાડકું), તથા ठिअ (स्थित) માં ट्ठ એ स्थ ने માટે વપરાય છે.

ड्ढ=ढ्य; જેમ કે आढ्य નું अड्ढ થાય છે.

ण्ण=ग्न (?), ज्ञ, म्न, न्न, ण्य, न्य, र्ण, ण्व, न्व, જેમ કે रुग्ण, यज्ञ, प्रद्युम्न, प्रसन्न, पुण्य, अन्योन्य, वर्ण, कण्व. अन्वेषणा, ને બદલે रुण्ण जण्ण, पज्जुण्ण, पसण्ण, पुण्ण, अण्णोण्ण, वण्ण, कण्ण, अण्णेसणा થાય છે.

ण्ह=क्ष्ण श्न. ष्ण, स्न, ह्ण, ह्न; જેમ કે तीक्ष्ण, प्रश्न, विष्णु, प्रस्नुत, पूर्वाह्ण, वह्नि ને બદલે तिण्ह, पण्ह, विण्हु, पण्हुद, पुव्वण्ह, वण्हि થાય છે.

त्त=क्त, प्त, त्न, त्म, त्र, त्व, र्त; જેમ કે भक्त, सुप्त, पत्नी, आत्मा, शत्रु, सत्त्व, मुहूर्त ને બદલે भत्त, सुत्त, पत्ती, अत्ता, सत्तु, सत्त, मुहुत्त થાય છે.

त्थ=क्थ, त्र,[1] र्थ, स्त, स्थ; જેમ કે सिक्थक, तत्र, पार्थ, हस्त, अवस्था ને બદલે सित्थअ, तत्थ, पत्थ, हत्थ, अवत्था થાય છે.

द्द=ब्द, (ग्न ?), द्र, र्द, द्व; જેમ કે शब्द, भद्र, शार्दूल, अद्वैत ને બદલે सद्द, भद्द, सद्दूल, अद्दइअ થાય છે.

द्ध=ग्ध, ब्ध, र्ध, ध्व; જેમ કે स्निग्ध, लब्ध, अर्ध, अध्वन्, ને બદલે सिणिद्ध, लद्ध, अद्ध, अद्धा થાય છે.

न्द=न्त (શૌરસેનીમાં કદાચ થાય છે.) જેમ કે किन्तु, प्रभावान् ને બદલે किन्दु, पहावन्दो થાય છે.[2]

प्प=त्प, क्ष्य, प्र, र्प, ल्प, प्लु, क्म;[3] જેમ કે उत्पल, विक्षप्य, अप्रिय, सर्पणीय, अल्प, विप्लव, रुक्म ને બદલે उप्पल, विण्णप्प, अप्पिअ, सप्पणीय, अप्प, विप्पव, रुप्प થાય છે.

प्फ=त्फ, ष्फ, (ःफ), स्फ, ष्प, स्प; જેમ કે उत्फुल्ल, निष्फल, स्फुट, पुष्प, शरीरस्पर्श ને બદલે उप्फुल्ल, णिप्फल, फुड, पुप्फ, सरीरप्फंस થાય છે.

ब्ब=द्ब, र्व, व्र; જેમ કે उद्बन्ध्य, अब्राह्मण्य ને બદલે उव्वन्धिय, अव्वम्हणम्.

ब्भ=ग्भ, द्भ, भ्य, भ्र, र्भ;[4] જેમ કે प्राग्भार, सद्भाव, अभ्यर्थना, अभ्र, गर्भ ને બદલે पब्भार, सब्भाव, अब्भत्थणा, अब्भ, गब्भ થાય છે.

म्म=ङ्म, ण्म, न्म, म्य, र्म, ल्म;[5] જેમ કે दिङ्मुख, षण्मुख, जन्म, सौम्य, वर्मन्, गुल्म ને બદલે दिम्मुह, छम्मुह, जम्म, सोम्म, वम्म, गुम्म થાય છે.

म्ह=ष्म, क्ष्म, स्म, ह्म; જેમ કે ग्रीष्म, पक्ष्मन्, विस्मय, ब्राह्मण ને બદલે गिम्ह, पम्ह, विम्हअ, बम्हण થાય છે.

य्य=र्य, र्ज, (માગધી); જેમ કે कार्य, दुर्जनः ને બદલે कय्ये, दुय्यणे થાય છે.

रि=दृ, र्य (કદાચ); જેમ કે तादृश, चौर्य ને બદલે तारिस, चोरिअ થાય છે.

---

૧. त्र નેબદલે त्थ અકેલા અવ્યયોમાંજ વપરાય છે, જેમકે एत्थ (अत्र), तत्थ (तत्र).

૨. જુઓ બોથલિંગનું शाकुं०, પા. ૧૫૫ નોટ

૩. आत्मा નું પ્રાકૃત अप्पा તથા अत्ता બેઉ છે. प्प=स्प, स्फ, ફક્ત સમાસમાંજ, જેમકે चउप्पहो=चतुष्पथः

૪. ब्भ=ह्व, જેમકે विब्भल=विह्वल.

૫. मिल्=म्ल्, જેમકે मिलाण=म्लान જુઓ લેસન, પા. ૨૫૮. વળી, व=द्व, જેમકે वारह=द्वादश.

ल्ल = ल्य, र्ल, (ल्व), र्य (ભાગ્યેજ); જેમ કે शल्य, निर्लज्ज, पर्याण ને બદલે सल्ल, णिल्लज्ज, पल्लाण થાય છે.

ल्ह = ह्ल; જેમ કે कह्लार નું कल्हार થાય છે.

व्व = [1] व्य, (व्र), र्व, જેમ કે काव्य, पूर्व ને બદલે कव्व, पुव्व થાય છે.

स = र्श, श्र, श्व, स्व; જેમ કે दर्शन, अश्रु, अश्व, मनस्विनी ને બદલે दंसण, अंसु, अंसो, मणंसिणी થાય છે.

स्स = र्ष, श्म, श्य, श्र, श्व, ष्म, ष्य, ष्व, स्य, स्र, स्व; જેમ કે ईर्षा, रश्मि, राजश्यालक, विश्रान्त, अश्व, शुष्म, पुष्य, परिष्वजामि, तस्य, सहस्र, तपस्विन् ને બદલે इस्सा, रस्सि, राजस्सालअ, विस्सन्त, अस्स, सोस्स, पुस्स, परिस्सआमि, तस्स, सहस्स, तवस्सी થાય છે.

તા. ક.—જો સંસ્કૃત શબ્દોમાં ત્રણ વ્યંજનો જોડાયલા હોય તો તેમાંના અર્ધસ્વરનો પ્રાકૃત કરતી વખતે, લોપ કરવામાં આવે છે, અને ત્યાર પછી બાકી રહેલા વ્યંજનો માટે ઉપર્યુક્ત નિયમો લાગુ પાડવામાં આવે છે; જેમ કે मत्स्य = मच्छ; પરંતુ આવા (અર્ધસ્વર વાળા) જોડાક્ષરની પહેલાં અનુનાસિક વ્યંજન આવ્યો હોય તો બાકી રહેલા જોડાક્ષરોની બાબતમાં સામાન્ય નિયમો લાગી શકે છે; માત્ર અનુનાસિક પછી તેઓ બેવડાતા નથી; (વર૦ ૩, ૫૬) જેમ કે विन्ध्य = विञ्झ. [ध्य નો झ (वर० ૩, ૨૮) પ્રમાણે થાય છે.]

ઉપર્યુક્ત નિયમો ઉપરાંત, હાલ કવિના સપ્તશતકની જેમ બીજાં પદ્યોમાં ઘણી અનિયમિતતા જોવામાં આવે છે; જેમ કે त्रैलोक्य નું પ્રાકૃત રૂપ વરરૂચિએ तेलोअ તથા तेल्लोक्क આપ્યું છે. તેજ પ્રમાણે नभस्तल નું પ્રાકૃત રૂપ णहअल (उत्तरराम०, પા. ૧૦૫, तथा सप्तश० ७४), तथा णहत्थल (मालती०, પા ૯૦), વિગેરે જોવામાં આવે છે.

વિભાગ ૨.

પ્રાકૃત નામો પાંચ જાતનાં હોઈ શકેઃ ૧ अકારાંત તથા आકારાંત; ૨ इકારાંત તથા ईકારાંત; ૩ उકારાંત તથા ऊકારાંત; ૪ મૂળરૂપે ऋકારાંત; ૫ વ્યંજનાંત.

છેલ્લા બે વિભાગમાં પડે એવાં નામો ઘણાં થોડાં છે. ऋકારાંત પુલ્લિંગ શબ્દોને अर અથવા आर અંતવાળા બનાવવામાં આવે છે; જેમ કે पिता-पिअरो; पित्रा-पिअरेण, भर्ता-भत्तारो, भर्ता-भत्तारेण. પ્રથમા તથા દ્વિતીયા બહુવચનમા, તૃતીયા અને ષષ્ઠી એકવચનમાં, તેમજ સપ્તમી બહુવચનમાં, છેવટના ऋ ને બદલે उ મૂકવામાં આવે છે, અને પછી उકારાંત શબ્દોની માફક તેનાં રૂપો ચાલે છે; જેમ કે भर्तृणा-भत्तुणा, भर्तुः-भत्तुणो. આવું રૂપ વપરાયલું પણ જોવામાં આવે છે, જેમ કે भर्तृकुल-भत्तुकुल. સંબન્ધદર્શક નામોનું પ્રથમા એકવચન आ અંતવાળું પણ હોય છે, જેમ કે पिता-पिआ; मातृ-माआ, અને ત્યાર પછી आકારાંત સ્ત્રીલિંગ નામોની માફક તેનાં રૂપો ચાલે છે. भर्तृ નું સંબોધનરૂપ भट्टा થાય છે અને તેનું સ્ત્રીલિંગરૂપ भट्टिनी અથવા भट्टिणी થાય છે.

વ્યંજનાંત નામોની દ્વિવિધ ગતિ થાય છેઃ (૧) તેમનો અંત્ય વ્યંજન ઉડી જાય છે અને ત્યાર બાદ ઉપર બતાવેલી પહેલી ત્રણ રીતે તેમનાં રૂપ ચાલે છે (નપુંસકલિંગ નામ પુલ્લિંગ બની જાય છે), જેમ કે सर (सरस्) નું પ્રથમાનું રૂપ सरो, कम्म (कर्मन्) નું कम्मो થાય છે; અથવા (૨) મૂળ શબ્દને अ કે आ લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે शरद् નું सरदो; आशिस् નું आसिसा. જે વિભક્તિઓના પ્રત્યયો વ્યંજનથી શરૂ થતા હોય તેમને માટે સાધારણ રીતે આ નિયમો લાગે છે. આ ઉપરથી જણાશે કે આ યુક્તિઓ વાપરવાનું કારણ વ્યંજનથી શરૂ થતા

---

૧. व्व=द्व, જેમકે उव्वेल्लइ=उद्वेष्टते (वर० ૮, ૪૧), જેમાં उद् ની પછી व આવે છે.

પ્રત્યયો વ્યંજનાંત શબ્દો સાથે જોડાતાં જે નવા જોડાક્ષરો ઉત્પન્ન થાય તથા જે નવા ફેરફારો કરવા પડે તે દૂર કરવાનું હોવું જોઈએ. પરંતુ સ્વરથી શરૂ થતા વિભકિતના પ્રત્યયો આગળ ઘણું ખરૂં સંસ્કૃત રૂપજ રાખવામાં આવે છે; અલબત, તેમાં પ્રાકૃત નિયમોપ્રમાણે ફેરફાર થાય છે, જેમ કે भवदा (भवत् નું તૃતીયાનું રૂપ), आउसा (आयुषा, आयुस् નું તૃતીયાનું રૂપ).

પ્રાકૃતમાં દ્વિવચન નથી તેમજ ચતુર્થી વિભકિત નથી (ચતુર્થીને બદલે ષષ્ઠી વપરાય છે); પંચમી બહુવચનના બે પ્રત્યયો છેઃ हिंतो 'માંથી' ના અર્થમાં પ્રેરકમાં વપરાય છે, અને सुंतो 'માંથી' ના અર્થમાં સાધારણ રીતે વપરાય છે. ખાસ ઉપયોગી એવાં પહેલા ત્રણ પ્રકારનાં રૂપો નીચે-પ્રમાણે છે. उકારાંત શબ્દોના રૂપ इકારાંત પ્રમાણે ચાલતાં હોવાથી ખાસ અહીં આપવામાં આવ્યાં નથી.

નામનાં રૂપાખ્યાન.

वच्छ=वृक्ष (नपुंस० वण=वन)

	એક વચન.	બહુવચન.
प्र०	वच्छो (नपुं० वणं)	वच्छा (नपुं. वणाइं,-इ, वणा; वणानि ગદ્યમાં વપરાય છે).
द्वि०	वच्छं – „	वच्छे; वच्छा (नपुं०=प्रथमा०)
तृ०	वच्छेण,-णं	वच्छेहिं,-हि
पं०	वच्छादो,—दु—[1] वच्छाहि, वच्छा	वच्छेहिं,-हि वच्छासुंतो, वच्छेसुंतो
ष०	वच्छस्स	वच्छाणं-ण
स०	वच्छे, वच्छम्मि	वच्छेसु-सुं
सं०	वच्छ, वच्छा (नपुं० वण)	वच्छा (नपुं० वणाइं-इ).

अग्गि=अग्नि (पुंल्लिंग) दहि=दधि (नपुंस०).

	એક વચન.	બહુવચન
प्र०	अग्गी (नपुं० दहिं)	अग्गीओ, अग्गिणो (नपुं. दहीइं,-)
द्वि०	अग्गिं – „	अग्गिणो अग्गी (?).- „
तृ०	अग्गिणा	अग्गीहिं,-हि
पं०	अग्गीदो,-दु,-हि	अग्गीहिंतो,-सुंतो.
ष०	अग्गिणो, अग्गिस्स	अग्गीणं,-ण.
स०	अग्गिम्मि	अग्गीसु,-सुं
सं०	अग्गि (नपुं. दहि)	अग्गीओ, अग्गिणो (नपुं. दहीइं,-इ)

माला (स्त्रीलिंग)

	એક વચન	બહુવચન.
प्र०	माला	मालाओ,-उ; माला[2]
द्वि०	मालं	„
पं.	मालदो,-दु,-हि.	मालाहिंतो,-सुंतो.

૧. ગદ્યમાં સામાન્ય રીતે दो વાળુંજ રૂપ વપરાય છે.

૨. माला માટે જુઓ वर० ૫, ૨૦., તથા शाकुं०માં પા૦ ૧૫ ઉપર, दमसाणा શબ્દપર આપેલી બોથલીંગની ટીકા.

तृ० प० स० मालाए,-इ	मालाहिं,-हि
	मालाणं,-ण
	मालासु,-सुं
सं० माले	मालाओ,-उ

પ્રાકૃતમાં સ્ત્રીલીંગી इकारांत અને ईकारांत તથા उकारांत અને ऊकारांत નામોનાં રૂપોમાં ફેરફાર હોતો નથી.

णई=नदी (स्त्रीलिंग)

એક વચન.	બહુવચન.
प्र० णई	णईओ,-उ; (द्वितीया० णई ? જુઓ લૅસન, પા. ૩૦૭, નોટ ૨.)
द्वि० णई	
पं० णईदो,-दु,-हि	णईहिंतो,-सुंतो
तृ० प० स० णईअ,-आ णईइ,-ए	णईहिं,-हि
	णईणं,-ण
	णईसु,-सुं
सं० णइ	णईओ,-उ

ता તથા त्व છેડાવાળાં ભાવવાચક નામો પ્રાકૃતમાં दा અને त्तण છેડાવાળાં બની જાય છે, જેમ કે पीणदा, पीणत्तण. मत् અને वत् પ્રત્યયોનાં પ્રાકૃતમાં જુદાં જુદાં રૂપો થાય છે, જેમ કે उल्ल, इल्ल, आल, वंत, इंत (ગદ્યમાં वंद, इंद), જેમ કે वियारुल्ल (विकारवत्). તચ્છીલ્યાર્થે इर પ્રત્યય વપરાય છે, જેમ કે हसिर. સ્વાર્થે क (अ) પ્રત્યય જોડવામાં આવે છે. જેમ કે भ्रमर—भमरअ, सखी—सहिआ. तृ (तृक) પ્રત્યયને બદલે त्तअ થાય છે, જેમ કે उन्मादयितृ—उम्मादइत्तअ, आयासयित्री—आआसइत्तिआ (સ્ત્રીલિંગ).

વિભાગ ૩.

સર્વનામ પ્રકરણ.

પ્રાકૃતમાં સર્વનામનાં રૂપો નામપ્રમાણે ચાલે છે. અને તે ઉપરાંત કેટલાંક નવાં રૂપો પણ ઉમેરાય છે. નીચે આપેલાં ज = य નાં રૂપો ઉપરથી બીજાં ખાસ ઉપયોગી રૂપો સમજાઈ જશે.

પ્રાકૃતમાં વ્યંજનાંત શબ્દ રાખવામાં આવતો નથી, તેથી સંસ્કૃતનાં કેટલાંક સર્વનામોને પ્રાકૃતમાં વિભક્તિના પ્રત્યયો લગાડતાં કેટલાક ફેરફાર કરવા પડે છે; જેમ કે किम्, यद्, तद् ને બદલે क, ज, त થાય છે. एतद् નું एद, અને કોઈકવાર ए થાય છે (તેથી एत्ता = एतस्मात्); इदम् નું इम થાય છે; अदस् નું असु થાય છે. किम्, यद्, तद् નું બીજું રૂપ कि, जि, ति પણ થાય છે; જોકે આ પાછળના રૂપો સ્ત્રીલિંગમાં વપરાય છે તો પણ પુલ્લિંગની અને નપુંસકલિંગની તૃતીયા અને ષષ્ઠીમાં તેમનાં કેટલાંક રૂપો આવે છે. इदम् નું પણ તૃતીયાનું इमिना રૂપ થાય છે. ખરી રીતે પ્રાકૃતમાં સર્વનામનાં રૂપોમાં બહુ નિયમિતતા જોવામાં આવતી નથી; તેથી इमस्सि ખરી રીતે પુલ્લિંગ સપ્તમીનું રૂપ હોવા છતાં ઘણી વાર સ્ત્રીલિંગમાં વપરાયું છે જેમ કે शाकुन्तल (મોનીયર વીલીયમ), પા૦ ૩૬, ૨; ૧૧૫, ૩.

વરરૂચિએ ખાસ આપેલાં કેટલાંક રૂપો હું નીચે આપું છું. तस्मात् અને एतस्मात् ને બદલે तो અને एत्तो (૬, ૧૦, ૨૦); तस्य અને तस्याः ને બદલે से (૬, ૧૧); तेषां અને तासां ને

બદલે सिं. अदस् પ્રથમા એકવચન ત્રણે લિંગમાં अह. જો કે વરરૂચિએ જણાવ્યું નથી તો પણ एनम् અને एनाम् ने બદલે નાટકોમાં णं વપરાયેલું જોવામાં આવે છે. कियत्, तावत् વિગેરેને બદલે केद्दह, केत्तिअ, तेद्दह, तेत्तिअ વિગેરે આપેલાં છે (૪, ૨૫); પરંતુ ખરી:રીતે केद्दह વિગેરે कीदश વિ. ને માટે હોવાં જોઈએ.

जं=य (પુલ્લિંગ) કોણ.

	એક વચન.	બહુવચન.
प्र०	जो (जं नपुं० किं=किम्)	जे (जाइं,-इ नपुं०)
द्वि०	जं —	जे —
तृ०	जेण, जिणा	जेहिं, जेहि
पं०	जत्तो,-त्तु, जदो,-दु	जाहिंतो, जासुंतो
ष०	जस्स, जास[1]	जाणं,-ण, जेसिं
स०	जस्सि,-स्सि जम्मि,-म्मि जहिं, जहि, जत्थ	जेसु,-सुं

સ્ત્રીલિંગ.

	એક વચન.	બહુવચન.
प्र०	जा	} जाओ-उ, जीओ,-उ
द्वि०	जं	
पं०	जादो,-दु, जीदो (?)	जाहिंतो,-सुंतो, जीहिंतो,-सुंतो
तृ०	} जाए,- इ, जीए,-इ, जीआ,-अ	जाहिं, जीहिं
ष०	जस्सा जासे (?) जिस्सा, जीसे } जाए,- इ, जीए,-इ, जीआ,-अ	जासिं, जाणं,-ण, जीणं,-ण, जीसिं, (जासां, जेसिं)
स०	} जाए,- इ, जीए,-इ, जीआ,-अ	जासु,-सुं, जीसु,-सुं

વરરૂચિએ (૬, ૨૫-૫૩) માં પુરૂષ સર્વનામો આપ્યાં છે. જે રૂપો નાટકોમાં કદી પણ આવતાં નથી તેમને મેં બ્રૅકેટમાં મૂકયા છે. બહુવચનનાં રૂપો તદ્દન જુદીજ રીતે થાય છે, જેમ કે तुज्झ, तुम्ह, तुम्म, अम्ह, તથા मज्झ.

अस्मद् ' હું '

	એક વચન.	બહુવચન
प्र०	अहं (हं, अहअं, अहम्मि)	अम्हे (वअं ગદ્યમાં વપરાય, વર૦ ૨૦, ૨૫)
द्वि०	मं, ममं (अहम्मि)	अम्हे, णो (णे)
तृ०	मे, मए (मइ, ममाइ)	अम्हेहिं,-हि
पं०	मत्तो (मइत्तो, ममादो,-दु ममाहि)	अम्हाहिंतो,-सुंतो
ष०	मे, मम, मज्झ, मह[2]	णो, अम्ह, अम्हाणं, अम्हे[3] (मज्झ ?).
स०	मइ (मए, ममम्मि)	अम्हेसु

---

१. વળી, નાટકોમાં નપુંસકલિંગ ષષ્ઠીમાં कीस ' શામાટે ' એવા અર્થમાં વપરાયલું જણાય છે.
૨. આ રૂપો ઉપરાંત सप्तश० માં ममं અને महं રૂપો વપરાયેલાં જણાય છે.
૩. આ રૂપો ઉપરાંત सप्तश० માં अम्हं, अम्मं, म्ह, अम्हि, अम्हाण રૂપો વપરાયેલાં જણાય છે.

युष्मद् ' तु '

प्र०	तुमं, तुं (तं)	तुज्झे, तुम्हे
द्वि०	(तं, तुं) तुमं	तुज्झे, तुम्हे, वो
तृ०	तइ, तए, तुमए, तुमे, (तुमाइ) ते, दे	तुज्झेहिं, तुम्मेहिं, तुम्हेहिं
पं०	तत्तो (तइत्तो, तुमादो,-दु, तुमाहि)	तुम्हाहिंतो,-सुंतो
ष०	(तुमो) तुह, तुज्झ, तुम्ह, तुम्म, तुव, तुअ, ते, दे	वो, (भे) तुज्झाणं, तुम्हाणं
स०	तइ, तुइ, तए, (तुमए, तुमे तुमम्मि	तुज्झेसु, तुम्हेसु

પ્રથમનાં ત્રણ સંખ્યાવાચક શબ્દોનાં પ્રાકૃતરૂપ एअ અગર एक्क, दो (પ્રથ૦ અને દ્વિતી૦-दो, दुवे, दोणि; षष्ठी-दोण्हं), ति (પ્રથ૦-तिण्णि, षष्ठी-तिण्हं) થાય છે. षष् ને બદલે छ થાય છે.

વિભાગ ૪.

ક્રિયાપદ પ્રકરણ

ખરી રીતે જોતાં પ્રાકૃતમાં એકજ ગણ (=સંસ્કૃતનો પહેલો અને છઠ્ઠો) છે. સામાન્ય રીતે બધા ધાતુઓને આજ ગણમાં લાવવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવે છે, તો પણ અન્યાન્ય ગણનાં કેટલાંક રૂપો નાટકોમાં જોવામાં આવે છે.

નામ પ્રક્રિયામાં જણાવ્યા પ્રમાણે ક્રિયાપદમાં પણ દ્વિવચનરૂપ થતાં નથી.

કર્તરિ પ્રયોગમાં ફક્ત વર્તમાનકાળ, સામાન્ય ભવિષ્યકાળ, તથા આજ્ઞાર્થ જોવામાં આવે છે.

વર્તમાનકાળનાં રૂપો.

	એક વચન.	બહુવચન.
પ્ર० पु०	हसामि, हसमि. हसम्हि	हसामो,-मु,-म, हसिमो,-मु,-म हसमो,-मु,-म, हसम्हो,-म्ह
द्वि० पु०	हससि	हसह (ગદ્યમાં हसध,-धं) हसित्था (हसत्थ ?)
तृ० पु०	हसदि[1] हसइ	हसन्ति[2]

મધ્યમ પ્રયોગમાં ત્રણે પુરૂષનાં એકવચનનાં રૂપો થાય છે, જેમ કે ૧. मणे, ૨. सहसे, ૩ सहदे, અથવા सहए.

આજ્ઞાર્થ.

	એક વચન	બહુવચન.
૧.	हसमु (वर० ७. १८)	हसामो,-म हसमो,-म, हसम्ह.
२.	हससु, हस, हसाहि, हसस्स	हसह, हसध,-धं
३.	हसदु[1], हसउ	हसन्तु.

---

૧. આ ગદ્યમાં વપરાતું રૂપ છે. તેજ પ્રમાણે दुं વાળાં સામાન્યરૂપ, તથા इद વાળા ભૂત કૃદંત પણ ગદ્યમાં વપરાતાં રૂપો છે.

૨. अस् ' થવું ' નાં રૂપો નીચે પ્રમાણે છે. એક વચન. ૧. मम्हि, ૨. असि, ३. अत्थि, બહુવ૦ अम्हो, अम्ह, ३ सन्ति. તેજ પ્રમાણે ઍન્કલીટીકમાં એક વ૦ १ म्हि, २ सि ३ त्थि, બહુવ૦ १ म्हो, म्ह, २ त्थ. અનદ્યતનભૂતમાં એકવ૦ ૧. आसिं, आसि, २. ३. आसि,

કોઈ પણ પુરુષપ્રત્યયની પહેલાં अ ને બદલે ए વિકલ્પે કરી શકાય છે (वर० ૧, ૩૪), જેમ કે हसेमि, વિગેરે; हसेहि, हसेदु, વિ૦; બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો, अय નું ટુંકુ રૂપ ए હોવાથી એમ કહી શકાય કે પ્રાકૃતમાં ક્રિયાપદોનાં રૂપો સંસ્કૃતના દસમા ગણના ક્રિયાપદો પ્રમાણે વિકલ્પે થાય છે. इकारांत અને उकारांत પહેલા ગણના સંસ્કૃત ક્રિયાપદોના अय અને अव ને બદલે ए અને ओ મૂકવામાં આવે છે, જેમ કે जयतु—जेदु, भवसि—होसि; અથવા તો य् નો લોપ થાય છે, અને व् ને રાખવામાં આવે છે, જેમ કે जअदु, हवसि. ऋकारांत ક્રિયાપદોમાં अर મૂકવામાં આવે છે, જેમ કે हरति—हरइ, म्रियते—मरइ. ચોથા ગણના ધાતુઓમાં અંત્ય વ્યંજન બેવડાય છે, જેમ કે कुप्यसि—कुप्पेसि, અથવા य् નો લોપ કરીને જુદું જ રૂપ કરવામાં આવે છે, જેમ કે बुध्यसि—वुज्झसि. સાતમા ગણના ધાતુઓમાં અનુનાસિક ઉમેરવામાં આવે છે, અને પછી બીજા ગણોની માફક તેમનાં રૂપો ચલાવવામાં આવે છે, જેમ કે रुणद्धि—रुन्धदि, रुन्धइ, रुन्धेइ. પાંચમા ગણના ધાતુઓમાં ण ઉમેરવામાં આવે છે, જેમ કે शृणोमि—सुणामि, शृण्वन्तु—सुणन्तु; કેટલીક વાર સંસ્કૃત રૂપો પણ રાખવામાં આવે છે, જેમ કે चिणोमि; सुणु તથા सुणाहि. નવમા ગણમાં णा અને ण બેઉ વપરાય છે, જેમ કે जाणादि અને जाणदि (जानाति). તે ઉપરાંત जाणाहि અને जाणिहि રૂપો પણ જોવામાં આવે છે.

વિધ્યર્થનાં માત્ર કેટલાંક ત્રુટિત રૂપો જ જોવામાં આવે છે, જેમ કે ૧. भवेअं, जीवेअं, ૩. भवे, हरे (પણ જુઓ વેબરનું सत्तश०, પા. ૬૨.)

પ્રાકૃતમાં ભવિષ્યકાળનાં ઘણાં રૂપો છે.

(अ) ખાસ ઉપયોગમાં આવતાં રૂપોના પ્રત્યયો નીચે પ્રમાણે છે.

એકવચન. ૧. स्सं, स्सामि. ૨. स्ससि. ૩. स्सदि, स्सइ.

બહુવચન. ૧. स्सामो. ૨. स्सध, स्सह. ૩. स्सन्ति.

આ પ્રત્યયો લગાડતાં પહેલાં इ લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે हसिस्सं; વિગેરે. મૂળ સંસ્કૃત પ્રત્યય ष्य નું આ स्स તે પ્રાકૃત રૂપ છે.

(ब) બીજા પ્રત્યયોમાં स्स ને બદલે च्छ વપરાય છે, જેમ કે सोच्छं (श्रु નું પ્રથમ પુરુષી એકવચન). (જુઓ वर० ૭, ૧૬, ૧૭.).

(क) ત્રીજી જાતનાં પ્રત્યયોમાં स्स ને બદલે हि વપરાય છે, જેમ કે हसिहिमि વિગેરે. આ ઉપરાંત પહેલા પુરુષ એકવચન અને બહુવચનનાં हसिहामि અને हसिहामो એવાં રૂપો થાય છે. [વળી, काहं (कृ નું રૂપ), दाहं (दा નું રૂપ) પણ થાય છે; वर० ૭. ૨૬; काहं રૂપ વેબરના सत्तश० પા૦ ૧૯૦ માં વપરાએલું છે.]

[વળી, ज्ज, અને ज्जा પ્રત્યયો લગાડતાં કેટલાંક વિરલ રૂપો બને છે, (वर० ૭, ૨૦–૨૨), જેમ કે होज्ज, होज्जा, होज्जहिइ, होज्जाहिइ, વિગેરે. કેટલાંક ईअ અને हीअ અંતવાળા ભૂતાર્થ વચનનાં વિરલ રૂપો પણ દેખાય છે, (वर० ૭, ૨૩–૨૪) જેમ કે हुवीअ, होहीअ (अभूत्); જુઓ લૅસન્સ ઈન્સ્ટ૦, પા૦ ૩૫૩–૮. सत्तश० માં ज्ज અને ज्जा છેડાવાળાં કેટલાંક વિધ્યર્થ રૂપો વપરાએલાં છે.]

પ્રાકૃતમાં કર્મણિ પ્રયોગમાં કર્તરિનાજ પ્રત્યયો વપરાય છે; અને य પ્રત્યયને બદલે ईअ અથવા इज्ज પ્રત્યય લગાડે છે; જેમ કે पढीअइ, पढीअदि અથવા पढिज्जइ (पठ्यते). કેટલીક વાર य રાખવામાં આવતાં પૂર્વના વ્યંજન પ્રમાણે તેનું રૂપાંતર થાય છે, જેમ કે गम्मइ (गम्यते); दिस्सइ અગર दीसइ (दृश्यते).

પ્રેરક ભેદના પણ બે રૂપો છે; એકમાં સંસ્કૃતના अय् નો ए કરવામાં આવે છે, જેમ કે कर–कृ ઉપરથી कारेदि થાય છે (ધાતુમાંના પહેલા અક્ષરના अ નો आ કરવામાં આવે છે, वर० ૭. ૨૫)

બીજામાં આવે (આવે ?) લગાડવામાં આવે છે; જેમ કે कारावेदि અથવા करावेदि (અહીં, પ્રથમના अ નો વિકલ્પે आ થયો છે, વર૦ ૭. ૨૭).

જો ધાતુનો અંત્યાક્ષર વ્યંજન હોય તો तुमुन् રૂપ કરતી વખતે तुम् લગાડવામાં આવે છે, પણ અંત્યાક્ષર સ્વર હોય તો दुम् લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે वच् ઉપરથી वत्तुं; नी ઉપરથી नेदुं. ઘણીવાર વ્યંજનાંત ધાતુને इ અથવા ए લગાડીને ધાતુને સ્વરાંત બનાવવામાં આવે છે, અને ત્યાર પછી તેને दुम् પ્રત્યય લગાડવામાં આવે છે; જેમ કે रमिदु (रन्तु), કાવ્યમાં ઘણી વાર द્નો લોપ કરવામાં આવે છે, જેમ કે हस् ઉપરથી हसेउं, हसिउं.

સંસ્કૃતના त्वा અંતવાળા કૃદન્ત બનાવવાને પ્રાકૃતમાં तूण અગર ऊण પ્રત્યય લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે का=कृ ઉપરથી काऊण, घेत्=ग्रह् ઉપરથી घेत्तूण. સંસ્કૃતના य અંતવાળા કૃદંત બનાવવાને પ્રાકૃતમાં इअ લાગે છે, અને ગદ્યમાં ઘણાં ખરાં આના રૂપ વપરાય છે, જેમ કે गेण्ह् ग्रह् નું गेण्हिअ. કેટલીક વાર ગદ્યમાં त्वा ને સ્થાને दुअ વપરાય છે, જેમ કે कदुअ (कृत्वा); गदुअ (गत्वा), વિગેરે. (વર૦ ૧૨. ૧૦).

કર્તરિ વર્તમાન કૃદંતને અંતે अंत પ્રત્યય (અથવા, વર૦ ૭. ૩૪ પ્રમાણે एंत) લાગે છે; જેમ કે पढंत, सुणंत. (વરરુચિ ૭. ૧૧) ના કહેવા પ્રમાણે સ્ત્રીલિંગનાં पढई તેમજ पढंती એમ બે રૂપો થાય છે. મધ્યમ પ્રયોગમાં વર્તમાન કૃદંતનો પ્રત્યય माण છે (સ્ત્રીલિંગમાં माणी અથવા माणा પ્રત્યય લાગે છે).

કર્મણિ પ્રયોગમાં न्त અને माण પ્રત્યયો લાગે છે, અને તેની પહેલાં इज्ज પ્રત્યય લાગે છે, જેમ કે करिज्जन्त (कार्यमाण), તેમજ, डज्झन्त (दह्यमान), रक्खीअमाण (रक्ष्यमाण). ભૂતકૃદંતના રૂપો સંસ્કૃતપ્રમાણે થઈ તેમાં પ્રાકૃતના નિયમો પ્રમાણે ફેરફાર થાય છે, જેમ કે सुद અથવા सुअ=श्रुत; लद्ध=लब्ध; કોઈક વાર इ વચ્ચે ઉમેરવામાં આવે છે, જેમ કે धरिद (धृत), सुणिद (श्रुत). આ ઉપરાંત કેટલાંક અનિયમિત રૂપો થાય છે, જેમ કે रुण्ण (रुदित). વિધ્યર્થ કૃદંતના य નો તેની પહેલાંના વ્યંજન પ્રમાણે ફેરફાર થાય છે, જેમ કે विणप्प (विज्ञाप्य), कज्ज (कार्य); अनीय પ્રત્યયને બદલે अणीअ, અથવા अणिज्ज થાય છે, જેમ કે पूअणीअ (पूजनीय), करणिज्ज (करणीय).

પ્રાકૃતમાં પરોક્ષભૂત કાળ નથી. તેના ઠેકાણે અકર્મક ધાતુના અર્થમાં ભૂતકાલવાચક ધાતુસાધિત વિશેષણ (कर्तरि क्तः) નો ઉપયોગ કરવામાં આવે છે. અને સકર્મક ધાતુના અર્થમાં તેવાજ રૂપની કર્તાની તૃતીયા અને સકર્મની પ્રથમા વિભક્તિ વડે કામ લેવામાં આવે છે.

અવ્યયોવિષે પ્રાકૃતમાં વિશેષ જાણવા જેવું કાંઈ નથી. ફક્ત એટલુંજ જાણવું જોઈએ કે इति ને બદલે त्ति મૂકવામાં આવે છે, જેની પહેલાં आ, ई અથવા ऊ ને હ્રસ્વ બનાવવામાં આવે છે, અને અનુસ્વારની પછી આવે તો ति થઈ જાય છે. હ્રસ્વ સ્વર અગર ए, औ પછી[1] खलु આવે તેનો खो થાય છે, તથા દીર્ઘ સ્વરની પછી (તથા અનુસ્વાર પછી પણ) खु થાય છે. તેજ પ્રમાણે एव ને બદલે ज्जेव्व અથવા जेव्व, અને एव्व તેમજ एअ થાય છે. इव ને બદલે विअ તથા व्व થાય છે; अपि જો સ્વર પછી આવે તો તેનું वि અથવા बि થાય છે, અને અનુસ્વાર પછી આવે તો पि થાય છે, તથા વાક્યના આરંભમાં अवि થાય છે.

આ સ્થળે માગધી ભાષાનું નામ જણાવવાની જરૂર ગણું છું. તેમાં स અગર ष् ને બદલે श

---

૧. કાવ્યમાં સ્વરની પહેલાં આવેલું અનુસ્વાર પોતાની સાથેના અંત્યસ્વરને દીર્ઘ બનાવે છે. પણ જો અનુસ્વારને म् તરીકે લખવામાં આવે તો તે સ્વર હ્રસ્વ જ રહે છે, અને ત્યાર બાદ એ બેઉ શબ્દોની સંધિ થાય છે; જુઓ વેબર, सप्तश० પા૦ ૪૭.

થાય છે, તથા र् ને બદલે ल् થાય છે; ज ને બદલે य् તેમજ ર્ય-ર્જ ને બદલે य्य થાય છે; अ કારાંત નામના પ્રથમા એક વચનમાં છેવટે ए અગર इ આવે છે, જેમ કે माशे (माषः).

ઉપરના નિબંધમાં ધરવાપ્રમાણે, સાધારણ વિદ્યાર્થીઓને કાળિદાસ અગર ભાવભૂતિનાં નાટકોમાંનું પ્રાકૃત સમજવા માટે જોઈએ તેટલું જ્ઞાન આપવામાં આવ્યું છે. અલબત, મૃચ્છકટિક અગર વિક્રમોર્વશીયનું પ્રાકૃત સમજવાને કેટલાક વિશેષ જ્ઞાનની જરૂર છે.

---

૧. જેને પ્રાકૃતનો અભ્યાસ વધારવો હોય તેમણે નીચેના ગ્રંથોનું અવલોકન કરવું:—

1 Lassen's Institutiones Linguae Pracritical, 1837. 2. Weber's सप्तशतक of हाल with his excellent introduction, 1870. 3. वररुचि નો प्राकृतप्रकाश, १८५४. 4. प्राकृत बालभाषा-(मागधी)-व्याकरण of Hemchandra, Bombay, 1873; આ ગ્રંથની વિવેચનાત્મક આવૃત્તિ ડૉ૦ પીશ્ચલે તૈયાર કરે છે. તે ગ્રંથ ખાસ કરીને જૈન પ્રાકૃત માટે ઉપયોગી છે.



परिशिष्टः—જર્મન ઓરિએન્ટલ સોસાયટીના 'અભન્ડ્લુંગેન' ના પાંચમા પુસ્તકમાં પ્રો. વેબરે પ્રકટ કરેલા હાલકવિના સપ્ત શતકમાંથી આર્યાવૃત્તની દશ ગાથાઓ નીચે આપી છે.

१. पाअपडिअस्स पइणो पुट्ठिं पुत्ते समारुहंतम्मि ।
 दढमण्णुदूमिआए वि हासो घरिणीए निक्कन्तो ॥ (११.)

२. अज्ज मए तेण विणा अणुहूअसुहाइ संभरन्तीए ।
 अहिणवमेहाण रवो णिसामिओ वज्झपडहो व्व ॥ (२९)

३. तुज्झ वसइ त्ति हिअअं इमेहि दिट्ठो तुमं ति अच्छीइं ।
 तुह विरहे किसिआइ ति तीए अंगाइ वि पिआइं ॥ (४०)

४. कल्लं किर खरहिअओ पवसइ पिओ त्ति सुणीअइ जणम्मि ।
 तह वड्ढ भअवइ णिसे जह से कल्लं विअ ण होइ ॥ (४५.)

५. अदंसणेण पेम्मं अवेइ अइदंसणेण वि अवेइ ।
 पिसुणजणजम्पिएण वि अवेइ, एमेअ वि अवेइ ॥ (८०.)

६. दक्खिण्णेण वि एन्तो सुहअ सुहावेसि अम्ह हिअआइं ।
 णिक्कइअवेण जाणं गओ सि, का णिव्वुदी ताण ॥ (८४.)

७. तइआ कअग्घ महुअर ण रमासि अण्णासु पुप्फजाईसु ।
 बद्धफलभारगरुइं मालइमेण्हि परिच्चअसि ॥ (९१)

८. उप्पण्णत्थे कज्जे अइचिन्तन्तो गुणागुणे तम्मि ।
 अइसुइरसपहपेच्छि-त्तणेण पुरिसो हरइ कज्जं ॥ (२१८).

९. कलहंतरे वि अविणि-ग्गआइ हिअअम्मि जरमुवगआइं ।
 सुअणकआइ रहस्सा-इ डहइ आउक्खए अग्गी ॥ (३२८).

१०. वोलीणालक्खिअरू-अजोव्वणा पुत्ति किण्ण दूमेसि ।
 दिट्ठप्पणट्ठपोरा-णजणवआ जम्मभूमि व्व ॥ (३४२.)



॥ ॐ अर्हम् ॥

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते श्रीमहावीराय ॥

॥ उपकेशगच्छीया पट्टावलिः ॥



॥ श्रीमत्पार्श्वजिनेंद्राय नमः ॥ श्रीमत्केशीकुमारगणधरेभ्यो नमः ॥ श्रीमद्रत्नप्रभसूरि-सद्गुरुभ्यो नमः ॥ ओकेशशब्दस्यार्थाः लिख्यंते ॥ इशिक् ऐश्वर्ये, ओकेषु गृहेषु इष्टे पूज्यमाना सती या सा ओकेशा सत्यिका नाम्नी गोत्रदेवता । अत्र ओक शब्दो अकारांतः तस्यां भवस्तस्या अयमिति वा ओकेशः। भवे इत्यण् प्रत्ययः, तस्येदमित्यनेन वा अणप्रत्ययः । सत्यिका देवी हि नवरात्रादिषु पर्वसु अस्मिन् गणे पूज्यते सा चास्य गणस्य अधिष्ठात्री अतएवास्य गच्छस्य ओकेश इति यथार्थं नाम प्रोच्यते सद्भिरिति प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

ईशनमीशः ऐश्वर्यं ओकैर्महर्द्धिकश्राद्धप्रमुखलोकानां गृहैरीशो यस्यां सा ओकेशा ओसिका नयरी । तत्र भव ओकेशः । ओसिकानगर्यां हि अस्य गणस्य ओकेश इति नाम श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरतो विख्यातं जातमिति द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥

अः कृष्णः उः शंकरः को ब्रह्मा । एषां द्वंद्वसमासे ओकास्ते ईशते पूज्यमानाः संतो देवत्वेन मन्यमानाः संतश्च येभ्यस्ते ओकेशाः। ओके कृष्णशंभुब्रह्मभिर्देवैरीशते ये ते वा ओकेशाः । परशासन-जनाः क्षत्रियराज्यपुत्रादयः प्रतिबोधविधानात्तेषामयं ओकेशः । तस्येदमित्यणूप्रत्ययः । श्रीरत्नप्रभसूरि-भिस्तेषां पारतीर्थिकधर्मनिष्ठातः सिद्धान्तोक्तविशुद्धजैनधर्म्मनिष्ठायां प्रतिबोधदानेन प्रवर्तना कृता । तथा च श्रूयते पूर्वं हि श्रीरत्नप्रभसूरीणां गुरवः श्रीपार्श्वापत्यीयकेशीकुमारानगारसंतानयित्वेन विख्यातिमंतो जगति जज्ञिरे । ततः प्राप्तसूरिमंत्राः समस्तंत्रा रमणीयाऽतिशयनिचयाः स्वकीयनिस्तुषपरोमुखीप्राग्भार-संभारात् ज्ञातदिग्देशसूरयः श्रीमच्छ्रीरत्नप्रभसूरयः कियति गते काले विहरंतः संतः श्रीओसिका नगर्यां समवसृताः । तस्यां च सर्वे लोकाः पारतीर्थिकधर्म्मधारिणो संति । न कोपि जैनधर्म्मधारी। ततः सा-ध्वाचारं प्रतिपालयद्भिः सिद्धान्तोक्ततीर्थंकरधर्म्मशुभकर्मप्ररूपणां कुर्वद्भिः सद्भिः श्रीरत्नप्रभसूरिभिः पार-तीर्थकानेकच्छेकविवेकिलोकाः प्रतिबोधितास्ततः एते ओकेशा इति विरूदो विख्यातो जातः । इति तृतीयो अर्थः ॥ ३ ॥

अः कृष्णः, आः ब्रह्मा- उः शंकरः, एषां द्वंद्वे आवस्ततः ओभिः कृष्णब्रह्मशंकरैर्देवैः कायते स्तूयते देवाधिदेवत्वादिति ओकः प्रस्तावात् श्रीवर्धमानस्वामी कचिदिति ड प्रत्ययः, ओकश्चासौ ईशश्च ओकेशस्तस्यायं ओकेशः वर्तमानतीर्थाधिपतिश्रीवर्धमानजिनपतितीर्थाश्रयणादिति चतुर्थोऽर्थः ॥ ४ ॥

अः अर्हन्,अः स्यादर्हति सिद्धे चेत्युक्तेः । प्रस्तावादिह अ इति शब्देन श्रीवर्धमानस्वामी प्रोच्यते । ततः अस्य ओको गृहं चैत्यमिति यावत्, ओकः श्रीवर्धमानस्वामिचैत्यमित्यर्थः । तस्मादीशः ऐश्वर्यं यस्य स ओकेशः यतोयं गणः श्रीमहावीरतीर्थंकरसान्निध्यतः स्फातिमवापेति पंचमोऽर्थः ॥ ५ ॥ एवमस्य पदस्यानेकेप्यर्थाः संबोभुवति परं किं बहुश्रमेणेति ॥

अथ उपकेशशब्दस्य कियंतोऽर्था लिख्यंतेः । उप समीपे केशाः शिरोरुहाः सत्यस्येति उपकेशः । श्रीपार्श्वापत्यीयकेशिकुमारानगारः । एतदुत्पत्तिवृत्तांतस्तुः श्रीस्थानांगवृत्त्यादौ सप्रपंचः प्रतीत एवास्ति । तत एवावगंतव्यः । ततः उपकेशः श्रीकेशिकुमारानगारः पूर्वजो गुरुर्विद्यते यस्मिन् गणे स उपकेशः । अभ्रादित्वाद् प्रत्ययः । अस्मिन्गच्छे हि श्री केशिकुमारानगारः प्राचीनो गुरुरासीत् । ततो यथार्थमुपकेश इति नाम जातमिति प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

उपवर्जितास्त्यक्ताः केशा यत्र सः उपकेशः ओसिकानगरी तस्यां हि सात्यिका देव्याश्चैत्यमस्ति । तदग्रे च धनैर्जनैः प्रथमजातबालकानां सुदिने दिने मुंडनं कार्यते तत उपकेश इति यथार्थं नाम ओसिकानगर्याः प्रख्यातं जातं । तत्र भवो यो गच्छः स उपकेशः प्रोच्यते सद्भिर्विद्वद्भिः । तत्र हि भवे इत्यनेन सूत्रेण अणि प्रत्यये संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वाद्वृद्धेरभावः । श्रीरत्नप्रभसूरितो अनेकश्रावक प्रतिबोधविधानानंतरं लोके गच्छस्य उपकेशेति नाम प्रसिद्धं जातमिति द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥

को ब्रह्मा, अः कृष्णः, अः शंकरः, ततो द्वंद्वे काः । तेरीष्टे ऐश्वर्यमनुभवति यः सः केशकानां ईशः ऐश्वर्यं यस्माद्वा केशः पारतीर्थिकधर्म्मः सः उपवर्जितस्त्यक्तो यस्मात्स उपकेशस्तीर्थकृदुक्तविशुद्धधर्म्मः स विद्यते यस्मिन् गच्छे स उपकेशः । अत्रापि अभ्रादित्वादप्रत्ययः । इति तृतीयोऽर्थः ॥ ३ ॥

कं च सुखं ई च लक्ष्मीः कयौ ते ईशे स्वायत्ते यत्र यस्माद्वा स केशः—अर्थात् जैनो धर्मः । स उपसमीपे अधिको वाऽस्माद्गच्छात्स उपकेशः इति चतुर्थोऽर्थः ॥ ४ ॥

कश्च अश्च ईशश्च केशाः—ब्रह्मविष्णुमहेशाः । तद्धर्म्मनिराकरणात्ते उपहता येन सः उपकेशः । प्रकरणादत्र श्रीरत्नप्रभसूरिः गुरुः तस्यायं उपकेशः । अत्रापि तस्येदमित्याणि प्रत्यये पूर्ववद्वृद्धेः अभावो न दोषपोषायेति पंचमोऽर्थः ॥ ५ ॥

इत्थमन्येऽप्यनेके अर्था ग्रन्थानुसारेण विधीयंते. परमलं बहुश्रमेणेति । एवमुक्तव्यक्तयुक्तिव्यक्तिशक्त्या ओकेशोपलक्षणे उभे अपि नाम्नी यथार्थे ज्ञेये प्राज्ञैः ॥ इति ओकेशोपकेशपदद्वयदशार्थी समाप्ता ॥

संवत् १६५२ वर्षे ॥ श्रीमद्विक्रमनगरे . सकलवादिवृंदकंदकुद्दालश्रीककुदाचार्यसंतानीयश्रीमच्छ्रीसिद्धसूरीणां आग्रहतः श्रीमद्बृहत्खरतरगच्छीयवाचनाचार्यश्रीज्ञानविमलगणिशिष्यपंडितश्रीवल्लभगणिविरचिता चेयम् । श्रीरस्तु ॥

ग्रीष्महेमंतिकान् मासान् अष्टौ भिक्षुः प्रचक्रमे ।
रक्षार्थं सर्वजंतूनां वर्षास्वेकत्र संवसेत् ॥ १ ॥

मनुष्याणां सर्व्वेषु पदार्थेषु सारो धर्म्म एव । मनुष्यत्वं धर्म्मेणैव वर्ण्यते ॥ स धर्म्मो वर्षासु मुनिपार्श्वात् श्रोतव्यः । यतयो वर्षास्वेकत्र तिष्ठन्ति. किमर्थं सर्व जंतूनां रक्षार्थं । धर्म्मस्य सारं सर्व्व

जीवेषु दया । वर्षासु पृथ्वी जीवाकुला भवति संयमो विराध्यते । अतो जीवरक्षार्थं चतुर्मासकल्पं तिष्ठंति । शिवशासने पि जीवदयास्वरूपमेवं व्यावर्णितं –

पश्यन् परिहरन् जंतून मार्जन्या मृदुसूक्ष्मया । एकाहविचरेद्यस्तु चंद्रायणफलं भवेत् ॥ १ ॥

महाभारते कृष्णद्वीपायनेनाप्युक्तं—

यो दद्यात्कांचनं मेरुः कृत्स्नां चापि वसुंधरां । एकस्य जीवितं दद्यात् न च तुल्य युधिष्ठिरः ॥ २ ॥

परेप्येवं वदंति जैनवाक्यस्य किं वाच्यं । मुनयः क्षेत्रस्य त्रयोदश गुणान् वीक्ष्य तिष्ठंति

चिक्खिल्ल १ पाण २ थंडिल ३ वसहि ४ गोरस ५ जणा ६ उले ७ विज्जे ८ ।

ओसह ९ धन्ना १० हिवइ १० पासंडा ११ भिक्खु १२ सिज्झाय ॥ १३ ॥

एते त्रयोदश गुणाः । तत्र स्थिता दशधा समाचारी पालयंति–

इच्छा १ मिच्छा २ तहकारो ३ आवस्सिया ४ निसीहिया ५ आपुच्छणा य ६

पडिपुच्छ ७ छंदणा य ८ निमंतणा य ९ उपसंपयाकाले ॥ १० ॥ समाचारी भवे दसहा ॥ ११ ॥

पुनः धर्म्मशास्त्रण्युपदिशंति । श्राद्धा वासनावासितचित्ताः श्रृण्वंति । परं चातुर्म्मासकात्पंचाशद्दिने व्यतिक्रांते कल्पावसरं ।

वीसहि दिणेही कप्पो पंचगहाणीय कप्पठवणायं ।
नव (९) सय तेणु (९३) एहिं वुच्छिन्ना संघआणाए ॥ १ ॥

अधुना कल्पावसरे अन्यग्रन्थादरो न यथा दिव्यकौस्तुभाभरणं प्राप्य अन्यरत्नाभरणेषु निरादरत्वं जायते यथा च कुंडपातालामृतं प्राप्यांबुजलास्वादो न रोचते । भारतीभूषणकविजनवचनरचनामासाद्य सामान्यजनवचांसि न रोचते । चक्रवर्तिन अग्रे सामान्यराजानोऽपसरंते देवानां नंदीश्रवणेनान्यशब्दा हीनतां व्रजंति । गन्धहस्तिनो गंधे अन्यगजेंद्रा मदजलविकला भवंति । केवलज्ञानागमने अन्य ज्ञाना अपसरंति । कल्पवृक्षाग्रेऽन्ये तरवाः न राजते । सूर्योदये खद्योतस्य का प्रभाः । मुक्तिसौख्याग्रे कानि सौख्यानि । सिंहध्वनेः पुरो यथा अन्य शब्दा न राजते तथा कल्पावसरे अन्यानि शास्त्राणि आदरो न । स कल्पो अनेकविधः-श्रीशत्रुंजयकल्पः गिरनारगिर कल्पः कदंब गिरिकल्पः अर्बुदाचलकल्पः अष्टापदकल्पः समेतगिरिकल्पः हस्तिनापुरकल्पः मथुरानगरीकल्पः सत्यपुरकल्पः शंखेसरकल्पः स्तंभनतीर्थ कल्पः यतीनां विहारकल्पः वस्त्रस्य कल्पसंज्ञा अनेन प्रकारेण अनेके कल्पसंज्ञाः । एके कल्पाः एवं विधा वर्त्तते । यस्य प्रमाणेन श्री पादलिप्ताचार्यो यावदायाति साधवो विहृत्य तावत् पंच तीर्थं नमस्कारं विधायागच्छंति । एके कल्पास्ते उच्यते येषां प्रमाणेन अदृशीकरणं आकाशगमनं स्वर्णसिद्धिः लक्ष्मी प्राप्ति मित्र पुत्र बांधवस्वजन प्राप्ति प्रभृति लब्धयः संपद्यते । परमयं कल्पोऽमेय महिमा निधिः इह लोकाभीष्ट सौख्यकारणं । अयं कल्पो दशाश्रुतस्कंधस्याष्टममध्ययनं । नवमपूर्वात् श्री भद्रबाहु स्वामिनोद्धृतः अमेयमहिमानिधानः सर्व पापक्षयं करः यथा श्रूयमानः द्रुमेषु कल्पद्रुः सर्वकामफलप्रदः यथौषधीषु पीयूषं सर्वरोग हरं परं रत्नेषु गुरुडोद्गारं यथा । सर्वविषापहारः मंत्राधिराजो मंत्रेषु यथा सर्वार्थ साधकः । यथा पर्वसु दीपाली सर्वात्मा सुखावहा तथा कल्पः सद्धर्मे शास्त्रेषु सर्व पापहरस्तथा सर्व सिद्धान्त मध्ये

श्रीकल्पो गुरुतरः यथा पर्वतानां मध्ये मेरुः तीर्थ माहि शत्रुंजयः दानमध्ये अभयदान अक्षरमध्ये ॐकार देवेष्विन्द्रः ज्योतिषीषु चंद्र गजेन्द्रेष्वैरावण समुद्रेषु स्वयंभुरमणः तुरंगमेषु रेवत ऋतुषु वसंत मृत्तिकयां तूरी सुगंधीषु कस्तुरी धातुषु पीतं मोहनेषु गीतं काष्टेषु चंदनं इंद्रियेषु नेत्रं व्यवहार पर्वसु दीपालिका धर्म्मशास्त्रेषु कल्पः सर्व पापहरः सर्व दुःखक्षयंकरः । यथा जनमेजय राजा अष्टादश पर्व श्रवणात् १८ विप्र हत्यात्यागः यवनिका श्यामत्वं जातं । यथा एकस्मिन् दिवसे जनमेजय राजाग्रे पुरोहितेन कथितं पूर्वं त्रेतायुगे पांडवैश्च कौरवैः कृता अष्टादशाक्षोहिणिमृताः महाभारतो जातः । राजा प्रोक्तं को नाभवत् यत्तेषां निवारयति पुरोहितेन कथितं त्वां न निवारयामि । यतः अद्य दिवसात् षष्टे मासे त्वं आखेटके न गंतव्यं यदा गमिष्यति तदा सूकरमृगं तेषां केटके अश्वो न क्षेपणीयं यदा अश्वो क्षेपयति तदा सगर्भा मृगी तस्यां बाणं न मोचनीयं यदा मुंचति तदा तस्या उदरं मध्ये पुत्रिका भविष्यति सा न गृहीतव्या यदा ग्राहयति तदा तस्या पाणिग्रहणं न करणीयं यदा पाणिग्रहणं करोति तदा तस्या पट्टराज्ञीपदं न दातव्यं तस्या कथितं न मान्यं । इत्यादि भाविष्यति वचनानि मया तव कथिताः स्युः परं त्वं न तिष्ठसि । अथ षट् मासाः द्वित्रिदिवसोना गता तदा मालाकारेणागत्य राज्ञः कथितं भो राजन् तव वनो सूकरैः भग्नः । राज्ञा अश्वं सज्जीकृत्य तेषां पृष्ठे गतः । ते पूर्वोक्तानि वचनानि सर्वे कृता गद्भवालस्य पुत्रिका दत्ता एषा त्वं पालय तेन पालिता परं स्वरूपा । अन्यदा राज्ञा दृष्टा सा परिणीता पूर्ववचनानि सर्वे विस्मृताः राज्ञा पट्टराज्ञी कृता । अन्यदा राज्ञा यज्ञो मंडितः अष्टादशपुराणवेत्तारः अष्टादश ब्राह्मणा आकारिताः यज्ञं यजमानं कश्चिद्दूतेन देशान्तरादागतेन नृपोः आहूतः राज्ञा विप्राणां कथितं अहं उत्तिष्ठामि ते कथितं नहि यज्ञस्य विघातो भवति परं तव शरीरसमाना पट्टराज्ञी अस्ति राजा उत्थित ततः कटके किंचिच्छातस्य रहस्यो आगतः त ब्राह्मणाः हसिताः राज्ञी ज्ञातं एते मम हसिता क्रुद्धा राज्ञः कथितं एते विनष्टा मां हसति ततः यदि एते मारयिष्यति तदा तव मम संबंधः । राज्ञा ते मारिता अष्टादशधा कुष्टा जातं । ततः पूर्वपुरोहितेन कथितं वरं त्वया न कृतं राज्ञा कथितं अधुना कथय किं करोमि तेन कथितं अष्टादश पुराणानि निसंदेहानि शृणु । ते चामि- आदि पर्व१ सभा पर्व २ विराट पर्व ३ आरण्यक पर्व४ उद्यान पर्व५ भीष्म पर्व६ द्रोण पर्व७ कर्ण पर्व८ शल्य पर्व९ सौतिक पर्व१० गर्भपाल पर्व ११ शान्ति पर्व१२ शासन पर्व१३ आसुमाम्य पर्व१४ मेपक पर्व१५ मृशल पर्व१६ यज्ञ पर्व१७ स्वर्गारोहण पर्व१८ ॥ एभिरष्टादशविप्रहत्याक्षयकृतायवनिकाश्यामत्वं जाताः । तथा अयमपि अधुना ये मुनयः उपवासत्रयेण वाचयंति चतुर्विधसंघो अष्टमेन शृणोति तदा तस्मिन्नेव भवे मोक्षः । यदि द्रव्यक्षेत्रकालसद्भावा भवंति । न चेत्तदा तृतीयभवे पंचमे भवे सप्तमे भवे अवश्यं मोक्षः । पूर्वं मुनयः पाक्षिकसूत्रवत्ऊर्द्ध्वस्थाः कथयंति चतुर्विध संघ ऊर्द्ध्वसन्नेव श्रणोति परं श्रीवीरनिर्वाणात९९३ वर्षे गते आनंदपुरे ध्रुवसेनराज्ञः सभायां पुत्रशोकापनोदाय देवार्द्धिमुनिना सभासमक्षं वाचितः श्रावकाः तांबूलदानादिप्रभावना कृता । तद्दिनादारभ्य सा रीतिः । परं त्वस्य कालस्य वाचनैवोच्यते न तु व्याख्या । पूर्वे ये पादलिप्ताचार्य–सिद्धसेनदिवाकरप्रभृतयो अभूवन् तैरपि वाचनैवोक्ता अन्येषां का वार्ता । यतः सिद्धान्ते इत्युक्तमस्ति सव्वनईणं जइहु वालुआ इत्यादि । एवंविधस्य कल्पस्य यदहं वाचनामनोरथं करोमि स बाहुभ्यां समुद्रतरणमभिलषामि । यथा कुब्ज उच्चफलं लातुमिच्छति तथाऽहं यदिच्छामि वाचनां; कर्तुं तत् संघस्य सांनिध्यं पुनः गुरूणां प्रासादः । यद्वर्षाकाले मयुरो नृत्यं करोति तज्जलधरगार्जितप्रमाणं । दृष्टद्रूपश्चंद्र-

कांतमणिर्यदमृतं स्रूते तच्चंद्रस्य प्रमाणं। सूर्यसारथी रविः आरूणः पंगोपि यदाकाशमुल्लंघयाति तत्सूर्यस्य प्रमाणं। पुत्तालिका नृत्यं करोति तद्विदजालिकस्य प्रमाणं। तथाऽहं मंदबुद्धिः मूर्खशिरोमणिः प्रमाणे सप्रमाणता नास्ति, लक्षणे सल्लक्षणता न, अलंकारस्याऽलंकरणं नहि, साहित्ये साहित्यं नास्ति, छंदसि सुछंदता न; एवंविधो पि वाचनाय साहसं करोमि तत् सद्गुरूणां प्रसादः। पुरातनैर्व्याख्या कृता। ममापि युक्तिः। कथं

जं देवो सायरो लहरिगज्जंतनीरपडिपुन्नो। ता किं गामतलाओ जलभरिओ लहरिगा देऊ॥ १॥
जइ मरह भावछंदे नच्चइ नवरंग चंगमा तरूणी। ता किं गामगहिल्ली तालिछंदेन नच्चेइ॥ २॥
जइ दुद्धधवलखीरी तडफडइ विविहभंगेहि। ता कुक्कसकणसहिया रव्वाडिया मा तडव्वडह॥ ३॥
अहं यद्वेद्मि तद्गुरूणां प्रसादः।
टोलो रोलो रुलंतो अहियं विन्नाण नाण परिहीणो। दिव्वुव वंदणिज्जो विहिओ गुरुसुत्तहारेण॥४॥
ते गुरवः श्रीपार्श्वनाथसंतानीयाः।

१ श्रीपार्श्वनाथशिष्यः प्रथमो गणधरः श्रीशुभदत्तः। २ तत्पट्टे श्रीहरिदत्तः। ३ तत्पट्टे श्रीआर्यसमुद्रः। ४ तत्पट्टे श्रीकेशीगणधरः तेन परदेशीनृपः प्रतिबोधितः। राजप्रश्नीयउपांगे प्रसिद्धः।

५ तत्पट्टेश्रीस्वयंप्रभसूरिः। (स्वयंप्रभसूरिशिष्य बुद्धकीर्तिसुं बौधमत नकिल्यो, आचारांग टीकासु जाणनो) अन्यदा स्वयंप्रभसूरि देशनां ददतां उपरि रत्नचूडविद्याधरो नंदीस्वरे गच्छन् तत्र विमानः स्तंभितः। तेन चिंतितः मदीयो विमानः केन स्तंभितः। यावत् पश्यति तावदधो गुरुं देशनाददंतं पश्यति। स चिंतयते मयाऽविनयः कृतः यतः जंगमतीर्थस्य उल्लंघनं कृतं। स आगतः गुरुं वंदति धर्म श्रुत्वा प्रतिबुद्धः। स गुरुं विज्ञपयति मम परंपरागता श्रीपार्श्वजिनस्य प्रतिमास्ति तस्या वंदने मम नियमोऽस्ति सा रावणलंकेश्वरस्य चैत्यालये अभवत्। यावत् रामेण लंका विध्वंसिता तावद् मदीयपूर्वजेन चंद्रचूडनरनाथेन वैताढ्य आनीता। सा प्रतिमा मम पार्श्वेस्ति। तया सह अहं चारित्रं ग्रहीष्यामि। गुरुणा लाभं ज्ञात्वा तस्मै दीक्षा दत्ता। क्रमेण द्वादशांगी चतुर्दश पूर्वी बभूव गुरुणा स्वपदे स्थापितः। श्रीमद्वीरजिनेश्वरात् द्विपंचाशतवर्षे (५२) आचार्य पदे स्थापितः। पंचाशतसाधुभिसह धरां विचरति। श्रीलक्ष्मीमहास्थानं तस्याभिधानं १ पूर्वं नाम गुजरातिमध्ये कृतयुगे रयणमाला २ त्रेतायुगे रयणमाला ३ द्वापरे श्रीवीरनयरी ४ कलियुगे भीनमाल ५ तत्र श्रीराजाभीमसेन तत्पुत्रश्रीपुंज तत्पुत्र उत्पलकुमार अपरनाम श्रीकुमार तस्य बांधव श्रीसुरसुंदर युवराज राज्यभारधुरंधर। तयोरमात्य चांद्रवंशीय द्वौ भ्राता तत्र निवासी सा० ऊहड १ उद्धरण २ लघु भ्राता गृहे सुवर्ण संख्या आष्टादश कोट्यः संति। वृध्दभ्रातुर्गृहे ९९ नवनवति लक्षा संति। ये कोटीश्वरास्ते दुर्गमध्ये वसंति ये लक्षेश्वरास्ते बाह्ये वसंति। तत ऊहडेन एकलक्ष भ्रातुः पार्श्वे उच्छीर्णे याचितं। ततो बांधवेन एवं कथितं भवते विना नगरं उध्वसमस्ति, भवतां समागमे वासो भविष्यति। एवं ज्ञात्वा राजकुमार ऊहडेन आलोचितवान् नूतनं नगरं वसेयं ततो मम वचनं अग्रे आयातः। ढीलीपुरे राजा श्री साधु तस्य ऊहडेन ९९ तुरंगमा भेटिकृता उवएसा संतुष्टो ददौ। ततो भीनमालात् अष्टादश १८ सहस्र कुटुंब अगात्। द्वादश योजना नगरी जाताः। तत्र श्रीमद्रत्नप्रभसूरीपंचसयासीष्य समेत लुणद्रही समायाति। मासकल्प अरण्ये स्थिता। गोचर्यां मुनीश्वरा व्रजंति परं भिक्षा न लभते। लोका मिथ्यात्व वासिताः यादृशा गता तादृशा आगता मुनीश्वराः। पात्राणि प्रतिलेप्य मासं यावत् संतोषेण स्थिताः पश्चात् विहारः कृतः। पुनः कदाचित् तत्रायातः। शासनदेव्या कथितं भो आचार्य अत्र चतुर्मासकं कुरु।

तव महालाभो भविष्यति । गुरुः पंच त्रिंशत् मुनिभिः सह स्थितः । मासी द्विमासी तृमासी चतुर्मासी उ-प्पोसित कारिका । अथ मंत्रीश्वर ऊहड सुतं भुजंगेन दृष्टः । अनेक मंत्रवादिनः आहूताः परं न कोपि समर्थस्तैः कथितं अयं मृतः दाघो दीयतां । तस्य स्त्री काष्टभक्षणे स्मशाने आयाता । श्रेष्टस्य महान् दुःखो जातः । वादित्रान् आकर्ण्य लघुशिष्यः तत्रागतः । झंपाणो दृष्ट्वा एवं कथापयति भो ! जीवितं कथं ज्वालयत तैः श्रेष्टिने कथितं एषः मुनीश्वरः एवं कथयति । श्रेष्टिना झंपाणो वालितः क्षुल्लकः प्रनष्टः गुरुः पृष्ठे स्थितः । मृतकामानीय गुरु अग्रे मुंचति श्रेष्टि गुरु चरणे शिरं निवेश्य एवं कथयति भो दयालु मम देवो रुष्टः मम ग्रहो शून्यो भवति । तेन कारणेन मम पुत्रभिक्षां देहि । गुरुणा प्रासु जलमानीय चरणौ प्रक्षा-ल्य तस्य छंटितं । सहसात्कारेण सज्जो वभूव हर्षे वादित्राणि बभूव । लोकैः कथितं श्रेष्टि सुतः नूतन जन्मो आगतः । श्रेष्टिना गुरूणां अग्रे अनेकमणि मुक्ताफल सुवर्ण वस्त्रादि आनीय भगवान् गृह्यतां । गुरुणा कथितं मम न कार्यं परं भवद्भिः जिन धर्म्मो गृह्यतां । सपाद लक्ष श्रावकानां प्रति बोधि कारक । पूर्वं श्रेष्ठिना नाराचण प्रासादं कारयितुमारब्धं । स दिवसे करोति रात्रौ पतति सर्वे दर्शनिनः पृष्टा न कोपि उपायो कथितं तेन रत्नप्रभाचार्यो प्रष्टः—भगवान् मम प्रासादो रात्रौ पतति । गुरुणा प्रोक्तं कस्य नामेन कारयतः । नारायण नामेन । एवं नहि महावीर नामेन कुरु मंगलं भविष्यति । प्रासाद-स्य विघ्नं न भविष्यति श्रेष्टिना तथैव प्रतिपन्नं । अथ शासनदेव्या गुरूणां कथितं हे भगवन् अस्य प्रासाद योग्यं मया देव गृहात् उत्तरस्यां दिशी लूणद्रहाभिधानं डुंगरिकायां श्री महावीर बिंबं कारयितुमारब्धं । तत्र तेन श्रेष्टिना गोपाल वचनात् गोदुग्ध स्त्रावकारणं ज्ञात्वा सर्वेपि दर्शनिनः पृष्टाः तैः पृथक् पृथक् भाषया अन्यदन्यदुक्तं । ततः श्रेष्टिना स आचार्योऽभिवंद्य पृष्टः ततः शासन देव्या वाक्यात् आचार्यो ज्ञात्वा एवं कथयति तत्र त्वत्प्रासाद योग्य बिंबो भविष्यति परं षट् मासैः सार्द्ध सप्त दिनैः निष्कासनीयं । श्रेष्टि उच्छुक संजातः । किंचिदूनैर्दिनैः निष्कासितः निंबु फल प्रमाण हृदयस्य ग्रन्थी द्वय सहितं । आचार्यैः प्रोक्तं अद्यापि किंचित् असंपूर्णं बिंबं विलंबस्व श्रेष्टिना प्रोक्तं गुरूणां कर प्रासादात् संपूर्णं भविष्यति । तेनावसरे कोरंटकस्य श्राद्धानां आव्हानं आगतं । भगवन् प्रतिष्ठार्थमा-गच्छ । गुरुणा कथितं मुहूर्त वेलायां आगच्छामि ।

सप्तत्या ७० वत्सराणां चरम—जिनपतेर्मुक्तजातस्य वर्षे
पंचम्यां शुक्लपक्षे सुरगुरुदिवसे ब्रह्मणः सन्मुहूर्त्ते ।
रत्नाचार्यैः सकलगुणयुतैः सर्वसंघानुज्ञातैः
श्रीमद्वीरस्य बिंबे भवशतमथने निर्मितेयं प्रतिष्ठा ः॥ १ ॥
उपकेशे च कोरंटे तुल्यं श्री वीरबिंबयोः
प्रतिष्ठा निर्मिता शक्त्या श्रीरत्नप्रभसूरिभिः ॥ २ ॥

निजरूपेण उपकेसे प्रतिष्टा कृता वैक्रिय रूपेण कोरंटके प्रतिष्टा कृता श्राद्धै द्रव्यव्ययः कृतः । ततस्तेन श्रेष्ठिना श्रीऔपकेश पुरस्य श्रीमहावीर बिंब पूजा आरात्रिका स्नात्रकरण देव वंदनादिविधिः श्रीरत्नप्र-भाचार्यात् शिक्षिता । तदनंतरं मिथ्यात्वाभावात् श्रावकत्वं केषांचित् श्रेष्टिसंबंधिनां संजातं । ततः आचा-र्येण ते सम्यक्त्वधारी कृता । एकदा प्रोक्तं भो यूयं श्राद्धा तेषां देवीनां निर्दयचित्ताया महिष बोल्कटादि

जीववधास्ति भंगशब्द श्रवण कुतुहलप्रियया अविरतायाः रक्तांकितभूमितले आर्द्रचर्म्मबद्धवंदनमाले निष्ठुरजनसेवितं धर्मध्यानविघापके महावीभत्सरौद्रे श्री साच्चिकादेवि गृहे गंतु न वुध्यते। इति आचार्यवचः श्रुत्वा ते प्रोचुः प्रभो युक्तमेतत् परं रौद्रा देवी यदि छलिस्याम तदा सा कुटुंवान् मारयति। पुनराचार्यैः प्रोक्तं अहं रक्षां कारिस्यामि। इत्याचार्यवाक्यं श्रुत्वा ते देवी गृहे गमनात् स्थिताः। आचार्याणां प्रत्यक्षीभूय देव्या सकोपमित्युक्तं आचार्य मम सेवकान् मम देवगृहे आगच्छमानान् निवारणाय त्वं न भविष्यति। इत्युक्त्वा गता देवी परं सातिशय कालभावात् महाप्रभावात् अनेकसुरकृतप्रातिहार्ये आचार्ये देवी न प्रभवति। एकदा छलं लब्ध्वा देव्या आचार्यस्य कालवेलायां किंचित् स्वाध्यायादि रहितस्य वामनेत्र-भ्रूराधिष्ठिता। वेदाना जाता। आचार्यैः यावत् सावधानीभूय पीडायाः कारणं चिंतितं तावत् देवी प्रत्यक्षीभूय इत्ति प्रोक्तं मया पडिा कृता। अहं स्वशक्त्या त्वां स्फेटयिष्यामि इति सावष्टंभं आचार्योक्तं श्रुत्वा समयाकूतं सा विनयं प्रोक्तं भवादृशानां ऋषीणां विग्रहं विवादो न युक्तः। यदि त्वं कडडमडडं ददासि तदाहं वेदनां अपहरामि। आचंद्रार्कं त्वत्किंकरी भवामि इति श्रुत्वा आचार्यैः प्रोक्तं कडडमडडं दापयिष्यामि। इत्युक्ता गता देवी। प्रभाते श्रावकानामाकार्य तैः पक्वान्न खज्जकादि सुंडकद्वयं कर्प्पूरकुंकुमादिभोगश्च आनीय श्रीसच्चिकादेवी देवगृहे श्रीरत्नप्रभाचार्यः श्रावकैः सार्धं गतः। ततः श्रावकैः पार्श्वात् पूजां कराप्य वामदक्षिणहस्ताभ्यां पक्वान्नसुंडकादि चूर्णयद्भिः आचार्यैः प्रोक्तं देवी कडडमडडं दत्तमस्ति। अतः परं ममोपासिका त्वं इति वचनानंतरं एव समीपस्थ कुमारिका शरीरे आवेशः कृतः। ततः प्रोक्तं प्रभो मया अन्यं कडडमडडं याचितं अन्यं दत्तं। आचार्यैः प्रोक्तं त्वया वधो याचितः स तु लातुं दातुं न वुध्यते इत्यादिसिद्धान्तवाक्यं कुमारी शरीरस्था श्रीसच्चिकादेवी सर्वलोक प्रत्यक्षं श्रीरत्नप्रभाचार्यैः प्रतिबोधिता। श्रीउपकेशपुरस्था श्रीमहावीरभक्ता कृता सम्यक्त्वधारिणी संजाता। आस्तां मांसं कुसुममपि रक्तं नेच्छति। कुमारिका शरीरे अवतीर्णा सती इति वक्ति भो मम सेवका यत्र उपकेशपुरस्थं स्वयंभू महावीरविंवं पूजयति श्रीरत्नप्रभाचार्यं उपसेवति भगवन् शिष्यं प्रशिष्यं वा सेवति तस्याहं तोषं गच्छामि। तस्य दुरितं दलयामि यस्य पूजा चित्ते धारयामि। एतानि शरीरे अवत्तीर्णा सा कुमारी कथ्यतां। श्रीसच्चिकादेव्या वचनात् क्रमेण श्रुत्वा प्रचुरा जनाः श्रावकत्वं प्रतिपन्नाः। क्रमेण श्रीरत्नप्रभाचार्य ८४ वर्षे स्वर्गं गतः।

८ तत्पट्टे यक्षदेवाचार्यः माणभद्र यक्ष प्रतिवोध कर्त्ता संघस्य विघ्नो निवारितः।

९ तत्पट्टे कक्कसूरि। १० तत्पटे देवगुप्तसूरि।

११ तत्पट्टे सिद्ध सूरि। १२ तत्पट्टे रत्नप्रभ सूरि। १३ तत्पट्टे यक्षदेव सूरि।

१४ तत्पट्टे कक्क सूरि। स्वयंभू श्रीमहावीर स्नात्र विधि काले, कोसौ विधिः कदा किमर्थं संजातः इत्युच्यंते—तस्मिन्नेव देव गृहे अष्टान्हिकादिकमहोत्सवं कुर्वतास्तेषां मध्ये अपरिणतवयसा केषांचित् चित्ते इयं दुर्बुद्धिः संजाताः। यद्धुत भगवत् महावीरस्य हृदये ग्रन्थी द्वयं पूजां कुर्वतां कुशोभा करोति अतः मशकरोगवत् छेदायितां को दोषः। वृद्धैः कथितं अयं अघटितः टंकिना घातो न अर्हः। विशेषतो अस्मिन् स्वयंभू श्री महावीर विंवे। वृद्धवाक्यमवगण्य प्रच्छन्नं सूत्रधारस्य द्रव्यं दत्वा ग्रन्थिद्वयं छेदितं तत्-क्षणादेव सूत्रधारो मृतः। ग्रन्थिच्छेदप्रदेशे तु रक्त धारा छुटिता। तत उपद्रवो जातः। तदा उपकेश-गच्छाधिपति श्रीकक्क सूरिभिः पायाभ्दिः चतुर्विधसंघेनाहूता वृत्तांतं कथितं। आचार्यैः चतुर्विधसंघ स-

हितेन उपवास त्रयं कृतं । तृतीय उपवास प्रान्ते रात्रिसमये शासनदेवी प्रत्यक्षी भूय आचार्याय प्रोक्तं—हे प्रभो न युक्तं कृतं बालश्रावकैः मद् घटितं बिंबं आशातितं । कलानीशकृतं अतोनंतरं उपकेशनगरं शनैः २ उपभ्रंसं भविष्यति । गच्छे विरोधो भविष्यति । श्रावकाणां कलहो भविष्यति । गोष्ठिका नगरात् दिशोदिशं यास्यंति । आचार्यैः प्रोक्तं परमेश्वरि भवितव्यं भवत्येव परं त्वं श्रवतु रुधिरं निवारय । देव्या प्रोक्तं घृत घटेन दधि घटेन इक्षुरस घटेन दुग्ध घटेन जल घटेन कृतोपवासत्रय यदा भविष्यति तदा अष्टादशा गोत्र मेलं कुरु; तेमी १ तातहड गोत्रं । २ बापणा गोत्रं । ३ कर्णाट गोत्रं । ४ वल गोत्रं । ५ मोराक्ष गोत्रं । ६ कुल हट गोत्रं । ७ विरिहिट गोत्रं । ८ श्री श्रीमाल गोत्रं । ९ श्रेष्टिगोत्रं । एते दक्षिण बाहु । १ सुचंती गोत्रं । २ आइचणा गोत्रं । ३ चारवेडीया गोत्रं । ४ भाद्र गोत्रं । ५ चींचट गोत्रं (देशलहरासाखा) । ६ कुंभट गोत्रं । ७ कनउजया गोत्रं । ८ डिंडभ गोत्रं । ९ लघु श्रेष्टि गोत्रं । एते वाम बाहु स्नात्रं कर्तव्यं नान्यथाऽशिवो शान्तिर्भविष्यति । मूल प्रतिष्ठानंतरं वीर प्रतिष्ठा दिवसातीते शतत्रये ३०३ अ नेहसि ग्रंथियुगस्य वीरोरस्थस्य भेदोऽजनि दैव योगात् इत्युक्तं श्रीमदुपकेशगच्छचरित्र सूत्रे श्लोक—१७२

१५ तत्पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरि। १६ तत्पट्टे सिद्ध सूरि। १७ तत्पट्टे रत्नप्रभ सूरि।

१८ एवं अनुक्रमेण श्रीवीरात् वर्षे ५८५ श्रीयक्षदेवसूरिर्बभूव महाप्रभावकर्ता द्वादशवर्षे दुर्भिक्षमध्ये वज्र स्वामी शिष्य वज्रसेनस्य गुरोः परलोकप्राप्ते यक्षदेवसूरिणा चत्वारि शाखाः स्थापिताः—

१९ तत्पट्टे कक्कसूरि । २० तत्पट्टे देवगुप्तसूरि । २१ तत्पट्टे सिद्ध सूरि ।

२२ तत्पट्टे रत्नप्रभसूरि । २३ तत्पट्टे यक्षदेव सूरि । २४ तत्पट्टे कक्क सूरि ।

२५ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि । २६ तत्पट्टे सिद्ध सूरि । २७ तत्पट्टे रत्नप्रभसूरि ।

२८ तत्पट्टे यक्षदेव सूरि । २९ तत्पट्टे कक्कसूरि । ३० तत्पट्टे देवगुप्त सूरि ।

३१ तत्पट्टे सिद्धसूरि । ३२ तत्पट्टे रत्नप्रभ सूरि । ३३ तत्पट्टे यक्षदेव सूरि ।

३४ तत्पट्टे ककुदाचार्य । तत्पट्टे देवगुप्ताचार्य । तत्पट्टे सिद्धाचार्य । एतानि पंच उपकेशगच्छाधिपाचार्याणां मूलनामानि । तत्पट्टे कक्कसूरि द्वादश वर्षयावत् षट्ट तपं आचाम्लसहितं कृतवान् । तस्य स्मरणस्तोत्रेण मरोटकोटे सोमकश्रेष्टिस्य श्रृंखला त्रुटिता । तेन चिंतितं यस्य गुरोः नामस्मरणेन बंधनरहितो जातः एकवारं तस्य पादौ वंदामि । स भरुकच्छे आगतः । अटणवेलायां सर्वे मुनीश्वरा अटनार्थं गतास्ति । सच्चका गुरो अग्रे स्थितास्ति । द्वारो दत्तोस्ति तेन विकल्पं कृतं । शच्यका शिक्षा दत्ता मुखे रुधिरो वमति । मुनीश्वरा आगता । वृद्धगणेशेन ज्ञातं भगवन् द्वारे सोमकश्रेष्टी पतितोस्ति । आचार्यैः ज्ञातं अयं सच्चिकाकृतं । सच्चिका आहूता कथितं त्वया किं कृतं । भगवन् मया योग्यं कृतं । रे पापिष्ट यस्य गुरुनामग्रहणे बंधनानि श्रृंखलानि त्रुटितानि संति स अणाचारे रतो न भविष्यति । परं एतेन आत्मकृतं लब्धं । गुरुणा प्रोक्तं कोपं त्यज शांतिं कुरु । तया कथितं यदि असौ शान्तिर्भविष्यति तदा अस्माकं आगमनं न भविष्यति प्रत्यक्षं । गुरुणा चिंतितं भवितव्यं भवत्येव स सज्जकृतः । सच्चिकावचनात् द्वयोर्नाम भंडारे कृताः श्रीरत्नप्रभसूरि अपरश्री यक्षदेवसूरि एते सप्रभावा एतदनेहसि अस्य उपकेशगणस्य द्वाविंशति शाखा नामानि दत्तानि—

१ नागेन्द्र २ चन्द्र ३ निर्वृत्ति ४ विद्याधराणां स्थाने १ सुंदर २ प्रभ ३ कनक ४ मेरु ५ सार ६ चंद्र ७ सागर ८ हंस ९ तिलक १० कलस ११ रत्न १२ समुद्र १३ कल्लोल १४ रंग १५ शेखर १६ विशाल १७ राज १८ कुमार १९ देव २० आनंद २१ आदित्य २२ कुंभ इति । ततः तेनैव कक्कसूरिणा अर्वूदाचलमेखलायां तृषार्तस्य संघस्य डंड स्थापनेन जलं प्रगटि कृतं। तेनैव साधर्मिक वात्सल्ये जेसलपुरात् भरुकच्छे घृतो आनीतः ।

३५ तत्पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरि । तत्पदमहोत्सवे पाठकाः पंच स्थापिता जयतिलकादि। तेन जयति–लकेन श्रीशान्तिनाथचरित्रं निर्मितं ।

३६ तत्पट्टे सिद्ध सूरि । ३७ तत्पट्टे कक्क सूरि । ३८ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि ।

३९ तत्पट्टे सिद्धसूरि। ४० तत्पट्टे कक्क सूरि । ४१ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि। सं० ९९५ वर्षे बभूव।

४२ क्षत्रीयवंशोत्पन्नत्वात् वीणावादने तत्परं क्रियाविषयं सिथिलः । ततः चतुर्विधसंघेन तत्पट्टे वीस विस्वोपकारंकः स्थापितः श्रीसिद्धसूरिः ।

४३ तत्पट्टे कक्कसूरिः पंचप्रमाणग्रन्थकर्त्ता । ४४ तत्पट्टे संवत् १०७२ वर्षे श्रीदेवगुप्तसूरि ।

४५ तत्पट्टे नवपद प्रकरण–स्वोपज्ञटीकाकर्ता सिद्धसूरि । ४६ तत्पट्टे कक्क सूरि ।

४७ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि । ४८ तत्पट्टे सिद्ध सूरि । ४९ तत्पट्टे कक्कसूरि ।

५० तत्पट्टे संवत् ११०८ वर्षे देवगुप्त सूरिर्बुभूव। भीनमाल नगरे साह भईसाक्षेन पद महो-त्सवे सप्तलक्ष धन व्ययो कृतः। ततोः गुरुणा पादप्रक्षाल्येन जले विषापहार लब्धी येन भइसाक्ष श्रेष्ठिना श्री देवगुप्त सूरेः पद महोत्सवः कृतः। स पूर्वं डिंडुवाण पूरे भइसा भार्या छगणाणि स्थाप्यते ततो गुरूपदे-शेन ज्वालितानि छगणानि रुप्यमयानि भवंति ततो तेन रुप्येन गदहिया मुद्रा पातिता । भइसाक्ष माता श्री शत्रुंजय यात्रागता खरच त्रुट्यते पत्तन मध्ये ईश्वरश्रेष्टिनः पार्श्वे खरचो याचिता । तेन पृष्टं भवती कस्य माता तेन कथितं अहं भइसाक्ष माता । तेन हासितं अस्माकं गृहे पानीयमानयंति तेषां माता इति वित र्कितं। ततोऽनंतरं पश्चात् धनं गृहीत्वा यात्रां कृत्वा संघभक्ति कृत्वा गृहे जगाम। पुत्रेण प्रष्ट मातः मम कियद्भूमौ नामं वर्तते । माता कथितं भवतां प्रतोली द्वारं यावन्नाममस्ति । तेन वचनेन असंतोषो जातः । श्रेष्टि हास्यवचनं कथितं । तद्वचनं वालयिस्यामि तदा द्वितीय वेला भोजयिष्यामि । एवं प्रतिज्ञां कृत्वा पत्तने सामान्यवेषे द्वार हट्टे गतः। भो श्रेष्टि रूप्यं ग्रहिष्यासि । तेन कथितं रोषभरेण यत्किंचिदानयिष्यासि तत्सर्वे गृह्णामि । संचकारो याचितः तेन युष्माभिर्दीयते सवालक्ष मुद्रिका दत्ता । ततो गर्दभयानि भारयत्वा पत्तने जगाम। पृष्टं एतत्किं रुप्यं वर्तते एवं श्रुत्वा श्रेष्टिनः चमत्कृताः स श्रेष्टि समग्र पत्तनश्रेष्टि मेल-यित्वा चरणे पपात । भइसाक्षस्तदेव कथितं गुर्ज्जरधरीत्रीमध्ये महिषेण पानीयमानयेतुं तदा मोचयामि । तद्धनं देशे सप्तक्षेत्रे व्ययो कृतः । ततो गादिया इति शाखा जाता ।

५१तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि ।५२ तत्पट्टे श्री कक्कसूरि संवत् ११५४ वर्षे वभूव । येन हेमसूरि कुमारपाल वचसा कृपाहीना मुनिवरा निष्कासिता ।

५३ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि येन लक्ष द्रव्यं त्याजितं । ५४ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि ।

५५ तत्पट्टे संवत् १२५२ श्री कक्कसूरिर्बभूव येन मरोट कोटः प्रगटी कृतं ।

५६ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि। ५७ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि। ५८ तत्पट्टे श्री कक्कसूरि।

६० तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि। ६१ तत्पट्टे श्री कक्कसूरि। ५९ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि।
६२ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि। ६३ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि। ६४ तत्पट्टे श्री कक्कसूरि। ६५ तत्पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरि।

६६ तत्पट्टे संवत् १३३० वर्षे चीचट गोत्रेऽतएव उवरराय स्थापितः श्री अर्बुदाचल तलहटीकालंकारो वरणीनगरतः शा० देशलेन श्री शत्रुंजयादि सप्त तीर्थेषु चउदश १४ कोटि द्रव्य व्ययेन चउदश यात्रा कृता चतुर्दश वारान्। प्रथमं देवगुप्तसूरि तत्पट्टे सिद्धसूरि प्रमुख समग्र सुविहित सूरि हस्तेन संघपति तिलकः कारितं। उक्तं च

श्री देशलः सुकृत पेसल वित्त कोटी। चंचच्चतुर्दश जगज्जानितावदातः।
शत्रुंजय प्रमुख विश्रुत सप्त तीर्थैः। यात्रा चतुर्दश चकार महामहेन॥ १॥

तत्पुत्र समरसहजाभ्यां विमलवसत्युद्धारः कारितः संवत् १३७१ वर्षे। तथा एवमपरेरपि तिर्थयात्रा कृत्वा संघपतेः पदं स्वाकीरितं इत्युक्तमुपदेशरसाले। साह देसलेन पाल्हणपुरे श्री सिद्धसूरि पद महोत्सवो कृतः। तेन सिद्धसूरिणा समराग्रहेण शत्रुंजये षष्ठोद्धारे श्री आदिनाथस्य प्रतिष्ठा कृता।

६७ तत्पट्टे संवत् १३७१ वर्षे साह सहजागरेण श्री कक्कसूरि पद महोत्सवो कृतः। येन गच्छप्रबंधः कृतः। तत्र देसल पुत्राः समर–सहजानां चरित्रमस्ति। एवं उपकेश गच्छे अनेक प्रभावका ग्रन्थकर्त्तारो निरीहा सूरयो अभूवन् तेषां कियद् गण्यते एवं—

६८ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि बभूवः। कवि सार्वभौम विद्वच्चक्रचूडामणि सिद्धन्तपारगामी सर्वशास्त्रपारंगत। श्री सारंगधरेण संवत् १४०९ वर्षे दिल्यां मध्ये पद महोत्सवो विहितः सुवर्णसहस्र पंचक व्ययेन।

६९ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरिः संवत् १४७५ वर्षे गुणभूरय अणाहिलपाटक पत्तने चोरवेडीया गोत्रे साह झावा नीवागरेण पद महोत्सवः कृतः गुरूणां।

७० तत्पट्टे संवत् १४९८ वर्षे श्री कक्कसूरयः चित्रकुटे चोरवेडीया गोत्रे साह सारंग सोनागर राजाभ्यां पद महोत्सवो कृतः येन चतुर्दश शत चतुः चत्वारिंसत् अधिक १४४४ कच्छ मध्ये अमारी प्रवर्तावित। याम श्री वीरभद्रः प्रतिबोधितः। संस्कृतप्राकृतपरमामृतप्रवाहा विरचित निखिलशास्त्रावगाहाः वाणीविलासवाचस्पतितुल्याः सकलकलारंजितकोविदाः धर्मबुद्धिधुरंधरा सकलपुरंदराः।

७१ तत्पट्टे सं० १५२८ वर्षे जोधपुरे श्रेष्टि गोत्रे मंत्रीश्वर जयतागरेण श्री देवगुप्तसूरेः महोत्सवे नव महोत्सवो कृतः। श्री पार्श्वनाथस्य प्रासादः कारितः पौषधशालायां च। श्री शत्रुंजय यात्रा कृता। पंच पाठकाः स्थापिताः। तेषां नामानि श्री धनसार १ उ० देवकल्लोल २ उ० पद्मतिलक ३ उ० हंसराज ४ उ० मतिसागर ५।

७२ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरयो गुणभूरयः। श्री श्रेष्टि गोत्रे मंत्रीश्वर दशरथात्मजेन मंत्रीश्वर लोलागरेण संवत १५६५ वर्षे मेदिनीपरे पद महोत्सवः कृतः।

७३ तत्पट्टे श्री कक्कसूरयः श्री जोधपुरे संवत् १५९९ वर्षे गच्छाधिपो जातः श्रेष्टि गोत्रे मंत्रि जगात्मजेन मंत्रीश्वर धरमसिंहेन पद महोत्सवो कृतः।

७४ तत्पट्टे श्री देवगुप्त सूरयः श्री श्रेष्टी गोत्रे मंत्रि सहस्रवीर पुत्रेण संवत् १६३१ मंत्री देदागरेण पद महोत्सवः कृतः।

७५ तत्पट्टे विद्यमान संवत् १६५५ वर्षे चैत्रसुदि १२ सिद्धसूरिर्बभूव श्री श्रेष्टी गोत्रे मंत्रि मुगुट मंत्रि शेखर सर्व विश्व विख्यात राज्यभार धुरंधर मंत्रीश्वर महामंत्रि श्री ठाकुरसिंह विक्रमपुरे महा महोत्सवेन पद महोच्छवो कृतः।

७६ संवत् १६८९ वर्षे फाल्गुण शुद्धि ३ श्री कक्कसूरिर्बभूव। श्री श्रेष्टि गोत्रे मंत्रि मुगुट मंत्रि ठाकुरसिंह तत्पुत्र मं० सावलकेन तत्पत्नी साहिबदेन पद महोत्सवो कृतः।

संवत् १७२७ वर्षे मृगशिर सुद ३ दिने श्री देवगुप्तसूरिर्बभूव श्रेष्टि गोत्रे मंत्रि ईश्वरदासेन पद महोत्सवो कृतः।

७८ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि संजातः। श्रेष्टि गोत्रे मंत्रि सगतसिंहेन पट्टाभिषेकः कृतः संवत् १७६७ वर्षे मृगशिर सुदि १० दिने जातः।

७९ तत्पट्टे श्री कक्कसूरिर्बभूव। मंत्रि दोलतरामेन सं० १७८३ वर्षे आसाढ वदि १२ दिने पद महोत्सवो कृतः।

८० तत्पट्टे देवगुप्तसूरि सं० १८०७ वर्षे बभूव। मुहता दोलतरामजीना पद महोत्सवो कृतः।

८१ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरिर्बभूव। संवत् १८४७ वर्षे महासुदि १० दिने पट्टाभिषेकः संजातः। मुं० श्री खुशालचंद्रेण पदमहोत्सवो कृतः। तेषां प्रासादात् अहं कल्पवाचनं करोमि। पुनः दीक्षा गुरु प्रसादात्

८२ तत्पट्टे श्रीकक्कसूरिर्बभूव। संवत् १८९१ रा वर्षे चैत्र सुद ८ अष्टमीदिने पट्टाभिषेकः संजातः। वैद्यमुं० ठाकुर सुत मुं० सिरदारसिंह गृहे समस्त श्रीसंघेन बीकानेर मध्ये पदमहोत्सवः कृतः।

८३ तत्पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरिर्बभूव। संवत् १९०५ वर्षे भाद्रवा सुदि १३ चंद्रवासरे पट्टाभिषेकः संजातः। श्रेष्टि गोत्रे वैद्य मुहता शाखायां प्रेमराजो तस्य परिवारे हठीसिंघजी ऋषभदासजी मेघराजजी-कानां उत्संगे गृहीत्वा श्रीफलोधीनगरमध्ये समस्त वैद्य मुहता पट्टाभिषेको कृतः। तेषां प्रासादात् अहं कल्पवाचनां करोमि।

८४ तत्पट्टे श्रीसिद्धसूरिर्बभूव। संवत् १९३५ वर्षे माघ कृष्ण ११ दिने पट्टाभिषेक संजातः श्रेष्टि गोत्रे वैद्यमुहता शाखायां ठाकुर सुत महारावजी श्रीहरि सिंघजी पद महोत्सवः कृतः वृद्ध गृहे मध्ये धांसीवाला सुरजमलजी हस्तात् समस्त श्रीसंघसहितेन विक्रम पुर मध्ये देवदुष्य रंजित छटिका राज्य द्वारात् समागता। तेषां प्रासादात् अहं कल्पवाचनां करोमि इति॥

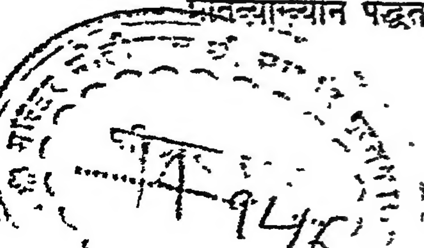
॥ श्रीरत्नप्रभसूरिस्तोत्रम् ॥

॥ श्रीमद्रत्नप्रभसूरिसद्गुरुभ्यो नमः ॥

वामेयपट्टे शुभदत्तनामा तच्छिष्यजातो हरिदत्तमुख्यः ॥
आर्याबुधिः केशी स्वयंप्रभोपि सूरीशरत्नप्रभलब्धिपात्रः ॥ १ ॥
भव्यावलीकमलकाननराजभृंगं श्रियःप्रवृत्तिमुनिमानसराजहंसं ॥
श्रीपार्श्वनाथपदपंकजचंचरीकं रत्नप्रभं गणधरं सततं स्तवीमि ॥ २ ॥
विद्याधरेन्द्रपदवीकलितोपि कामं श्रीमत्स्वयंप्रभगिरः परिपीय योत्र ।
दीक्षावधूमुदवहन्मुदमादधानो रत्नप्रभस्य दिशतात्कमलाविलासं ॥ ३ ॥
मंत्रीश्वरोहडसुतो भुजगेन दष्टः संजीवितः सकललोकसभासमक्षं ।
यस्यांघ्रिवारिरुहपुष्करसिंचनेन रत्नप्रभस्य दिशतात्कमलाविलासं ॥ ४ ॥
मिथ्यात्वमोहतिमिराणि विधूय येन भव्यात्मनां मनसि तिग्मरुचेव विश्वे ।
संदर्शितं सकलदर्शनतत्त्वरूपं रत्नप्रभस्य दिशतात्कमलाविलासं ॥ ५ ॥
येनोपकेशनगरे गुरुदिव्यशक्त्या कोरंटके च विदधे महती प्रतिष्ठा ।
श्रीवीरबिंबयुगलस्य वरस्य येन रत्नप्रभस्य दिशतात्कमलाविलासं ॥ ६ ॥
श्रीसत्यिकाभगवती समभूत्प्रसन्ना सर्वज्ञशासनसमुन्नतिवृद्धिकर्त्री ।
यद्देशनारसरहस्यमवाप्य सम्यक् रत्नप्रभस्य दिशतात्कमलाविलासं ॥ ७ ॥
गृह्णंति यस्य सुगुरोर्गुरुनाममंत्रं सम्यक्त्वतत्त्वगुणगौरवगर्भितं ये ।
तेषां गृहे प्रतिदिनं विलसंति पद्मा रत्नप्रभस्य दिशतात्कमलाविलासं ॥ ८ ॥
कल्पद्रुमः करतले सुरकामधेनु–श्चिंतामणिः स्फुरति राज्यरमाभिरामा ।
यस्योल्लसत्क्रमयुगांबुजपूजनेन रत्नप्रभस्य दिशतात्कमलाविलासं ॥ ९ ॥

इत्थं भक्तिभरेण देवतिलकश्चातुर्यलीलागुरोः
श्रीरत्नप्रभसूरिराजसुगुरोः स्तोत्रं करोति स्म यः ।
प्रातः काव्यमिदं पठत्यविरतं तस्यालये सर्वदा ।
सानंदं प्रमदेव दीव्यतितरां साम्राज्यलक्ष्मीः स्वयं ॥ १० ॥

इति ओएसनगरे सपालक्षश्रावकाः प्रतिबोधिता ओएसवालज्ञातिः स्थापिता तस्य स्तोत्रमिदं सर्वत्रोल्यान पद्धतौ प्रत्यहं पठनीयं ॥ संपूर्ण ॥ ग्रंथाग्रंथ ॥ ३१९ ॥ श्रीरस्तु ॥



जैन साहित्य संशोधक समिति



पेट्रन.

श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाह. बी. ए. मुंबई.

वाईस पेट्रन.

श्रीयुत केशवलाल प्रेमचंद मोदी. बी. ए. एलएल. बी. वकील अमदावाद.

श्रीयुत अमरचंद घेलाभाई गांधी, मुंबई.

सहायक.

शेठ परमानंददास रतनजी, मुंबई.

श्रीयुत मनसुखलाल रवजीभाई मेहता, मुंबई.

शेठ कांतिलाल गगलभाई हाथीभाई, पूना.

शेठ केशवलाल मणीलाल शाह, पूना.

शेठ बाबूलाल नानचंद भगवानदास झवेरी, पूना.

सभासद.

श्रीयुत बाबू राजकुमार सिंहजी बद्रीदासजी, कलकत्ता.

श्रीयुत बाबू पूरणचंदजी नाहार. एम्. ए. एलएल. बी. कलकत्ता.

शेठ लालभाई कल्याणभाई झवेरी, वडोदरा (मुंबई.)

शेठ नरोत्तमदास भाणजी, मुंबई.

शेठ दामोदरदास, त्रिभुवनदास भाणजी, मुंबई.

शेठ त्रिभुवनदास भाणजी जैन कन्याशाला, भावनगर.

शेठ केशवजीभाई माणेकचंद, मुंबई.

शेठ देवकरणभाई मूळजीभाई, मुंबई.

शेठ गुलाबचंद देवचंद, मुंबई.

श्रीयुत मोतीचंद गिरधरलाल कापडिया, बी. ए. एलएल बी. सोलीसीटर, मुंबई.

श्रीयुत केशरी चंदजी भंडारी, इंदौर.

शाह अमृतलाल एण्ड भगवानदास कुं० मुंबई.

शाह चंदुलाल वीरचंद कृष्णाजी, पूना.

शेठ लाधाजी मोतीलाल, पूना.

शाह धनजीभाई वखतचंद साणंदवाळा, (अमदावाद)

शाह वालुभाई रामचंद, तळेगाम (ढमढेरे).

शाह चुनिलाल झवेरचद, मुंबई.

शाह भोगीलाल चुनिलाल, सोलापुरबझार, पूना कँप.

मुद्रक—पृष्ठ १-३३ जैन साहित्य मुद्रणालय; पृ० ५७-८० चित्रशाला प्रेस; और बाकी सब—हनुमान प्रेस, सदाशिव पेठ, पूना सीटी.—प्रकाशक चिमनलाल एल्. शाहा, भारत जैन विद्यालय, पूना शहर.